Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथाजगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक : 390; 1 से 15 अक्तूबर, 1985

...कीय क...नियां: ...र्भ

संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा
सुमीता

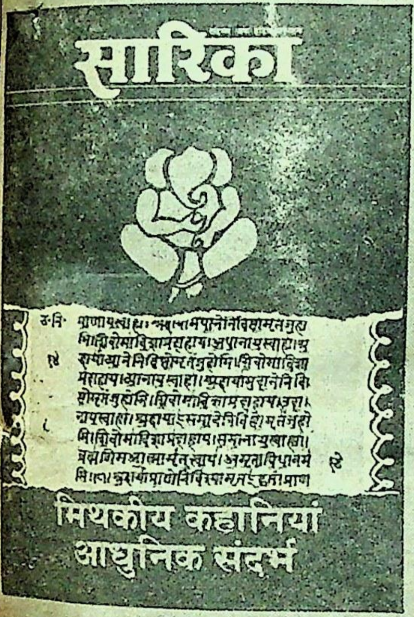

आवरण : सुमीता

कहानियां/उपन्यास

14. अनामदास का पोथा : हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
18. धर्म: नरेंद्र कोहली
24. कश्ती (उर्दू) : इंतजार हुसैन
27. अंतिम दर्शन (कन्नड़) : मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार
33. राह न रुकी : रांगेय राघव
38. महाभारत का दूसरा युद्ध (उर्दू) : जोगेंद्र पाल
41. मुक्तिदूत : वीरेंद्रकुमार जैन
47. स्वर्ग से बहिष्कृत (रूसी) : आंद्रेज उपिट्ज
51. एक भगीरथ और : हीरामणि शर्मा
54. झूमे, कलीसिया (अमरीकी) : लैंगस्टन ह्यूज
58. बरब्बस (स्वीडी) : पार लागरक्विस्त
66. रेत की किताब (स्पेनी) : जार्ज लुई बोर्खेस
68. भगवान भी रोते हैं : गोपाल शेखरन
21. हेर-फेर : बलराम
31. मिथहास का नया दर्शन : अमृता प्रीतम
36. नरमुंड शिकारी : फणि मजूमदार
45. मिथक क्या है? : डॉ. बच्चन सिंह
52. टुकड़ा-टुकड़ा औरत : उमाकांत मालवीय
56. ईश्वर का मिथक.. : बर्ट्रेंड रसेल
63. दास्तान-ए-लैला : चंचल
64. मिथक कथाओं की दुनिया : प्रियंवद
73. यूनानी मिथक कथाओं का संसार : कमल नसीम

विशेष आकर्षण

8. गं-गं गच्छति गंगा : कुबेरनाथ राय
12. भारतीय मिथकों की भंगिमाएं : संजीव
17. राई के तड़के की लपट : दुर्गा भागवत

अन्य आकर्षण

10. सिसिफस की सजा
11. मिथक, सार्गा और मार्येन
29. खांडेकर का कहना है
32. मिथ... और इतिहास
35. क्या लिखें, क्यों लिखें?
37. आशुलिपि में प्राप्त वर्णन
43. पांच पुरुषों की कामिनियां
49. मेरी जाति, मेरा वंश
61 आत्मा की अमरता

स्थायी स्तंभ

5. आपकी बात
7. अपनी बात
70. पखवारे की पुस्तकें
74. हलचल

संपादकीय पता: सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक : 115 रुपये

अर्धवार्षिक : 60 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम..................

पता..................

....

....

हस्ताक्षर..................

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002.

अगला अंक

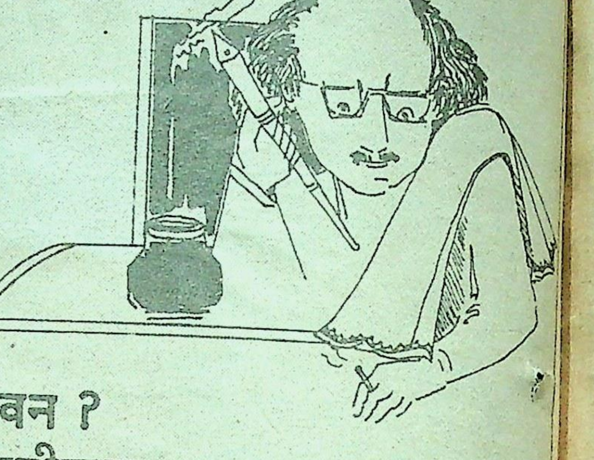

कौन बड़ा है— साहित्य या जीवन ? कहानी या कहानीकार

हिंदी कहानी जो करीब पांच पीढ़ी परवान चढ़ चुकी है और हिंदी कहानीकार जो पिछले पचास वर्ष की कथा-यात्रा के हर पड़ाव के साक्षी हैं! सारिका : रजत जयंती वर्ष की 20वीं विशेष भेंट में हम संजो रहे हैं उन्हीं वरिष्ठ कथाकारों की कहानियां, जिनके पास उपलब्ध जीवन की समझ और साहित्य की संवेदना हमारी विरासत है. पढ़िए——

कथा-पीढ़ी विशेषांक : एक

जैनेंद्र कुमार, विष्णु प्रभाकर, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर, शिवानी, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतराय, छेदीलाल गुप्त, अमरनाथ, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', प्रभाकर माचवे आदि संभावित कहानीकारों की सारिका के लिए विशेष रूप से लिखी गयी ताजातरीन कहानियां.

- **पीढ़ियां : आमने-सामने**

——सर्वश्री अज्ञेय, नरेंद्र शर्मा, गोविंद मिश्र, चंद्रकांत वांदिवडेकर के बीच साहित्य व व्यक्तिगत अनुभवों के संदर्भ में हुई लंबी अंतरंग बातचीत.

- **मतलब आपको अपनी नालायक कहानियां भी प्रिय हैं?**

——द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' से उनकी कथा-यात्रा के संदर्भ में कमल गुप्त और पुष्पा अवस्थी की बातचीत.

- **हिंदी कथा-साहित्य की पहली पीढ़ी के लेखकों के योगदान की समीक्षात्मक पड़ताल करती हुई पुनर्मूल्यांकन की संभावनाओं से युक्त समालोचनात्मक सामग्री.**

16 अक्तूबर, 85

सारिका

हर वर्ग और उम्र के पाठक के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय दस्तावेज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

सांप्रदायिकता के बल पर राजनीति की खेती

सारिका का **सांप्रदायिक सद्भाव अंक** सांप्रदायिक तनाव के तपते माहौल में हवा के शीतल झोंके-सा सुखद लगा. जिस समय कुछ देशी एवं विदेशी शक्तियां सांप्रदायिकता की भावना को उभार कर देश को विभाजित करने एवं खून में डुबो देने की साजिश कर रही हैं, उस समय ये कहानियां न केवल सांप्रदायिक सद्भाव की भावना पैदा करती हैं बल्कि सांप्रदायिकता के पीछे छिपे कारणों का रहस्योद्घाटन भी करती हैं. सांप्रदायिकता की भावना व्यक्ति को कितना क्रूर एवं अमानवीय बना देती है इसका उदाहरण **विष्णु प्रभाकर** की कहानी **'एक और कुंती'**, **भीष्म साहनी** की कहानी **'अमृतसर आ गया है'** और **कृष्णा सोबती** की कहानी **'सिक्का बदल गया'** हैं. इस अंक की कहानियां यह भी बताती हैं कि भारत-पाकिस्तान सहित विश्व के हर कोने का जनसाधारण मिल-जुलकर रहना चाहता है. उसकी सोच सांप्रदायिक नहीं है.

पर सांप्रदायिकता के बल पर राजनीति की खेती करनेवाले उसे धर्म के नाम पर बांटते रहते हैं.

सांप्रदायिकता के ये जहरीले सर्प पूरे समाज को विषाक्त कर देते हैं. और सही ढंग से सोचनेवाले भी कुछ देर के लिए रास्ता भटक जाते हैं. ऐसे समय में **'टोबा टेक सिंह'** जैसी कहानियां उसे सही रास्ता दिखाती रहती हैं.

0 डॉ. रामबहादुर वर्मा, रायबरेली

क्या सांप्रदायिकता का विष गांधीजी ने बोया था?

सांप्रदायिक-सद्भाव पर कहानियां देकर सारिका ने निश्चय ही एक बार फिर नये सिरे से सोच पैदा करने का प्रयास किया है. एकता के अटूट सूत्र में बंधकर लड़नेवाली दोनों हिंदू-मुस्लिम कौमें आजादी हासिल होने के तुरंत बाद जिस तेजी से खूनी कायापलट की शिकार हुयीं, भारतीय इतिहास का वह काला पन्ना था जो अब भी जब-तब फड़फड़ा ही जाता है. अंक की लगभग सभी कहानियां प्रयोजन में सार्थक सिद्ध हुई हैं. **मंटो** की मारक भाषा ने उनके विद्रोही लेखन की सार्थकता सिद्ध की है—विशेषकर **हाशियों** में. **भीष्म साहनी**

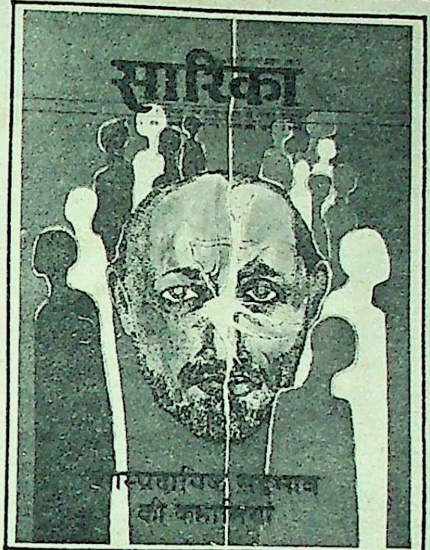

की कहानी **'अमृतसर आ गया है'** पढ़ते हुए उनके मुक्तभोगी पांच दिनों की गाथा 'तमस' (उपन्यास) की याद ताजा हो गयी. अंक पढ़कर जहां काफी अच्छा लग रहा था, वहीं एक दर्द भी सालता रहा. चूंकि विभाजन के दौर में खेले गये सांप्रदायिक तांडव के लिए जिम्मेदार लोगों पर भी दृष्टि जाये बिना नहीं रहती है.

किंतु एक बात है जो कहीं से दुःख पहुंचाती रहती है, यह कि देश में स्वतंत्रता के बाद आयी पीढ़ी (युवाओं, बुद्धिजीवियों की) बंटवारे और सांप्रदायिक विष के लिए महात्मा गांधी को दोषी ठहराती देखी गयी हैं. यह एक पीड़ाजनक स्थिति है. सन् 1757 में हुए पलासी के निर्णायक युद्ध से लगाकर लगभग एक सौ साठ साल तक लड़े गये स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय शस्त्रास्त्रों के बल पर आजादी हासिल नहीं कर पाये थे, वही आजादी गांधी ने सत्य, अहिंसा, त्याग के बल पर बीस-पच्चीस वर्षों में ही हासिल कर ली. ऐसा क्यों हुआ? इस तथ्य को समुचित सोचे-विचारे बिना नयी पीढ़ी गांधीजी की प्रतिष्ठा के साथ जो षड्यंत्र, अन्याय कर रही है निश्चित ही वह घातक सिद्ध होगा. संभव है जिन्ना-गांधी के प्रसंग से सांप्रदायिकता को हवा मिले. चर्चित अंक की कहानियां पढ़कर ऐसी विचारधारा रखनेवालों को अपनी भूल सुधारने से नहीं हिचकना चाहिए.

0 चरण सिंह अमी, इंदौर

सांप्रदायिकता के चूहे

'अपनी बात' सशक्त, कहानियां मर्मस्पर्शी एवं कलेवर विषयोचित होने के कारण अंक पठनीय, संग्रहणीय है. अंक सांप्रदायिक उन्माद के पीछे छिपी मानसिकता उपजने के कारण एवं निराकरण पर गहराई से सोच को नयी दिशा देता है. आवेश, आक्रोश से भरी हैवानियत पर इंसानियत कैसे काबू पा सकती है यही कहानियों का मूल स्वर है.

मंटो के तीखे व्यंग्य, प्रतिमा की दर्दनाक दास्तान, शाहनी की आशीष, टोबा टेकसिंह की मौत, सत्या पर जुल्म, पप्पी के दोस्त का प्यार, दुबले बाबू की बहशत, पवित्रा की साहसी सेवा भावना व तालेवर गोढ़ी का हृदय परिवर्तन; सोन कावले का मुक्त भोगी चित्रण, गफ्फार की अर्ज, अब्बाजान का मिट्टी से लगाव, काले का नाम परिवर्तन और गुलाम रसूल की गलतफहमी जैसे हृदय स्पर्शी चित्रण दिल पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं.

अनेक धर्मों, संप्रदायों, जातियों, वर्णों के अजीबोगरीब ताने-बाने से बुनी भारतीय चादर को सांप्रदायिक चूहे ने कुतर-कुतरकर छलनी बना तार-तार कर दिया है. राष्ट्रीय एकता एवं मानवता की शांतिपूर्ण विकास यात्रा के लिए इस चूहे का अंत अति आवश्यक है.

सांप्रदायिकता की जड़ मुल्ला की दाढ़ी, पंडित की चोटी, नेता के वोट और गुंडे की लूट में गहराई से जमी हुई है.

इस जड़ पर सीधा एवं प्रभावी प्रहार ही इस कोढ़ का इलाज है. सरकार से इलाज की अपेक्षा मूर्खतापूर्ण कल्पना है. इस समस्या का निदान व्यक्तिगत स्तर पर ही संभव है. जब तक एक दूसरे के लिए दिल में घर की गयी आशंका और घृणा दूर न होगी तब तक बयानबाजी, अखबारबाजी और कमेटीबाजी समस्या को सुलझाने के बजाय उलझायेगी ही.

0 श्रीगोविंद शर्मा, रिहंदनगर

. . . तंत्र का वोट बैंक

सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियों में से कुछेक रचनाएं तो अलग-अलग मौकों पर पहले ही पढ़ी थीं. **सारिका** में अनेक नयी और अनूदित कृतियों के साथ उन्हें पुनः पढ़कर आंदोलित हुआ. मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव का सर्वाधिक विकृत रूप पैदा करनेवाली सांप्रदायिकता के विरोध को आधार बनाकर सही समय पर यह अंक निकालना पत्रिका की समझ और जागरूकता का परिचय देता है. सांप्रदायिकता हमारे देश की प्रमुख समस्या है जिसे विभाजन के बाद भी आज तक हम समाप्त नहीं कर सके हैं. इस दैत्य ने इतिहास के अनेकों पृष्ठों को मासूम रक्त से लिखा है. सामान्य रूप से आदमी सांप्रदायिक नहीं होता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तर्क गलत नहीं है. गलत है वह तंत्र जो इस मनोवृत्ति को कुचलने के बजाय इसे अपना वोट-बैंक बनाकर उस पर अपने महल खड़ा कर लेता है. इस देश में जहां लड़ाई लाठी और रोटी की है, सांप्रदायिकता हथियार का काम दे जाती है.

इस अंक के संयोजन में जिन चुनिंदा कहानियों तथा उपन्यास-अंशों को प्रकाशित किया गया है, उनसे सांप्रदायिकता के संदर्भ में परिस्थितियों से मनःस्थितियों और मनः-स्थितियों से परिस्थितियों के बदलने की आहटें भीतर गहरे खुबती प्रतीत होती हैं. कहीं विरुदों का सामंजस्य है और कहीं व्यंग्य और पीड़ा का प्रहार. अंक में प्रकाशित कथा-रचनाओं से इतर भी हिंदी कथाकार को सांप्रदायिकता ने प्रभावित किया है. अच्छा होता यदि हिंदी कथा-साहित्य से 'ओस की बूंद', 'आधा गांव', 'झूठा-सच', 'अलग-अलग वैतरणी', 'जल टूटता हुआ', 'मैला आंचल' जैसी अनेक औपन्यासिक कृतियों का भी उल्लेख होता जिनमें सांप्रदायिकता के विरोध का स्वर कहीं तीव्र है, कहीं मंजा हुआ और कहीं अप्रत्यक्ष. हिंदी कथा-साहित्य ने इस जहर के दूरगामी और व्यापक परिणामों का समय-समय पर मौके-बेमौके वर्णन किया है. आवश्यकता इस बात की है कि सांप्रदायिकता के उत्स की खोज हो. यह सत्ता की राजनीति में रहती है या किसी आर्थिक कारण की दरार में या मजहब की किसी सड़ांध में, पहचानना जरूरी है.

'अमृतसर आ गया है' पर राजकुमार सैनी की टिप्पणी, लघुकथाओं में बलराम की 'मशाल और मशाल' सही और विचारोत्तेजक है. रमेश मेहता की गजल वाकई गजल है.

O अग्निशेखर, श्रीनगर, कश्मीर

नारी के हिस्से की त्रासदी

सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों को भोगते-सहते लोगों की पीड़ा का अहसास करानेवाली इन कहानियों ने मन को मथ कर रख दिया है.

विष्णु प्रभाकर की 'एक और कुंती' कहानी तो 'नारी' होने की त्रासद नियति का जीवित दस्तावेज है. विघटन काल की सारी मर्मांतक पीड़ा, वेदना और यातना जैसे नारी के हिस्से में ही आयी है. इतना ही नहीं, नर-नारी के संबंधों में भी तो नारी के हिस्से में त्रासदी ही आती है, जो बार-बार उसे उसकी अपनी धुरी से उखाड़ फेंकती है. बार-बार छली जाती; फिर टूटती, फिर बिखरती हुई एक से दूसरे यातना-शिविर में पहुंचती हुई भी तो परास्त नहीं होती है. . . फिर भी. . . जीवंत नारी. . . . जैसे ठूंठ में फूटती हुई कोपलें!

O कमल डोगरे, होशंगाबाद

पूरे परिवार की नजर

सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियां अंक दिल की गहराइयों तक अभिभूत कर गया. रचनाओं की तारीफ के क्रम में एक का जिक्र व दूसरे की अवहेलना संबंधित रचनाकार के प्रति अन्याय व उसका अपमान तथा मेरी मूर्खता ही होगी.

कहानियां पढ़ना मेरा मूल शौक है. और पूरी तन्मयता व गंभीरता से पढ़ते हुए 'सारिका' की भावप्रधान मार्मिक व घटना प्रधान कहानियों में से कभी कोई कहानी संवेदना के स्तर को छू जाती है, तो कभी किसी कहानी को पढ़कर मैं भाव-विभोर हो उठती हूं. उस क्षण मुझे अत्यंत सुखद अनुभूति का अहसास हुआ जब रोचक व दिलचस्प कहानियों व गजलों से सजी-संवरी इस पत्रिका को मेरे परिवार ने अनन्य पत्रिकाओं की अपेक्षा स्तरीय पत्रिका करार दिया.

पाठकीय चाहत के अनुरूप समय-समय पर विविध विशेषांकों की प्रस्तुति आपकी एक आदर्श परंपरा है. हमारी उत्सुकता व जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए 'सारिका' की यथा समय हम तक सहज पहुंच आपकी तत्परता, सक्षमता व कार्यकुशलता की द्योतक है. अपनी उक्त विशेषताओं व विलक्षणताओं के कारण ही 'सारिका' आज दुर्लभ व संग्रहणीय दस्तावेज बन पड़ी है.

O मंजु जुनेजा, खंडवा (म. प्र.)

कैक्टस और उनके कांटे

'अपनी बात' के अंतर्गत आपके बहुमूल्य व दार्शनिकतापूर्ण विचार पढ़े. आपकी टिप्पणी खासी विवेचना लिए हुए होती है.

आपने सांप्रदायिकता को 'एक अंधी विष कन्या' की संज्ञा दी है. मेरे खयाल में यह कुछ हद तक सही भी है. लेकिन सिर्फ इतना मात्र कह देने से यह बात खत्म नहीं होती है. इससे इस सांप्रदायिकता का केवल एक पक्षीय ही विवेचन होता है. इसकी वास्तविक व्याख्या करने के लिए हमें अपने 'मेजरमेंट ऐपेरेट्स' को कुछ विस्तृत करना होगा.

सांप्रदायिकता को विश्व के मानचित्र पर अंकित देशों पर देखने की कोशिश करें तो हमें कुछ अद्भुत तथ्य भी देखने को मिलेंगे. भारत समेत विश्व के अन्य देशों में सांप्रदायिकता, इस समय वहीं पर अपना डेरा डाले हुए है जहां कि वहां की सरकार या अन्य संप्रदायों को खुली छूट मिली हुई है. और वहां वे संप्रदाय अपने-अपने क्षेत्रों में खुले तौर पर या कुछेक गुप्त रूप से भी, कार्यरत हैं. जब संप्रदायों को खुली छूट मिली हुई है तो हम सांप्रदायिकता से इतना परहेज क्यों व किस आधार पर करते हैं? आखिर यह सांप्रदायिकता है तो उसी संप्रदाय का प्रतिफलन (मैन प्रॉडक्ट) ना? फिर इससे इतनी नाइंसाफी क्योंकर बरती जा रही है? क्या कभी ऐसा हुआ है कि हम कैक्टस को तो पैदा करें, लेकिन उनके कांटों को नकारें? ऐसा कभी भी नहीं होगा.

O रतनलाल राहिचंदानी, जयपुर

अनेकताओं से गुजरते हुए

एक से बढ़कर एक अच्छी कहानियां—इतनी मर्मस्पर्शिनी कि बार-बार आंखें नम हो जातीं—अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती—पढ़ना रोकना पड़ता. आपके सुचिंतित चयन-वैशिष्ट्य से अतिशय प्रभावित. 'सिक्का बदल गया', 'टोबा टेक सिंह', 'अमृतसर आ गया है', 'भाई अब्बदुर्रहमान', 'मुझे ले चले बाबुल', 'शागिर्द', 'यादों के परदेश', 'अंधेरा', 'झूठी आंखें', 'नीलोफर' सभी की सभी कहानियां अत्यंत मर्मस्पर्शिनी रहीं. पर इस अंक की सबसे आकर्षक और मार्मिक रचना रही—'एक और कुंती', सुप्रसिद्ध कथाकार विष्णु प्रभाकर की यह रचना तो बेजोड़ है हर दृष्टि से—इतनी लंबी और विस्तार पाती हुई भी मन को एक स्वर सूत्र में बांधे रखती है अथ से इति तक—और कितनी अनुभूतियों-स्थितियों-नियतियों से गुजरता है पाठक—प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा के साथ-साथ हम बराबर होते हैं. बराबर चलते होते हैं—सहयात्री के रूप में, हमदर्द के रूप में. सह-दृष्टा, सह-भोक्ता के रूप में. नर-नारी के मन और मातृ-मन के अनेकानेक गहन-गुह्य, सूक्ष्म विचार-कंपनों और भाव-स्पंदनों का उद्घाटन-विश्लेषण तो विरल है विस्मयकारी है, अद्भुत है.

O रवींद्रनाथ ओझा [illegible] सिया (पं. चंपारण)

एक अच्छा काम

आपने चाहा और हमने किया

सारिका के 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक' (1 व 2) पाठकों को इतने रोचक, ज्ञानवर्धक लगे कि वे इन्हें संभालकर रखना चाहते हैं. आपकी सुविधा के लिए हमने ये दोनों विशेषांक एक साथ जिल्द करवा दिये हैं, मूल्य वही 8 रुपये. डाक से मंगवाने पर 10 रुपये. मनीआर्डर, पोस्टल आर्डर, ड्राफ्ट कृपया इस पते पर भेजें :—

प्रसार मैनेजर, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन,
7-बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

मिथकीय अर्थ और अमरत्व की तलाश का सिलसिला

पुराण, प्रागैतिहासिक संस्कृतियां, वैदिक सूत्र, स्मृतियां, ब्राह्मण ग्रंथ अथवा उपनिषद् आदि ने तो मिथ, मिथकीय स्थितियों और मिथकीय चरित्रों को जन्म दिया ही है, काल विशेष की कुछ विशिष्ट स्थितियां या मान्यताएं भी मिथ को जन्म देती रहती हैं. जब हमने इस अंक की योजना बनायी थी तब हमारे सामने ये सभी मिथक तो थे ही, इनके अतिरिक्त अन्य धर्मों से संबद्ध मिथक भी थे लेकिन सबसे बड़ी चीज हमारे ध्यान में थी इन मिथकों में या इनके माध्यम से आधुनिक संदर्भों की तलाश.

आधुनिक संदर्भों और अर्थों के लिए कुछ मिथकीय चरित्र बहुत ही महत्वपूर्ण, सार्थक और शक्तिशाली भूमिका निभाते रहे हैं, जैसे सिसिफस, प्रमथ्यु, ओडिपस, गिल्गमेश, मनु, यम, नचिकेता, अष्टावक्र, अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, कबंध, संपाती और गणेश आदि. इन मिथकों में सार्वभौम और सार्वकालिक अर्थों व संदर्भों की तलाश की जाती रही है और की जाती रहेगी क्योंकि ये व्यापक अर्थों का संवहन करते हैं.

हमें इन्हीं में से किसी एक मिथकीय चरित्र को अपने आवरण के लिए चुनना था और काफी सोच-समझकर गणपति को चुना. इस चुनाव के पीछे आजकल पूरे देश में चल रहा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक गणेशोत्सव तो है ही स्वयं गणपति का व्यापक अर्थवाही स्वरूप भी है. गणपति से हमें बुद्धि, विवेक, प्रतिभा, बल और समृद्धि से भरी प्राचीन गणसंघीय व्यवस्था की याद हो आती है. आर्यों के आक्रमण से पहले अथवा आर्य संस्कृति के फैलने से पहले हमारे यहां जो श्रमण संस्कृति थी वह गणसंघ व्यवस्था के अंतर्गत थी और अधिकांश गणों के आदिनाथ अथवा आदिदेव शिव थे. गणों के स्वामी को प्रजा शिव का पुत्र मानती थी. यह मान्यता ठीक उसी तरह थी जैसे आर्य राजाओं को ईश्वर का विशेष अंश माना जाता था. गण का स्वामी या गणपति पूरे गण राज्य का सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति होता था. और लोग यह मानते थे कि गणपति की शक्ति ही सारे कार्यों को निर्विघ्न पूर्ण कराती है.

मिथकों के साथ अथवा मिथकीय चरित्रों के साथ जो और जैसी फंतासी जुड़ गयी है, वह उनके अर्थों को थोड़ा गूढ़ और दुरूह तो बनाती है लेकिन जब वे अर्थ खुलने लगते हैं तो सहस्त्र दल कमल की तरह खुलते चले जाते हैं. सही अर्थों में इन मिथकों से जुड़ी फंतासी उन्हें अर्थों के धरातल पर व्यापक गहराई देती है. जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु और आकाश के सहारे मिथकीय पुरुष ने जिस अमरत्व की तलाश का सिलसिला शुरू किया था उस अमरत्व की लालसा आज भी आदमी के मन से दूर नहीं हुई है. इनके सहारे जीवन की प्रक्रिया को समझने का सिलसिला आज भी ज्यों का त्यों है. आदि-पुरुष ऐसा मानते रहे हैं कि जीवन को समझने की इसी प्रक्रिया का कोई पड़ाव अमरत्व हो सकता है. इन्हीं सारी बातों को आधार मानकर मिथकों और मिथकीय चरित्रों का निर्माण हुआ है. आज जरूरत इस बात की है कि हम धर्म से अलग हटकर मात्र जीवन के दृष्टिकोण से इन मिथकों की व्याख्या करें.

मैं यह अंक मिथकीय संरचना की अर्थ-परंपरा से कटी हुई नयी पीढ़ी को समर्पित कर रहा हूं. और आशा करता हूं कि यह पीढ़ी मिथकों के उलझे हुए ऐंद्रजालिक स्वरूप को समझेगी, सुलझायेगी और उसे आधुनिक अर्थ देगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गं-गं-गच्छति गंगा

कुबेरनाथ राय

हम नदी के तट पर हवन करते हैं. . . . कि आर्य पितर संतुष्ट रहें. हम नदी को हार-फूल और गीत अर्पित करते हैं. . . . कि द्रविड़ पितामह संतुष्ट रहें. हम नदी को बलि और अर्घ्य-धार अर्पित करते हैं . . . . कि निषाद प्रपितामह संतुष्ट रहें. . . .गोया नदी नदी न होकर भारतीय इतिहास का चिन्मय प्रवाह हो. . . . . गोमुख से निकली गंगा और भारतवर्ष की संस्कृति के बहाने देश की रचनात्मक और समन्वित व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं— प्रख्यात साहित्यकार कुबेर नाथ राय.

गंगा गोमुख से निकलती है और इसका स्वभाव एवं चरित्र पयस्वला धेनु की तरह है जो अपने बछड़े के लिए रंभाती-दौड़ती घर को लौट रही हो. यह बछड़ा और कोई नहीं भारतवर्ष ही है. इसी से इस धेनु रूपी नदी के लिए हमनें अत्यंत सार्थक नाम चुना है : 'गंगा.' अर्थात् 'गं-गं' ध्वनि करती हुई चलती हो. कहते भी हैं—"गं-गं गच्छति सा गंगा." इस नदी के तट पर अकेले बैठकर इसके सस्वर प्रवाह के समय लगता है कि मंत्रों की साम-वीणा बज रही है. विशेषत: गंगाद्वार हरिद्वार में नदी का यह उद्गान जिसमें 'गं' कार और 'ऊं' कार सम्मिलित होकर एक सुदूर प्रसारी रंभाते कंठ से उच्चरित 'ग्वं' का रूप ले लेते हैं, घाट पर शांत चित्त होकर बैठने पर आसानी से सुना जा सकता है. वैदिक मंत्रों में जहां स्वर का खाली स्थान रहता है. वहां भरती के लिए 'ग्वं' का उच्चारण करने की प्रथा है. इस 'ग्वं' का प्रदर्शन एक विशेष चिन्ह (ꣳ) द्वारा होता है. उदाहरण के लिए प्रसिद्ध मंत्र "सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्. स भूमि (ꣳ) सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद दशांगुलम" में 'भूमि' और 'सर्वत:' के बीच खाली स्वर में इसी 'ग्वं' का उच्चारण करते हैं. आर्यों ने 'सरस्वती' की प्रवाह ध्वनि को सुनकर 'ऊं' की ध्वनि का आहरण किया है. और गंगा की प्रवाह ध्वनि को सुनकर 'ग्वं' को सीखा है. यों यह मेरी कल्पना मात्र है. इसका अभिधार्थ भले ही संदिग्ध हो पर लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ पूरा-पूरा सटीक है, क्योंकि आर्य संस्कृति ने सदैव अपने खाली स्थानों का निषाद और द्रविड़ संस्कृतियों के तत्वों से भरकर अपने को पूर्ण और समृद्ध बनाया है. गंगा मूलत: निषादों की नदी है. प्रथमत: निषादों ने ही मातृका कहकर इसे अपनी श्रद्धा अर्पित की थी. 'गंगा' शब्द निषाद भाषा का शब्द है. इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'नदी.' 'गं-गं गच्छित सा गंगा' की उक्ति को संस्कृत पंडितों ने मनोविनोद के लिए कालांतर में प्रचलित किया है. जिस तरह 'सिंधु' शब्द का मूल अर्थ 'नदी' है; वैसे 'गंगा' शब्द का भी. आज भी मानसरोवर के आस-पास इस शब्द का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा 'नदी' के रूप में होता है और संभवत: इसी से मानस-यात्रियों में पहले भ्रम फैला था कि गंगा भी ब्रह्मपुत्र-सिंधु की तरह मानस से ही निकलती है. प्राचीन काव्यों में भी यही भ्रम है. पर गंगा का वास्तविक उद्गम है गंगोत्री से ऊपर गोमुखी क्षेत्र. हमारी लोकभाषाओं में 'गंगा' शब्द का 'नदी' अर्थ अब भी सुरक्षित है. एक विशिष्ट रूपांतर में भोजपुरी और बांग्ला में 'गंगा' शब्द का प्रयोग होता है. दो दलों या [illegible] के बीच की विभाजक रेखा के लिए. ठीक यही कार्य नदी की धारा भी करती है. अत: 'गंगा' के पुराने अर्थ से इस शब्द का घनिष्ठ संबंध है. अंग्रेजी का 'रीवर' शब्द 'राइव' क्रिया से बना है

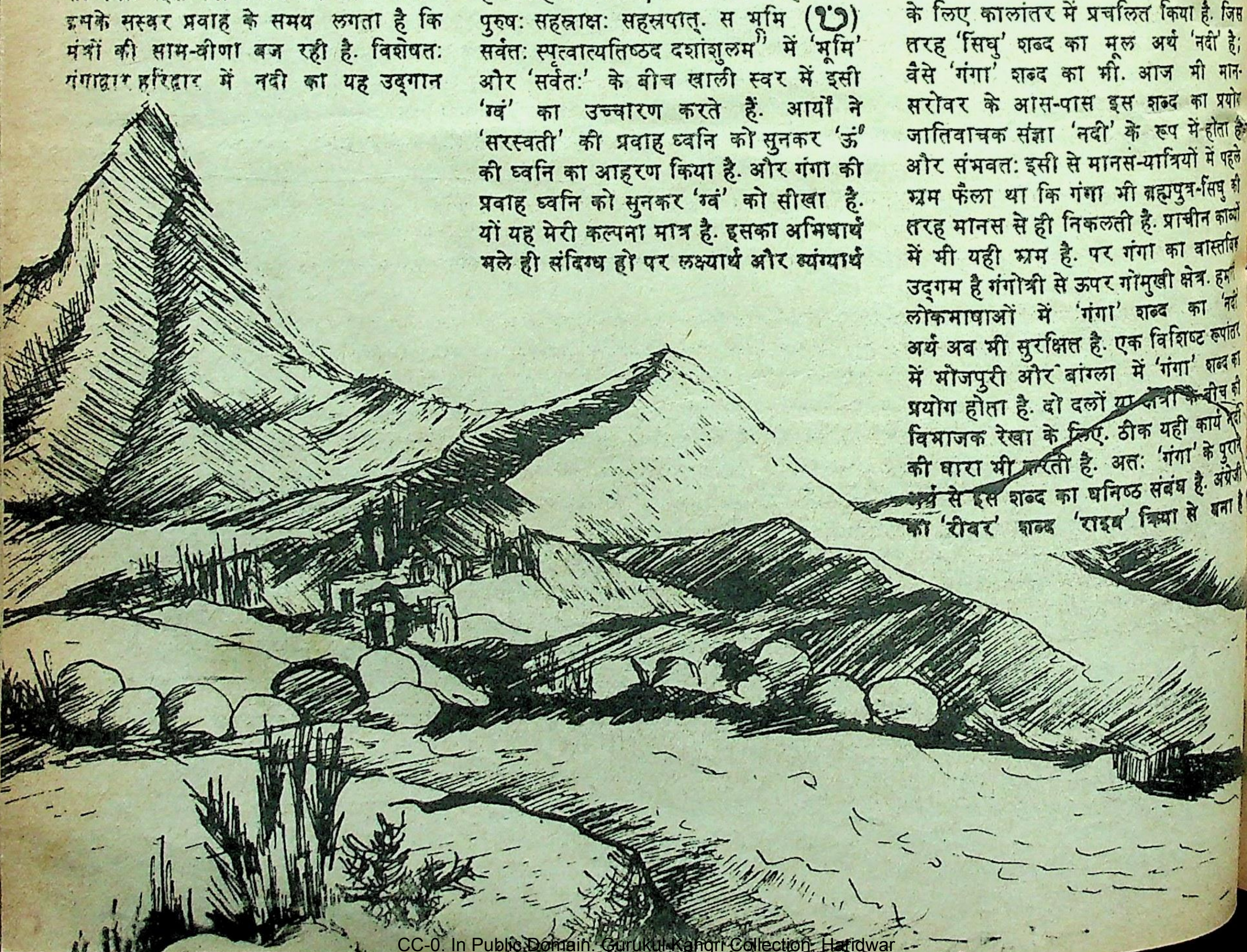

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसका भी अर्थ विभाजक रेखा ही होता है. 'गंगा' शब्द मूलतः मानसरोवर के आस-पास या हिमालय की पट्टी में विकसित शब्द-श्री का अंग है.

आचार्य सुनीति कुमार चाटुर्ज्या इस संबंध में बड़ी दिलचस्प व्याख्या प्रस्तुत करते हैं. 'आग्नेय' या 'आस्ट्रिक' भाषा परिवार के दो वर्ग हैं. 'कृष्ण निषाद' या ठेठ निषाद (उत्तर भारत) और 'पीत निषाद' या 'मान ख्मेर' (हिमालय के उत्तरी अंचलों में यत्र, तत्र, खासी-जयंतियां पहाड़ियों एवं हिंदचीन आदि). चाटुर्ज्या महाशय के अनुसार मूल ध्वनि 'गं' या 'गङ' है. यह हिंदचीन में 'खङ्' बन जाती है. और उससे निकलता है शब्द 'मि-खङ.' दक्षिण चीन में आकर यह ध्वनि 'कं' बन जाती है और उसका रूपांतर 'कि-अङ' या 'कि आङ' में हो जाता है, जैसे 'याङ टी-सी किआङ' की संज्ञा में जो दक्षिण चीन की एक नदी है. चाटुर्ज्या महाशय के अनुसार एक ही मूल निषाद-ध्वनि के ये 'गङ', 'खङ्' तथा 'कंङ' (अर्थात् गं, खं तथा कं) तीन रूपांतर हैं. यों समस्त भाषा-विज्ञान और नृतत्वशास्त्र अंधेरे में तीर मारना ही है, लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का. पर 'तुक्का' अर्थात बिना फलक का तीर भी क्रीड़ा का आनंद तो देता ही है. और मैं जो यहां तत्वज्ञान का धुआं उड़ा रहा हूं. वह किसी लक्ष्यभेद के लिए नहीं, सिर्फ मानसिक क्रीड़ा आनंद के लिए. लक्ष्यभेद का काम शोधकर्ताओं के जिम्मे डाल मैं शिव के सांड की तरह साहित्य-क्षेत्र में विचरण एवं अनाधिकार 'चरण' करता चल रहा हूं. अन्यथा भाषा-विज्ञान में दखलंदाजी का मुझे क्या अधिकार? तो भी "नाना पुराणनिगमागम" का चरण-विचरण करते चलना स्वभाव जो हो गया है. लगी लत नहीं छूटती है. इतना सब आकाश-पाताल एक करने का तात्पर्य इतना ही नहीं है कि 'गंगा' शब्द निषादों का दान है. गंगा मूलतः निषादों की नदी है; यह निषाद-प्रदेश अर्थात उत्तर भारत की महाकाव्य-भूमि में बहती है. "मा निषाद प्रतिष्ठा . . ." के आदि श्लोक के अपराधी एवं बाल्मीकि के पड़ोसी निषादों ने ही प्रथम-प्रथम इस नदी की धारा को हार-फूल, अर्ध्व एवं हंसों की बलि प्रदान की थी. आर्यों ने उनका अनुसरण किया. बाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता ने भी इस नदी की अभ्यर्थना में सहस्रघट मदिरा का अर्घ्य एवं प्रचुर पक्वान्नों को समर्पित किया था. आज भी लौंग और गुड़ की 'धार' (जो स्थान मदिरा का वामाचार में है, वही स्थान नारिकेल जल अथवा लौंग-गुड़-जल का दक्षिणाचार में है) नदी के अर्घ्य के रूप में दी जाती है. साथ ही फूल, पुष्पहार, पीत परिधान अथवा चुनरी, सिंदूर सोहारी (पूरियां) एवं मांस के स्थान पर अंकुरित 'माष' जिसे स्थानीय भाषा में 'जाय' भी कहते हैं. साथ ही नदी की वंदना में गाये गये लोकगीतों में जोड़ा हंस की बलि की बात भी कभी-कभी कह दी जाती है.

आज नदी अपना आदिम स्वभाव त्याग कर शुद्ध वैष्णव संस्कार ग्रहण कर चुकी है. यों इसका मूल उत्स तो परमपद अर्थात आकाश से नीचे तुषार रूप में उतरा हिम ही है. अतः शाब्दिक अर्थ में भी गंगा का जन्म विष्णु के चरण से ही होता है. निषादों के बाद आर्यों के संसर्ग में आकर नदी का उदार-धीर-पवित्र वैष्णव चरित्र हमारे वाङ्मय में दिन पर दिन विकसित होता गया. आर्यों ने इस नदी के प्रति शीश नवाया, इसे माया कहा, इसे अपनी स्मृति-शेष सरस्वती के समकक्ष और बाद में उससे भी ऊपर स्थान दिया, इसे पापहरा-तापहरा जीवन-धारा के रूप में स्वीकार किया. इसके जल को 'ब्रह्मद्रव' कहा, इसे त्रिपथगा कहकर स्वर्ग-मर्त्य-पाताल में मंदाकिनी-भागीरथी-भोगवती के रूप में त्रिभुवनव्यापिनी माना, इसे परमाप्रकृति आद्या के समकक्ष माना, महाकाव्यों एवं पुराणों के माध्यम से इसका सहस्त्रमुख-स्तवन किया और इतिहास की सहस्र-सहस्र भुजाओं से इसकी आरती उतारी. नदी मूलतः भले ही निषादों की हो परंतु इतिहास के मध्य वह भारतीय आर्यत्व का प्रतीक हो उठी है. आर्यत्व चरित्र और मन की उदारता का नाम है. इसका 'जाति' या 'रक्त' के अर्थ में हमारे साहित्य में नहीं प्रयोग किया गया है. आर्य भले ही बाहर से आये हों, परंतु आर्यत्व के मानक का विकास भारत-भूमि में हुआ है. इसी आर्यत्व की व्याख्या करने के लिए 'रामायण' महाकाव्य लिखा गया. अस्तु, हिमाचल भूमि ही कार्यभूमि, भारतीय ही आर्य हैं और गंगा ही आर्य नदी है. हिटलर या शाह ईरान भले ही आर्य कहलाने के लिए छटपटायें परंतु यदि वे ही आर्य हैं तो फिर 'यवन' कौन है? है उन लोगों के पास राम-युधिष्ठिर, अशोक-विक्रमादित्य या इस गिरी हालत में भी गांधी—जैसी चरित्रगत एवं आदर्शगत उदार चरित्र वैष्णवी महिमा? बिना आर्यशील के आर्यरक्त की बात करना दंभ मात्र है.

गर्मी के दिनों में मैं कभी-कभी पहर रात रहते ही, निचलाई रात में ही गंगातट को चल देता हूं. चारों ओर झन्न-झन्न सुनसान रात, अंतिम प्रहर की ढलती हुई वृद्ध पांडुर चांदनी फसल काटे नग्न खेतों में खड़े छाया-पुरुषों-जैसे बबूल, एक चुहचुहिया को छोड़कर कहीं और कोई चिड़िया का पूत भी नहीं बोलता है हां कभी-कभार कोई स्यार मामा बगल से गुजर जाते हैं, पर वे अपनी धुन में और मैं अपनी धुन में. झिर-झिर हवा बहती है परंतु रास्ता इतना नग्न-निर्जन-निचाट और जनहीन होने पर ही उदास या भयावह नहीं लगता. रात बड़ी मनसायन, बड़ी ही सुहावनी लगती है. पता नहीं क्यों? शायद गंगा की वाण-भूमि में ही इतनी पवित्रता है. लगता है कि कोई सगी, कोई यार, कोई अदृश्य शुभाकांक्षी हवा में मेरे साथ-साथ निरंतर विद्यमान है. उसी के अदृश्य, पर निरंतर अनुभूत अस्तित्व से हवा भरी-भरी लगती है. और सारे अशुभ सारी उदासी को उसी की अदृश्य निराकार उपस्थिति निरंतर काटती रहती है. फलतः यह नग्न निर्जन असहनीय नहीं हो उठता है. यों मेरा स्वभाव भी कुछ ऐसा है कि एकांत में मुझे सुख मिलता है. एकांत मेरी वामी है. मेरा विश्वास है कि एकांत से दूध झरता है और उस झरते दूध का पान कोई योगी, कोई तक्षक, कोई भोगी तो अधिकारपूर्वक करता ही है, मेरे जैसे लोग भी, जिनके ललाट पर जन्म से ही तेल भस्म मिश्रित शनिश्चरी टीका है, मौका मिलने पर छककर पान करते हैं.

अतः मैं निर्जन रास्ते पर अकेले कंधे पर गमछा रखे और हाथ में एक मजबूत देशी लाठी लेकर चलता हूं, क्योंकि यदि किसी मामा की इच्छा हो सम्मुख आकर कंठ पकड़कर निमंत्रण देने की तो उनके उपयुक्त प्रत्युत्तर की भाषा इस लाठी के माध्यम से ही दी जा सकती है. इस प्रकार पौ फटने से घंटा-पौने घंटा पहले ही मैं कभी मतसा-चितावन पट्टी के सीवान पर तो कभी 'बाहरी' गंगा की रेती पर, तो कभी असंख्य पक्षियों से भरे 'चिरैंयाचक' वाले जल-सोत पर जा बैठता हूं. मेरे तट पर आसन मारकर बैठने के बावजूद तट की निर्जनता कम नहीं होती है, और मैं देखता हूं कि नन्हें-नन्हें जानवर अबोध मानव शिशुओं की तरह तुलतुल आते हैं और मेरी उपस्थिति को अग्राह्य कर के बड़े ढीठ की तरह हाथ-दो-हाथ दूरी पर ही तट पर उतरते हैं और पानी पीकर चुपचाप चले जाते हैं. एकांत भोगने के लिए भी साहस और धीरता चाहिए. कायर के पास इतना मनोबल कहां? वह तो क्षण-प्रतिक्षण पीछे से सांप या शूकर की अपेक्षा करते हुए धुकधुकी भोगता है. वह क्या मौज लेगा? यों मैं भी वृक या दतेल वराह के आने से या सांप के दर्शन मात्र से ही भाग खड़ा होऊंगा. परंतु यह मानी हुई बात है कि वृक या वराह उन घाटों पर नहीं उतरते जहां मनुष्य स्नान करते हैं या जहां मनुष्यों का आवागमन होता है—एक घंटा बाद यहां पर गीत गाती औरतों की पांत पर पांत उतरेगी कंधे पर कांवर लेकर अहीर और निषाद उतरेंगे, गाय-बैल लेकर चरवाहे आयेंगे. सांप की बात और है. वह तो काल की तरह सर्वव्यापी है. पर वृक-सर्वव्यापी है. पर वृक-वराह अपना घाट ऐसे खोंचे या संकीर्ण खड्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रखे होंगे कि आदमी के लिए वह अगम होगा—वे स्वयं नहीं चाहते कि ईश्वर के इस कनिष्ठतम लाड़ले से उनकी कमी देखा-देखी हो. इसी से मैं इस पापहरा नदी के तट पर अकेले जाता हूं. ऐसे महासुख में साथ रहकर भी किसी को सहभोगी नहीं बनाया जा सकता. किसी के साथ रहने पर भी दुकेलापन नहीं होगा, निस्संगता ही रहेगी, अवश्य ही 'बहुवचन' निस्संगता. वास्तव में, एकांत का यह सुख रति क्रिया से भी ऊपर का सुख है क्योंकि इसमें केवल 'उत्तम पुरुष' का ही अनुभव होता, 'मध्यम पुरुष' और 'अन्य पुरुष' समान रूप से अस्तित्वहीन हो जाते हैं. इस एकांत भाग के महासुख में अनुभव निभृत अकेलापन सारे बंधनों से परे का अतिक्रांत अनुभव है. यह बंधन-मुक्ति है और इस बंधन मोचन के अनुभव क्षण में किसी 'बंधु' का, चाहे वह प्रेमिका ही क्यों न हो; अस्तित्व 'अवांछनीय' है. क्योंकि 'बंधु' का, अर्थ ही है बांधने वाला, एकांत के झरते दूध का पान केवल 'उत्तम पुरुष' केवल 'मैं' के अनुभव द्वारा संभव है. 'तदेकोअवशिष्टः शिवो केवलोअहम्!' का अनुभव इसी के समानांतर जाता है.

पहले पौ फटती है और उसके पंद्रह-बीस मिनट बाद चक्का फूटता है. चक्का फूटते ही अद्वैत का अनुभव अवसान हो जाता है और धरती द्वैत के या बहुत्व के अनुभव से संपन्न होकर सामने आती है. लगता है पंच महाभूत जग गये हैं. और वे हमारी अनुभूति के सांचे में तन्मात्राओं का रूप और आकार ग्रहण कर रहे हैं. आकाश-पट, आस-पास का तट-देश और नदी का पाट, ये सब लाल रंगीन हो उठते हैं. उन पर सोने की आभा झलकने लगती है और कगार पर इसी समय गीत गाती पांतें उतरती हैं, पंख-पखेरू के शोरगुल के भीतर मानव कंठ की अलग और विशिष्ट सत्ता स्थापित करती हुई. दिवस के प्रथम प्रसन्न उद्भास के साथ, नदी की धार-जैसा सहज झिर-झिर गीत बहता हुआ आता है और यह गीत बगल के घाट पर उतरकर शांत हो जाता है. फिर शुरू होती हंसी, डांट-डपट, चुहल, मचलन और पुचकार; साथ ही बीच-बीच में टेक की तरह किसी प्रौढ़, किसी करुणार्द्र कंठ से 'हे गंगा मैया......' का प्रार्थना स्वर और डुबकी. पर तट के पास चुलबुलाहट और कुछ दूर पानी में मंथन और परस्पर उदक-निक्षेप, जल में संतार काटने की ध्वनियों और शोरगुल, बाला, किशोरी, तरुण, प्रौढ़ा, कंठ-ध्वनियों का समवेत अवतरण. सारा एकांत अब महामाया के दखल में आ गया; देखते-देखते रूप और ध्वनि की विविध वर्णमालाओं का मेला जुड़ गया; और मेरे मन में उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष तीनों सर्वनामों की सगुण सत्ता का स्पष्ट अनुभव होने लगा. जो गीत बनकर तट पर उतरी थी, साहस और उत्साह बनकर जल में प्रविष्ट हुई थीं, अब वे प्रार्थना और सुख बनकर जल से बाहर आ गयीं. इन्हीं में से कोई पार्थिव बनाकर, उसके माथे पर रुई, दूध, अक्षत और फल रखकर नदी में उसे विसर्जित कर रही है. इनके दूध, फूल, अक्षत और लौंग की 'धार' को नदी प्रतिदिन ग्रहण करती है और इनकी प्रार्थना की डाक लेकर महापितर अनंतशायी समुद्र की ओर दौड़ती निकल जाती है.

डार्विन साहब ने भी कहा है कि जलधि ही आदि पिता है. उसी के सान्निध्य से प्रथम जीवन 'अमीबा' या एकतंतु जीवन बनकर प्रकट हुआ था. उसी के मध्य प्रथम साबुत प्राणी मत्स्य का अवतरण हुआ था. उसी महापितर जलधि को यह नदी मनुष्य की प्रार्थना का समाचार देने दौड़ी हुई जाती है. नदी बेचारी तो माध्यम है. जो करना होगा वह आदिभूत महापिता समुद्र ही करेंगे. नदी तो तुम्हारे दूध, फूल, अक्षत, लौंग-धार की वाहिका मात्र है. यदि तुम्हारा नैवेद्य व्यर्थ हुआ, यदि तुम्हें काक मुख से भी कोई संवाद नहीं मिला, यदि तुम्हारी याचना

एक मिथक कथा ग्रीस की

सिसिफस की सजा

कारिंथ का राजा और इयोलस का पुत्र था सिसिफस. उसका विवाह एटलस की पुत्री मेरोपी से हुआ था. सिसिफस के राज्य के निकट किआनी का पुत्र आटोलिकस रहता था, जो अपने पिता की तरह चोरी करने में माहिर था. उसने सिसिफस के पशुओं को चुराना शुरू कर दिया, जिससे सिसिफस चिंतित हो उठा. दिनोंदिन उसके पशुओं की संख्या घटने लगी.

एक दिन पशुओं के खुरों के सहारे तमाम लोगों के साथ सिसिफस आटोलिकस के पास जा पहुंचा.

इयोलस की मृत्यु के बाद सिसिफस के भाई सेलमोनियस ने थिसली का सिंहासन छीन लिया. तब भविष्यवाणी हुई कि भतीजी से प्राप्त तेरे पुत्र तेरे अपमान का बदला लेंगे. सिसिफस ने भतीजी टायरो को अपने झूठे प्रेमजाल में फांस लिया, किंतु बाद में पता चलने पर टायरो ने अपने दोनों पुत्रों की हत्या कर दी. कुछ दिन बाद बाजार में प्राप्त कुछ शवों की हत्या का आरोप सिसिफस ने अपने भाई पर लगा दिया, जिसके कारण उसे थिसली से निष्कासित कर दिया गया. अब सिसिफस राजा तो बन गया, पर बहुत ही छली और कपटी राजा.

एक बार देवसम्राट ज्यूस ने जल देवता एसोपस की सुंदरी पुत्री एगिना का अपहरण कर लिया, जिसे सिसिफस ने देखा और कारिंथ में सदा झरनेवाले झरने की कीमत पर एसोपस को सब कुछ बता दिया, इससे ज्यूस बहुत क्रुद्ध हुआ और सिसिफस के प्राण हरने के लिए मृत्यु को भेजा. छल-कपट से सिसिफस ने मृत्यु को बंदी बना लिया.

इससे देवता बहुत चिंतित हो उठे. युद्ध देवता एरीज खुद गये और मृत्यु को पाशमुक्त कर उसी पाश में सिसिफस को बांध दिया. सिसिफस ने हार नहीं मानी. पत्नी को खबर भेजी कि मरने के बाद मेरा शव न तो जलायें न ही दफनायें. पत्नी मेरोपी ने ऐसा ही किया.

टारटारस में रोनी सूरत बनाकर सिसिफस ने पर्सोफनी को फुसलाया, "मेरी पत्नी ने मेरा अंतिम संस्कार तक नहीं किया. इसके बिना यहां मेरा रहना अनुचित है. मुझे चार दिन के लिए पृथ्वी पर भेज दो. अपना अंतिम संस्कार करवाकर और पत्नी को दंड देकर मैं वापस आ जाऊंगा." पर्सोफनी उसके चक्कर में फंस गयी और उसे मुक्त कर दिया. फिर क्या था, सिसिफस अपना वादा भूल गया और वृद्धावस्था तक राज करता रहा.

देवताओं को यह पता लगा तो इस बार हेर्मीज को भेजा गया, जो छल-कपट से फिर सिसिफस को बांध लाया और इस बार सिसिफस को ऐसा दंड दिया गया, जो अपने आप में बेमिसाल है.

टारटारस में बहुत बड़ा पत्थर है. सिसिफस को यह स[illegible]ई कि वह पत्थर को लुढ़काकर पहाड़ के शिखर तक ले जाये और दूसरी ओर लुढ़का दे, पर जैसे ही वह पत्थर शिखर पर पहुंचने को होता है, पत्थर लुढ़ककर फिर नीचे आ जाता है. सिसिफस बार-बार पत्थर को शिखर पर ले जाने का प्रयास करता है और बार-बार असफल होता है. तब से लेकर आज तक सिसिफस उस पत्थर को शिखर पर ले जाने का प्रयास कर रहा है. यह क्रम अनंत काल तक चलता रहेगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृषित देह प्यासी रही, यदि तुम्हारा मन निरुज नहीं हुआ, यदि तुम्हारी बेटी परती रही, यदि तुम्हारा खोया धन वापस नहीं लौटा, यदि तुम्हारे मालिक की मूंछें अदालत में खड़ी नहीं रहीं, तो इन सबके लिए नदी उत्तरदायी नहीं. वह तो परम पिता तक तुम्हारी आर्ति पहुंचा देने-भर की जिम्मेदार है. देना होगा तो देगा वही राम, वही सहस्रशीर्षा समुद्र, वही परम स्नेही हजार-हजार हाथों वाला समुद्र. सुनो, असल बात को समझो. तुम्हारे मन में एक नदी बहती है, इस बाहरी नदी के समानांतर. तुम्हारे मन में दूध फूल, अक्षत और लौंग-धार अर्पित होते हैं. इस तुम्हारे बाहरी समर्पण के समानांतर और तुम्हारे मन में एक सहस्रशीर्षा भाव समुद्र है, इस बाहरी जलधि के समानांतर या उससे भी बृहत्तर.

वही तुम्हारी कामना की ऊर्जी पर ईश्वर बनकर रहा करता है. उससे ही मांगो. जो मांगोगी सच्चे मन से, वह सब मिलेगा, क्योंकि उस भाव समुद्र के लिए कुछ अदेय नहीं, यदि तम निर्मल मन उसकी अदालत में जाकर खड़ी हो जाओ बिना किसी कपट के दुराव के. यह बाहरी नदी तो अनुभव का माध्यम-भर है. असल है भीतर.

मैं मन-ही-मन किसी अदृश्य नारी से उपर्युक्त संवाद बोल रहा हूं. उधर विगलित परंतु घनघोर कंठ से कुछ वृद्धाएं एवं प्रौढ़ाएं गंगा मैया का गीत गा रही हैं और दीर्घांगी कृष्ण काया, लोचनबो घटवारिन अर्थात घाट-स्वामिनों निषादवधू उच्च कंठ से आदेश दे रही हैं—

"मालकिन लोग यहां पर सात-सात जोड़े सोहारी, एक-एक मुट्ठी जाय और प्रत्येक जोड़े पर पांच आने या पांच नया पैसा रखो. . . . ." यह नदी की पूजा है और साथ ही घटवारिन का हक है. इसी कारण निषाद वधु का स्वर अधिकार-मंडित है. बाम्हन-बरूआ की यहां जरूरत नहीं. प्रत्येक मालकिन वधू तट पर जल से एक हाथ दूर पलाश के पत्तल या केले के पत्ते पर सात जोड़े सोहारी जाय, लड्डू और पैसे रखती है, धार गिराती है और नदी को अक्षत, फूल दूब अर्पित करती है, एक छोटा घी का दीप भी जला देती है. केवट वधू लोचनबो विधानपूर्वक नदी की मनौती पूरा करा रही हैं. अंत में तट पर 'पियारी' या 'चुनरी' भी रख दी जाती है; भोग या नैवेद्य के साथ-साथ.

पियरी और भोग-मिष्ठान्न आदि कार्य वंशीय मालकिनों का हुआ, पर सात जोड़े सोहारी (शुद्ध घी की पूड़ियां) एवं पैसे निषाद-वधू के, क्योंकि वह 'बलि' है, नैवेद्य नहीं. बलि और नैवेद्य में अंतर यही है कि बलि निर्माल्य है, देवता की वस्तु है. अतः उसे देवता का सगोत्र खा सकता है, सभी नहीं. पर नैवेद्य उसका प्रसाद है, उसका आशीर्वाद है, उसका सभी लोग वितरण करके खाते हैं. नदी भगवती है, आद्या रूपिणी है, उसे बलि चाहिए चाहे मिष्ठान की हो अथवा जोड़ा हंसों की हो. इस बलि को नदी की सगोत्रा निषाद वधू ही खा सकती है, हम नहीं : आर्य वंशीय हमें खाने का अधिकार नहीं और इस तथ्य पर इतिहास के मध्य अदृश्य बैठा आदिम निषाद मन ही मन मुसकराता है.

लोचनबो उक्त सात जोड़ों में से एक टुकड़ा लेकर नदी को अर्पित करती हैं. भक्तिपूर्वक, भोजपुरी में कुछ बुदबुदा-कर. संभवतः कोई मंत्र-वंत्र नहीं, सीधा-सादा वाक्य—

"ल' गंगा मइया, सब कर सकल मनसा पुरन कर. हे माता, सरन तोहार!" ऐसा ही कुछ. शेष को समेटकर बांध लेती हैं क्योंकि नदी को अर्पित बलि खाने का अधिकार उन्हीं को है.

वे नदी की गोत्रजा हैं. दूसरी ओर बच्चों में प्रसाद वितरण का कलरव उठ रहा है. इस छीना झपटी और हंसी खुशी का समाचार देने नदी समुद्र की ओर तुरत धावमान हो जाती है.

मैं मन ही मन सोचता हूं—हम नदी के तट पर हवन गाहे-बगाहे करते ही हैं, अतः कार्य पितर संतुष्ट! हम नदी को हार-फूल और गीत अर्पित करते हैं, अतः द्राविड़ पितामह संतुष्ट!.

हम नदी को बलि और अर्घ्य धार अर्पित करते हैं. अत : निषाद प्रपितामह भी संतुष्ट! गोया यह नदी, नदी न होकर भारतीय इतिहास का चिन्मय प्रवाह हो! इधर मैं यह सब सोचता हूं. उधर अब गीत मुखर पांतें कगार आरोहण कर रही हैं. उनकी गृहाभिमुखी पद-यात्रा का प्रारंभ है. पर जाते-जाते भी नदी को इनके कंठ वंदना अर्पित करते जाते हैं.

एक अति परिचित गीत कानों में आता है. एक पांत गाती है.

"पत्थर फोरि मइया निकलेली,
सिल-सखुआ तोरि देली
तोरि देली रावनक किलवा
मैं तोहरे सरन धइले ना!
धरती भयली नवखंडत
गंगा मैइया. . .तोहरे सरन धेंइले ना

(माता तू पत्थर फोड़कर निकलती है, शिला और शालवनों को तोड़ देती है; रावण का किला तोड़ देती है, हम तुम्हारी शरण में धरे हुए हैं; ओ मां, तुम्हारे प्रवाह से यह धरती नौ खंडों में विभाजित हो गयी है. हम तुम्हारी शरण पकड़े हैं.) कड़ी समाप्त होते न होते ही, दूसरी पांत की ओर से इसका प्रत्युत्तर आता है :

"मइया, राजा चढ़ावे ला हार फूल,
बगिया ते लोढ़ि के
रानी बेइलिया फल ना!
केवटा चढ़ावे जोड़ा हंस,
मैं तोहरे सरन धइले ना!
. . . . !"

(ओ माता, राजा दिव्य फूलों के हार तुम्हें अर्पित करता है, रानी बगिया से लोढ़कर बेला का फल तुम्हें अर्पित करती है. पर तुम्हारा केवट तुम्हें जोड़ा हंस की सजीव बलि अर्पित करता है! जो तुम्हारी शरण में निरंतर रहता है)

धीरे-धीरे गीत की मुखर पांतें मुझसे दूर होती जाती हैं और नदी को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करके मैं भी स्नान करने का उपक्रम करता हूं. भला ऐसी नदी में बिना प्रणाम किये कैसे पैर डाला जा सकता है? □

मिथक, सागा और मार्यन

■ कमल नसीम

मिथक मूलतः अनुभूत तथ्यों पर उद्दीप्त कल्पना का परिणाम हैं. इनमें आसपास के वातावरण, प्राकृतिक घटनाओं और उनके प्रति मानव की प्रतिक्रिया है. कहीं-कहीं तात्कालिक राजनैतिक घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तित्वों का भी समावेश है, जो कि 'सागा' का क्षेत्र है. अतः सागा से इनका संबंध स्पष्ट करना जरूरी है. मिथक, सागा और मार्यन तीन अलग शैलियां हैं. मुख्य रूप से सागा उन रचनाओं को कहा जाता है, जिनके नायक मनुष्य हों. ये भूले-बिसरे ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी हो सकते हैं. सागा इनकी शूरवीरता और साहसपूर्ण उद्यमों की गाथा है और मार्यन मुख्य रूप से मनोरंजन करनेवाली कथा को कहते हैं. अंग्रेजी में इन्हें फेयरी टेल्स भी कहा जा सकता है, लेकिन मिथक हमें जिस रूप में प्राप्त हैं, उनके स्थलों पर बहुधा ये तीनों शैलियां आपस में इतनी घुलमिल गयीहैं कि केवल मिथक को अलग करना संभव नहीं रह गया है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मिथकों की भंगिमाएं

संजीव

मिथक मूलतः जनसामान्य की अपनी निर्मिति होते हैं; लेकिन विडंबना यह है कि बड़ी चतुराई से व्यवस्था उन्हें अपने हितों के अनुरूप ढाल लेती है, जनसामान्य फिर भी लोकगीतों और लोककथाओं में जनपक्षीय मिथकों को जीवंत और जीवित रखता है, क्यों और कैसे? एक जनपक्षीय विश्लेषण—

इतिहास के सत्य से अलग लोक मानस एक अलग सत्य गढ़ता है, जहां उसकी दमित वासनाओं और कुचले हुए अहं को खुलकर खेलने की छूट है. इस काल्पनिक संसार का नायक सर्वशक्तिमान है, वहां हर कर्म का कर्मफल है, मृत्यु के खिलाफ अमरत्व है, जीवन के समापन के विरुद्ध पुनर्जन्म है. वांछित फल देनेवाले देवी-देवता हैं, टोने टोटके तथा मंत्रों के साधन हैं, जो असंभव को भी संभव कर दिखाते हैं. वहां के पशु-पक्षी से लेकर पेड़-पल्लव और नक्षत्र तक प्राणवंत और आत्मीय हैं, वहां स्वर्ग है, नरक है, उदयगिरि है, कामधेनु और कल्पतरू हैं.

चूंकि वर्ग विशेष अपने स्वार्थ और अहं की पूर्ति के लिए अपने अनुरूप ही मिथक बुनता था, अतः अन्य वर्गों को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ा. और उसे अपने-अपने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा जाता रहा. भारतीय मनीषा में पुराण, रामायण और महाभारत के विपुल मिथकों का संसार बार-बार संस्कारित होता रहा और यह क्रम अभी भी चल रहा है. जिस प्रचलित रूप में मिथक हमें उपलब्ध हैं, हमें चमत्कृत करते हैं. राम कथा के प्रताप भानु, नारद, परशुराम, अहिल्या, श्रवणकुमार, जटायु, संपाती, हनुमान, रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, शंबूक, राम, भरत, सीता, उर्मिला, आदि चरित्र और महाभारत के बर्बरीक, कर्ण, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, शिखंडी, शकुनी, गांधारी, कुंती, द्रौपदी की विडंबना, लाक्षागृह, व्यूह तथा अनेकानेक प्रसंग जीवन और जगत की अनेक परतों को खोलते हैं तो भर्तृहरि, गार्गी, श्वेतकेतु, नचिकेता आदि हमारी चिंतना के मूर्तरूप हैं. मोरध्वज, शिवि, हरिश्चंद्र, दधीचि, राजा नृग और भगीरथ जैसे लोकधर्मी मिथक हैं तो भस्मासुर, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ, कंस आदि के, ऋषियों, राजाओं, देवताओं, अप्सराओं आदि से लेकर पहाड़, नदियों, वन-प्रांतरों तक के मिथक हैं. आज भी हमारी चिंतना और कलात्मक सर्जना का बहुलांश इन मिथकों के उपजीव्य से उद्भूत होता है. इन मिथकों का विस्तार हमारे प्राक्काल के गणित और विज्ञान तक है, जैसे लीलावती के विधवा होने की कथा. इस दृष्टि से सबसे ज्यादा विस्मित करते हैं समय और शक्ति के मिथक. मसलन ब्रह्मा के दिन-रात, कल्प, कल्पांतर, प्रलय आदि की अवधारणाएं और लोमस ऋषि, जो ब्रह्मा के एक वर्ष पूरे होने पर अपना एक लोम उखाड़ देते, फिर भी इस परम दीर्घायु ऋषि ने संसार को क्षणभंगुर माना और अपनी स्थायी कुटी नहीं बनायी.

काल की गूढ़ अवधारणा को हास्य की चाशनी से हल करने के क्रम में बलराम-विवाह का मिथक आता है. बेचारे बलराम! हजारों रानियों, पटरानियों, प्रेमिकाओं के स्वामी कृष्ण और उनके बड़े भाई होकर भी अविवाहित. कुंकियाहट होने लगी तो खिसिया कर पहुंचे ब्रह्मलोक. ब्रह्मा से पूछा, "आपने मेरे लिए कोई लड़की नहीं पैदा की." ब्रह्मा ने कहा, "अभी-अभी पैदा हुई है. जितनी जल्दी पहुंचोगे, उतनी ही जवान पाओगे." ब्रह्मलोक से जल्दी-जल्दी लौटने के क्रम में भी बलराम को कई वर्ष लग गये, तब तक 'रेवती' जवान हो चुकी थी, जबकि बलराम की आयु ब्रह्मांड में बहुत कम ही बीत पायी थी.

काल की अवधारणाओं के सिलसिले में सबसे गूढ़ और सबसे विराट मिथक है काली

और शिव का. काली शक्ति हैं, नग्न हैं, फिर भी अश्लील न होकर आतंकप्रद. पापी रक्तबीज का रक्त पान करती हैं, जमीन पर गिरने के पहले ही. आत्मसंहारिणी भी हैं. अपना ही सिर काटकर आप अपना रक्त पी जाने वाली छिन्न-मस्ता, कल्याणी भी हैं. शिव महाकाल हैं. महाकाल के ऊपर महाकाली के शाश्वत पग-निक्षेप, समय और शक्ति की द्वंद्वात्मकता! इसी से सृष्टि है, इसी से संहार. अगणित मुंड कट-कटकर गुंथ रहे हैं उनके मुंडमाल में, जैसे क्षुद्र व्यतीत इतिहास! यहां आदिशक्ति जितनी विराट हैं, महाकाल भी उतने ही सर्वव्यापी, उनकी एक तीसरी आंख भी है, औसतन भोले मिजाज के विषपायी तक मगर कुपित हो जायें तो तांडव!

हमारे यहां हास्य के मिथक नारद रहे, क्रोध के दुर्वासा, सत्य के हरिश्चंद्र, वचन के रघु, प्रेम के काम-रति, व्यभिचार के इंद्र, जयंत, परिश्रम के भगीरथ, पंगु ज्ञान के बर्बरीक, पराक्रम के हनुमान और शौर्य के तो अजस्र मिथक हैं. विभिन्न धर्म-मत ही नहीं, क्रम-क्रम से कबीलाई, अनार्य, द्रविड़, मंगोल, यूनानी, कुषाण, हूण, आभीर, तुर्क, अफगान, मुगल, अंग्रेज आदि के संघात और समिश्रण ने नये-नये मिथकों को पैदा किया, मगर हमारे वे पुराने मिथक ही आज तक प्रभावी रहे. गहराई से जांचने पर एक तथ्य नजर आता है, वह यह कि इन मिथकों के नायक राजा, देवी-देवता या ऋषि-मुनि रहे हैं. सामंतवाद और पुरोहितवाद के हितों में अधिसंख्य मिथक गढ़े और प्रचारित किये गये. अक्सर वर्ग-वर्ण घृणा और एक दूसरे की हेठी दिखाने के क्रम में अपने नायक को स्थापित किया गया. 'चतुवर्णं म स्रष्टम' या शूद्र ब्रह्मा के पैर से निकले बताये गये. मनु से लेकर व्यास और तुलसीदास तक जाने अनजाने इसके पृष्ठपोषक रहे. फल यह हुआ कि नारी और अन्त्यज्यों का मनोबल हमेशा रौंदा जाता रहा. सीता, द्रौपदी आदि की विसंगतियां और हनुमान जैसे वीर भी रामचंद्र के गुलाम? गार्गी के और प्रश्न करने पर शिरोच्छेद की धमकी और एकलव्य का अंगूठा कटवा लेना तथा शंबूक का शिरोच्छेद. अंधविश्वास और मृत्युभीत, पापभीत संस्कार ने शिवलिंग जैसे जुगुप्सित मिथकों की भी दार्शनिक शिखंडी खड़ी की, मगर विरोध के स्वर और निम्न वर्ग-वर्ण की पीड़ा और सामंतवाद पर प्रहार किये जाने के भी नायाब मिथक हमें जगह-जगह मिलते हैं.

सामंतवाद के मूर्तिमान रूप हैं इंद्र. और उससे भी चिकने रूप विष्णु. इंद्र को सत्ता छिन जाने का भय सदा सताता है, वह तपस्वी की तपस्या खंडित करता है, नाच-गान, पर-स्त्री गमन में हमेशा लिप्त. आप इंद्र से घृणा क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सकते हैं, मगर विष्णु से नहीं, उनसे सम्मोहित होकर रह जायेंगे. वह शेषनाग की शय्या पर क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ मोदमग्न रहते हैं. भक्तों पर संकट आने से उसे दूर करते हैं या अवतार लेते हैं, कृष्ण और राम उन्हीं के अवतार हैं.

सामंतवाद के पिष्टपोषक मिथकों में राम-कथा अन्यतम है. रामचरित मानस जैसा हिंदी का गौरव ग्रंथ इसी पर आधारित है, मगर जब हम रामकथा के उन मिथकों की ओर देखते हैं, जो शोषित जन की व्यथा अंकित करने में लिखे गये हैं तो मिथक की शक्ति से विस्मया-विमुग्ध रह जाते हैं. ऐसा ही एक मिथक है राम के मृगया प्रसंग का. तुलसी जहां 'जे मृग राम-बाण के मारे, ते तन तजि सुरलोक सिधारे' में सामंतवाद द्वारा की गयी हत्या को गौरवान्वित करते हैं, वहीं सोहरों में गाया जाने वाला निम्न मिथक गीत सामंतवाद के पूरे छद्म को खोलकर रख देता है.

'छापक पेड़ छिउलिया कि पतवन गहवर हो,
तेहि तर ठाढ़ि हिरनियां मनइ मन अनमन हो.

छिउली पेड़ की घनी छांव के तले खड़ी हिरणी अनमनी है. हिरना पूछता है, 'क्या तालाब सूख गये हैं, चरागाह सूख गये हैं, आखिर इस अनमनेपन की वजह...?' हिरणी कहती है कि न तालाब सूखे हैं, न चरागाह, उदासी की वजह यह है कि कल राजाजी के लड़के की छठ है और वे तुम्हें मार डालेंगे? हिरण मारा जाता है! दुःखी हिरणी मचिया पर बैठी मां कौशल्या से प्रार्थना करती है कि मांस तो रसोई में पकेगा, मेरे हिरण की खाल ही मुझे दे दें, देख-देखकर मन को समझा लूंगी कि मेरा हिरण अभी भी जीवित है. रानी कौशल्या इनकारती हैं कि तुम्हें हिरण की खाल भी नहीं मिलेगी, उससे तो मैं खंझड़ी मढ़वाऊंगी, मेरा राजकुमार उससे खेलेगा. हिरणी अब भी खड़ी है उस छिउली की घनी छांव में, मगर शोकविह्वल होकर असहाय भाव से महज विसूर रही है, खंझड़ी की आवाज है, पर उसकी पूरी दुनिया सूनी है. इस मिथक में स्पष्ट इंगित है कि सामंतवाद का पूरा अस्तित्व, उसका आमोद-प्रमोद, निम्न वर्ग के शोषण पर आधारित है. यह छोटा-सा मिथक गीत सोहर के रूप में इतनी महान रचना है कि रामकथा के सारे तामझाम भरे साहित्य को बौना सिद्ध कर देता है.

एक दूसरे मिथक में राजा और नटिनी के प्रसंग से सामंतवाद की बर्बर चालाकी के छद्म को तोड़ा गया है. पहाड़ के ऊपर बुलंद कंगूरे थे चौहानवंशीय राजा के. शराब के नशे में मस्त राजा नटिनी का नाच देखकर कहते हैं, 'यदि तुम उस पहाड़ की चोटी से राजमहल तक अपने बच्चे को पीठ पर बांध कर रस्से पर चलकर आ सको तो आधा राज-पाट तुम्हारे पुत्र के नाम.' नटिनी पीठ पर बच्चा बांधकर रस्से पर चलकर आती है. वह राजमहल तक पहुंचने ही वाली थी कि राजा रस्सा काट देते हैं. नटिनी अपने पुत्र के साथ नीचे की धारा में जा मरती है. लोग प्रतिवाद नहीं कर पाते. थोड़े ही दिन बाद यवनों का आक्रमण होता है, परिवार समेत राजा कंदरा में जा छिपते हैं. भूकंप आता है, राजमहल खंडहर हो जाता है और राजा परिवार समेत कंदरा में दफन हो जाते हैं. अलाव के गिर्द बैठे ग्रामवासी सुनाते हैं यह कहानी कि नटिनी अभी भी रोज राज-महल में आती है और यवनों का आक्रमण या भूकंप वगैरह भ्रम था, वह तो नटिनी का जादू मात्र था.

इस प्रकार हम देखते हैं कि बर्बर सामंतवाद और कुटिल पुरोहितवाद की दुरभिसंधि के खिलाफ जन सामान्य के मिथक सीना तान कर खड़े हैं, मगर साम्राज्यवादी, पूंजीवादी और सामंतवादी शक्तियां इनसे कतराते हुए अपने संरक्षक मिथकों के ही प्रसार-प्रचार में लगी रहती हैं. जरूरत है ऐसे मिथकों को विलुप्त होने से बचाने की, वरना यह प्रचारित किया जायेगा कि मुक्तिकामी चेतना की कोई परंपरा ही नहीं रही हमारे यहां, और जो कुछ है, आयातित है. ◻

भई...
वक्त बदल गया है!

वक्त वाकई बदल गया है।
पहले मेरी मम्मी घर का सारा
काम करती थी और मेरी
मालिश भी। पर अब मम्मी के पास
वक्त ही नहीं है।और पापा
काम-काज में समय लगाते हैं।
और मेरी मालिश भी करते हैं।
पर मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता
आखिर मेरी मालिश तो मेरी
मनपसन्द आलिमेसा से ही
होती है ना!

आलिमेसा
बेबी मसाज आयल

निर्माता :
शलक्स
प्रबंध कार्यालय : ए-30 विशाल एन्कलेव,
नजफगढ़ रोड, नई दिल्ली-110 027
हर बड़े कैमिस्ट व जनरल
स्टोर पर उपलब्ध

विजेता
INTERNATIONAL TRADEFARE DIAMOND STUDDED AWARD
1980-81

सिनथैटिक/सुगंध रहित

BDK 1009

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनामदास का पोथा

हजारीप्रसाद द्विवेदी

कल्पना कीजिए, उस पुरुष की जो वयस्क होकर ज्ञान-ध्यान भी जान चुका हो, पर नहीं जानता हो कि स्त्री क्या होती है.... कि किस स्त्री को किस संबोधन से बुलाना चाहिए ! — हिंदी साहित्य में एक लेखक के तौर पर अपने-आप में इतिहास बन जानेवाले स्वर्गीय हजारी प्रसाद द्विवेदी के गौरवशाली उपन्यास का सार

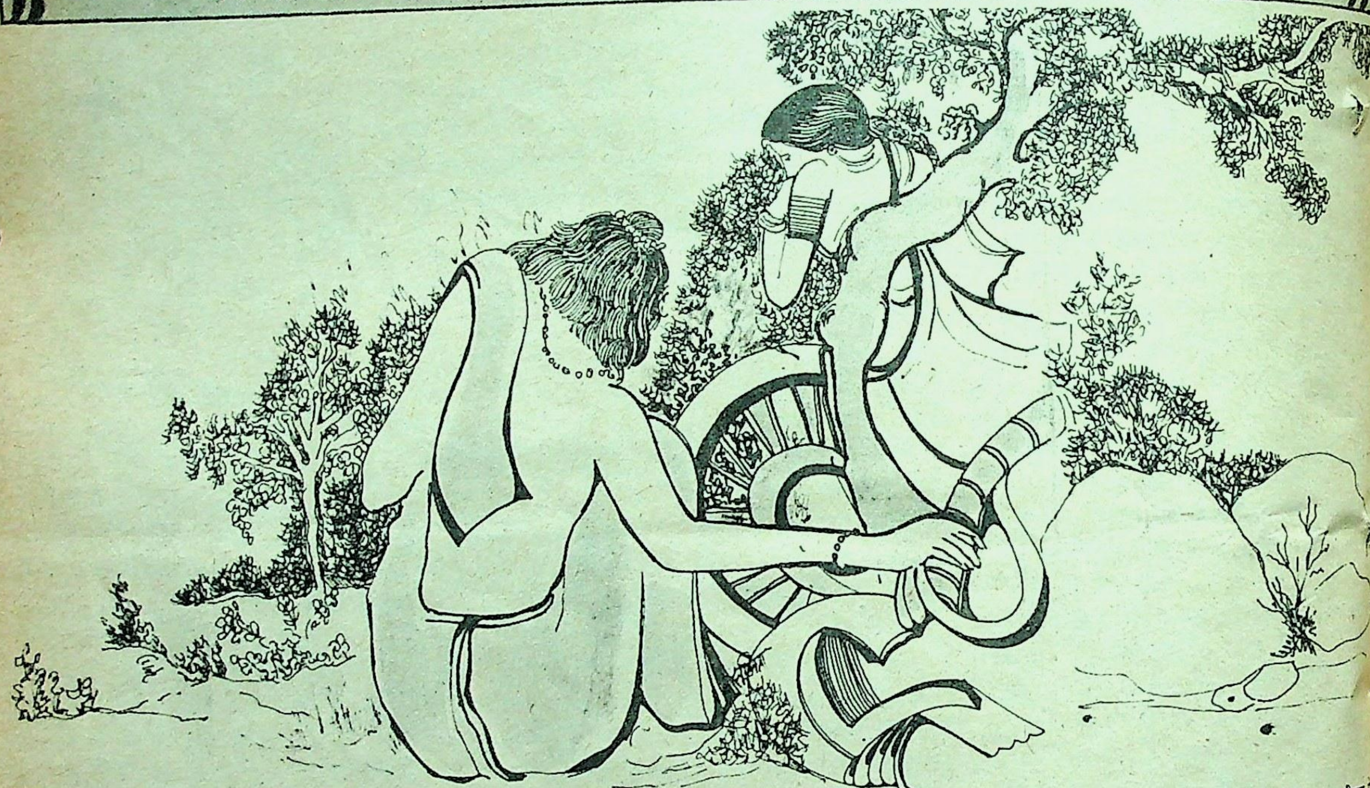

रिक्व ऋृषि अपने विद्यार्थियों को समझाते थे कि संसार में जो नानात्व दिखायी देता है वह वस्तुत: किसी एक ही मूल से विकसित हुआ है और फिर मूल में विलीन हो जायेगा. उनका बालक अधिकांश समय चिंतन-मनन में ही व्यतीत करता था. वह आशचर्यचकित हो जाता.

देखते-देखते बालक किशोरावस्था में आ गया. अब उसे सिर्फ इतना ही मालूम था कि उसका नाम रैक्व है अर्थात किसी रिक्व ऋृषि का बेटा.

तरुण तापस रैक्व तीसरे पहर आसन से उठा. उस दिन उसने समाधि में अनुभव किया था कि समस्त चैतन्य जगत को जो चीज सचमुच प्राणवंत बनाये हुए हैं, वह वायु है. उठकर वे नदी में स्नान करने के लिए चले गये. तभी उन्होंनें देखा कि आसमान के पश्चिमी किनारे पर काले मेघ खड़े दिखायी दे रहे हैं. सरल तपस्वी को यह समझ में नहीं आया कि आंधी आनेवाली है. अचानक बड़े जोर की आंधी आयी, साथ ही भंयकर वर्षा हुई. ऋृषिकुमार नदी की गरजती हुई तरंगों से काफी दूर तक अकेले जाते रहे.

धीरे-धीरे आंधी का वेग कम हुआ. ऋृषि की मूर्च्छा भंग हुई. आश्चर्यचकित हो वे तारों भरे आकाश को देखने जगे. उनके मन में वायु, जल और आकाश यही तीन तत्व चक्कर काट रहे थे. वे ठीक नहीं समझ रहे थे कि आखिर वे हैं कहां. उन्होंने सावधानी से चारों ओर देखा, एक पगडंडी दिखायी दी. गाड़ियों के चलने के चिन्ह बने थे. सामने एक बैलगाड़ी बुरी तरह कीचड़ में धंसी पड़ी थी. गाड़ीवान पास ही मरा पड़ा था. लेकिन गाड़ी से कोई दस-पंद्रह हाथ दूर कोई दूसरा जीव उसी तरह आंधी-पानी से जूझता हुआ शिथिल मूर्च्छित पड़ा हुआ था. रैक्व ने उसकी नाक पर हाथ रखकर देखा तो सांस चल रही थी. उन्होंने धीरे-धीरे उसके सब कपड़े उतारकर सुखाने का निश्चय किया. उन्होंने उसका सिर उठाकर कपड़ा हटाना चाहा. एकाएक उनका ध्यान उसकी आंखों की ओर गया. ऋृषि कुमार विस्मित होकर देखने लगे. ऐसी आंखें तो मनुष्य की नहीं होती हैं. ये तो बिल्कुल मृग की आंखें हैं. उसी समय उस प्राणी की आंखें खुल गयीं, वह अचकचाकर उठ बैठा. क्रोध भरे स्वर में उसने कहा, "कौन है तू? क्या कर रहा है?"

"मैं बहुत प्रसन्न हूं देवलोक के मनुष्य! तुम्हारी संज्ञा लौट आयी. तुम्हारे कपड़े सुखाने का प्रयत्न कर रहा था."

देवलोक के प्राणी ने कौतूहलपूर्वक कहा, "तुम कौन हो?"

"धन्य हो देवता, लोग मुझे रैक्व कहते हैं. अब बताओ तुम कौन हो ?"

"मैं महाराज ज्ञानश्रुति की कन्या हूं. तुम्हें इतनी तो जानकारी होनी चाहिए कि इस तरह से स्त्रियों का स्पर्श करना अनुचित है, पाप है, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूं. क्या तुमने व्याकरण में स्त्रीलिंग-पुलिंग नहीं पढ़ा है?''

''मैं जानता हूं कि कन्या शब्द स्त्रीलिंग है. मुझे यह भी मालूम है कि आर्ये,भवति, शुभे इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग के संबोधन हैं. परंतु मुझे ठीक नहीं मालूम कि इन पदों का अर्थ-पदार्थ क्या है.''

जाबाला ने अपने लिए ऋषिकुमार को 'शुभा' नाम सुझाया तथा हंसकर कहा,'' तुम एक काम कर सकते हो?... मुझे पिता के घर पहुंचा दो.''

ऋषिकुमार अत्यंत विनीत भाव से बोले,'' जैसा भी आदेश करोगी उसका पालन करना मेरे लिए हर्ष की बात होगी, परंतु तुम्हारे पिता के घर का रास्ता मुझे मालूम नहीं है. तुम्हें अपनी पीठ पर बिठाकर जिधर कहो उधर पहुंचा दूं.''

इसी समय कुछ लोग उधर आते दिखायी पड़े. राजकुमारी ने ऋषिकुमार से कहा, ''जान पड़ता है, मेरे आदमी आ रहे है. तुम कहीं दूर जाकर छिप जाओ''

ऋषिकुमार ने अनमने भाव से आज्ञा का पालन किया. राजकुमारी को लेकर सब लोग चले गये.

मगर जाबाला स्वयं कुछ हलचल महसूस कर रही है. छाती में कहीं बुरी तरह हलचल है यह भी क्या वायु का ही प्रताप है. भोलेराम कहते हैं कि उनके बाल रूक्ष हैं, जटिल है, स्वर्गीय प्राणी के मुलायम है. हाये रे भोला, तू तो जानता ही नहीं कि केशों मुलायम बनाने के लिए कितनी दासियां लगी रहती हैं.

जाबाला कह नहीं पा रही है मगर उसके हृदय में भारी उथल-पुथल है. राजा ने पुत्री की अवस्था देखी तो व्याकुल हो गये. वैध बुलाये गये पर रोग का कुछ पता न चला. चरों ने आकार सूचना दी कि कोई तापस-कुमार इस टूटे रथ की छाया में समाधि लगता है, जिससे बिटिया मौसी के घर जा रही थी.

ऋषिं कुमार रैक्व व्याकुल भाव से चलते गये. कहां जा रहे हैं, यह उन्हें स्वयं नहीं मालूम. क्लांति से शरीर चूर-चूर हो गया. उन्हें झपकी आ गयी. थोड़ी देर वे सो गये. स्वप्न में शुभा दिखायी पड़ी. उन्हें शुभा के अमृत वचन सुनायी दिये, 'ऋषिकुमार, तुम्हारी पीठ में वेदना है. आओ, तुम्हारी पीठ सहला दूं' और सचमुच शुभा ने उनकी पीठ पर हाथ फेर दिया. कितना शीतल स्पर्श था. सारी व्यथा जाती रही. ऋषिकुमार को अपूर्व तृप्ति मिल रही थी; पर अचानक उनकी निंद्रा टूट गयी. बैठे-बैठे जहां लेट गये थे वहां एक सुंदर लता थी. उसी के पल्लव हवा के झोंके से उनकी पीठ पर झूम रहे थे. क्या रहस्य है? वे सोचने लगे. सामने नदी थी. ऋषिकुमार नहाने के लिए एक नदी के किनारे उतर गये. वहां एक वृद्धा स्नानादि से निवृत्त होकर सूर्य को अर्घ्य दे रही थी. ऋषिकुमार एकटक उसकी ओर देखने लगे. सब मिलाकर वह शुभा के मुख के समान ही सौम्य-मनोहर मुख था. क्या ये भी स्त्री-पदार्थ है? पूछना चाहिए. तभी वृद्ध महिला ने ही उनकी ओर देखकर पूछा, ''इस तरह क्या ताक रहे हो सौम्य, तुम कौन हो?''

ऋषिकुमार के आश्चर्य में मानो बाढ़ आ गयीं. उनके गले से आवाज नहीं निकल रही थी. रुक-रुक कर बोले, ''भवति, मैं रेक्व हूं.'' पर पहले मुझे यह बतायें कि क्या कहकर मैं आपको संबोधित करूं?'' ''आप भी शुभा की भांति स्त्री-पदार्थ है?''

वृद्धा ने विस्मयपूर्वक कहा. ''क्या तूने स्त्रो नहीं देखी? तेरी मां या बहन नहीं है? घर में कोई महिला नहीं है?''

''थोड़ा रुको मां, थोड़ा रुको. मेरी मां थीं, मगर जन्म से पहले ही चल बसीं. पिताजी बचपन में वायुलीन हो गये. मैं अकेला ही रहा.''

''तो तूने सचमुच कोई स्त्री नहीं देखी?''

''देखा है मां, शुभा को देखा है, बहुत सुंदर है.''

''शुभा कौन है बेटा?''

''मेरी गुरु है. मैं बहुत थोड़ा ही सीख पाया. थोड़ी देर के लिए ही तो देख पाया.''

वृद्धा माता के मन में वयस्क शिशु के प्रति मन में वात्सल्य भाव उमड़ा. ऋषिकुमार को अपने आश्रम में ले गयी. स्नानादि के पश्चात उसे भोजन कराया. इतने में ऋषिकुमार फिर पीठ खुजलाने लगे. वृद्धा ने पूछा,'' यह तू बार-बार पीठ क्यों खुजला रहा है बेटा?''

''मां, यह तो पाप का फल है. मैंने पाप किया था, उसी का दंड भोग रहा हूं. यहां बड़ी सनसनाहट मालूम होती है.''

''पाप? तू क्या करेगा? किसने बताया कि तूने पाप किया है?''

''शुभा ने.''

''क्या बात हुई कि शुभा ने तुझे बता दिया कि तू पाप कर रहा है?''

सब सुन लेने के बाद वह बोली, ''मेरे भोले लाल, शुभा ने भी ठीक कहा था, तूने भी ठीक किया था. पर यह जो सनसनाहट है, वह पाप के कारण नहीं है, मन के कोने में छिपी हुई दुर्दम अभिलाषा की देन है. इसे शुभा ही ठीक कर सकती है, तेरे मन में कहीं बहुत गहराई में शुभा को पाने की अभिलाषा है, वही सनसनाहट अनुभूत हो रही है.''

जाबाला दिन पर दिन सूखती गयी. बार-बार स्वयं को प्रिया-रूप में सोचने में उसे अपूर्व गुद्गुदी अनुभव होती. रैक्व को माताजी, ऋषि ओबस्ति के निकट ले गयीं. ओबस्ति ने रैक्व से प्रश्न किया, ''तूने एकांतवास करके बहुत तप किया है न वत्स?''

''किया है भगवन!''

''देखो, पूर्ण मनुष्य बनो. तुमनेब्रह्मचर्य-वास कर लिया है. विधिपूर्वक नहीं हो सका. पर उसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है. अब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का समय आ गया है.''

''नहीं समझा, भगवन!''

''कैसे समझेगा वत्स? तूने गृहस्थ जीवन का सुख देखा ही नहीं. जानता है पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए कुलीनजन विवाह किया करते हैं. विवाह के माध्यम से ही स्त्री-पुरुष पूर्णता प्राप्त करते हैं, संसार के सबसे बड़े लक्ष्य 'प्रेम' को प्राप्त करते हैं.''

''नहीं समझा, भगवन!''

''यह सब अपनी माताजी से पूछ लेना. जाओ बेटा, स्वाधीनमस्तु! हमने अब तक जो पढ़ाया, तुमने जो पढ़ा, वह तेजस्वी हो.''

रैक्व ने, माताजी के साथ-गांव-गांव घूमकर वहां की दशा देखी. वे एक-एक चीज में रुचि दिखाते, हल क्यों चलाया जाता है, अन्न कैसे उत्पन्न होता है, सिंचाई कैसे होती है. कैसे जनपद की स्त्रियां, पुरुष और बच्चे माताजी को आशा की मूर्ति समझकर अपनी विपत्ति की बातें सुनातें हैं और वे धैर्यपूर्वक सुनती हैं. रैक्व चुपचाप यह दृश्य देखा करते. उन्हें अनुभव होता कि सहानुभूति भी एक बड़ी औषधि है.

राजा ज्ञानश्रुति को आचार्य औदुंबरायण ने जब सारी बातें बतायीं तो वे जैसे सोते से अचकचाकर जागे, ''मुझे प्रजा के कष्ट की बात किसी ने नहीं बतायी. अब क्या किया ये आचार्य? पाप तो हो ही गया है. ''आचार्य ने कहा,'' राजन, मैंने इस समस्या पर बहुत सोचा है. अकालग्रस्त लोगों की सहायता करना बहुत आवश्यक है.''

राजा और आचार्य ने सचिवों से मंत्रणा करके आगामी सहायता कार्य की रूपरेखा बनाने का प्रयत्न किया. एक दिन इस संबंध में मंत्रणा चल ही रही थी कि एक दौवारिक ने आकर निवेदन किया, ''प्रभो, जैमिनीय गोत्राम्दवा और महर्षि औषस्ति की पत्नी ब्रह्मवादिनी भगवती ऋतुंभरा पधारी हैं. आचार्य औदुंबरायण भगवती ऋतुंभरा को लेकर उपस्थित हुए. भगवती ऋतुंभरा ने कहा, ''कल्याण हो राजन, बहुत दुख देखकर आ रही हूं. प्रजा को अपार कष्ट है. आप समर्थ हैं. इन दुखियों का दुख दूर करने का निमित्त बनें.''

राजा ने विनीत भाव से कहा, ''आज्ञा शिरोधार्य है!'' तभी आचार्य ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''क्षण भर रुकें भगवती! एक हमारी विपदा की कथा भी सुन लें'' उन्होंने जाबाला की अस्वस्थता और उसके उपचारों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बात बतायी.

आसन ग्रहण करने के बाद भगवती ने राजा और आचार्य से कहा, ''आप जिस महत्वपूर्ण मंत्रणा में लगे थे उसे पूरा करें. मैं बिटिया से थोड़ी देर अकेले में बात करूंगी.''

राजा ज्ञानश्रुति को ऐसा लगा, जैसे अथाह जल में डूबते हुए को सहारा मिल गया हो. गद्गद होकर भगवती को भीतर ले गये.

जाबाला ने भगवती के मना करने पर भी बड़े से ताम्रपात्र में जल लेकर भक्ति भाव से भगवती ऋतुंभरा के चरण धोये. भगवती की आंखों में पानी भर आया, ''बेटी, तू मुझे अपनी मां समझ और बता कि तुझे क्या कष्ट है?''

जाबाला की आंखों से जलधारा फूट पड़ी, ''भगवती,आप मां से बड़ी हैं. आज मैं कृतार्थ हुई.''

''नहीं बेटी, मां से बड़ी कोई नहीं होती, तू मुझे मां ही समझ. मुझे भगवती कहकर अनुचित संभाषण न कर. किसी की पूरी मां बनने की पूरी लालसा मेरे मन में ज्यों की त्यों बनी हुई है, बनी हुई थी... कहना चाहिए, रैक्व जैसा बेटा पाकर वह साध पूरी हुई है. तू भी मुझे मां ही मान ले.''

अच्छा मां, यह वही रैक्व है जो पहले कभी एक टूटी गाड़ी के नीचे बैठे पीठ खुजलाया करते थे?'' ''बिल्कुल वही बेटा. कोई शुभा नाम की लड़की अचानक उसे मिल गयी, अचेतनावस्था में. भोलेराम ने उसे देवलोक का मनुष्य समझा. पहले तो कहते थे कि वह उनकी गुरु है. अब कहते हैं कि नहीं मां, गुरु तो तुम हो, मगर शुभा अवश्य तत्वज्ञानी है.''

जाबाला अब सहज हो गयी.... और उसने स्वीकार किया कि वह ही उसकी शुभा है. माताजी ने जाते समय राजा को जाबाला की मौसी को बुलवाने का परामर्श दिया तथा घर आकर रैक्व को शस्त्राभ्यास हेतु महर्षि ओवस्ति के पास भेज दिया. शस्त्राभ्यास के पश्चात रैक्व जब महर्षि के पास से चले तो उन्हें ऐसा लगता था कि वे किसी दूसरे लोक में पहुंच गये हैं. वहां केवल प्रकाश है, केवल आनंद है!

जाबाला अपने में खोयी रही. इधर बहुत कुछ घट गया, उसे पता ही नहीं चला. एक दिन अरूंधती उदास होकर चली गयी. जाबाला उसे रोकना चाहती थी पर वह रुकी नहीं. दूसरे दिन आचार्य औदुंबरायण चुपचाप घर छोड़कर चले गये. राजा ज्ञानश्रुति इतने मर्माहत हुए कि सत्संग के लिए समाहूत ऋषियों की विचार गोष्ठी में जाना भी छोड़ दिया. यह सुनकर जाबाला उनके एकांत कक्ष में पहुंच गयी. वह घबराकर चिल्ला पड़ी, ''पिताजी, यह क्या हो गया आपको.''

पिताजी ने आचार्य के रुष्ट होकर चले जाने और अरुंधती के जाने की बात कही. जाबाला का उद्वेग बढ़ता ही गया. उसी को लेकर अरुंधती और आचार्य घर छोड़ गये. दो दिन तक सोचते रहने के बाद उसे एक आलोकशिखा-सी मिल गयी कि क्यों न माता ऋतुंभरा से जाकर सलाह लें! वह निश्चित जानती थी कि अपने पिता से उसे अनुमति मिल जायेगी. पिता ने आग्रह किया कि वे भी साथ चलेंगे.

भगवती ऋतुंभरा उस समय रैक्व की प्रतीक्षा में बैठी थीं. इसी समय जाबाला की पुकार उनके कानों में पहुंची. भगवती हड़बड़ाकर उठ बैठी. माताजी ने धाधाकर उसे छाती से लगा लिया.

जाबाला अकेली कुटिया में किसी उधेड़बुन में खोयी थी कि एकाएक कोई 'मां-मां' कहता हुआ कुटिया में घुस आया. जाबाला अपने में खोयी हुई थी. आवाज सुनकर आंगन में निकल आयी. सामने देखा, रैक्व! रैक्व ने मौन भंग किया, ''शुभे, मैंने स्वप्न में तुम्हें कई बार देखा है. पर आज जाग्रत अवस्था में देख रहा हूं या...''

मृदुकंठ से जाबाला न उत्तर दिया, ''नहीं तापस कुमार, तुम जाग्रतावस्था में ही अपनी शुभा को देख रहे हो. पर तुम मेरी एक प्रार्थना सुनो.''

''आज्ञा दो देवी!''

''तुम थोड़ी देर बाद यहां आना. माताजी के आने से पहले कहीं चले जाओ.''

''जाता हूं, मगर तुम भाग मत जाना.''

बहुत दिनों बाद रैक्व ने अपने चित्त में ऐसी स्थिरता का अनुभव कि[या] था. वे अनायास ही समाधि की अवस्था में पहुंच गये. भगवती ऋतुंभ[रा] ने आकर जाबाला को अत्यंत प्रसन्न देखा. उसने कातर भाव से पू[छा] ''क्या रैक्व आपको मिल गये थे मां?''

''नहीं तो, वह आया था क्या?'' माताजी ने कहा, ''अरे बेचारा भूखा [ही] रह गया.''

जाबाला को धक्का लगा. बड़े आयास से बोली, ''बड़ा अपराध हो ग[या] मां! मुझे नहीं मालूम था कि वे थके और भूखे हैं. माताजी ने कहा, ''बेटी अब उसके आने में देर लगेगी, इसलिए थोड़ा-सा यज्ञशिष्ट प्रसाद ग्रह[ण] कर ले.''

किंतु जाबाला ने दृढ़ता के साथ कहा, ''नहीं मां, मैं भी आपके साथ रैक्व के पास जाऊंगी, क्योंकि मुझे भय है, जब तक मैं नहीं कहूंगी, वे इधर आयेंगे नहीं.''

रैक्व के निकट पहुंचने पर माताजी ने स्नेहपूर्वक ललाट पर हाथ रखा उनकी चेतना बर्हिमुख हुई. माताजी बोलीं, ''यह आरंभ है बेटे, उठ.''

रैक्व न कहा, ''मां, वहां कुटिया में कोई तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा है. माताजी ने आनंद लेते हुए कहा,'' कोई बैठा होगा, उससे तेरे चलने में क्या कठिनाई है? ''हकलाते हुए वह बोला,'' तुम चलों न मां, उससे मैं... पूछना होगा.''

जाबाला पीछे खड़ी सुन रही थी. उसे लज्जा और सुख दोनों का अनु[भव] हो रहा था. उसने कहा, ''मैं तो यहीं हूं ऋषिकुमार.''

रैक्व ने घूमकर शुभा की ओर देखा. एकदम उठ गये. बोले, ''मां, य[ह] शुभा है. इन्होंने ही तो कहा था कि जब तक माताजी न आ जायें तब तक तुम बाहर रहो.'' इसी समय जाबाला ने आंखों से ही रैक्व को रोका-यह क्या बकने लगे! चलते समय माताजी ने देखा कि अतिथिशाला के द्वार पर ... राजा ज्ञानश्रुति चुपचाप यह दृश्य देख रहे थे.

रात बीत गयी. रैक्व विचित्र समाधि के आनंद से भीगते रहे. वे अभी समाधि में हैं. राजा ज्ञानश्रुति अपने दलबल के साथ उपस्थित हो गये हैं. उपहार अलग रखे गये हैं. राजा हाथ जोड़कर बैठे हैं, आचार्य औदुंबरायण भी उत्सुक मुद्रा में प्रतीक्षा कर रहे हैं. इस ज्ञान यज्ञ की सबसे महत्वपूर्ण ... थी जाबाला. वह आयी नहीं थी, ले आयी गयी थी उसके आते ही वातावरण में आभा व्याप्त हो गयी. रैक्व के अंतरतर में वह आभा ... ही छेद गयी. तभी उनके अंतर में हलचल मची. उनकी आंखें खुल ... हाथ अनायास पीठ पर चले गये. खड़े होकर आचार्य के साथ ही रा[जा] ज्ञानश्रुति को प्रणाम किया. बोले कुछ नहीं. शांतभाव से आसन पर बैठ ... केवल उत्सुकता भरी दृष्टि के इंगित से पूछा, ''क्या सेवा करूं?''

राजा ज्ञानश्रुति बोले, ''यह मेरी कन्या जाबाला है, मैं इसे आप जैसे ... को देने का संकल्प लेकर आया हूं. भगवती ऋतुंभरा भी आनेवाली हैं.''

रैक्व अवाक्!

प्रस्तुति : हिमा को...

चलते-चलते

ग्रीस और रोम के इतिहास के आज के ज्ञान के आधार पर कह सकते है कि मिथकों का सृजन करनेवालों के पास ब्रह्मांड और उसकी दृश्य-अदृश्य शक्तियों से संबद्ध कोई व्यवस्थाबद्ध दर्शन नहीं था और न ही उनकी नैतिक चेतना इतनी विकसित थी. यदि वे इन्हें कोई आधार दे पाते तो सदियों बाद आनेवाले उनके महान दार्शनिकों को क, ख, ग से प्रारंभ न करना पड़ता.

—ए हैंडबुक टु माइथॉलॉजी...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी की सुप्रसिद्ध, लेखिका चिंतक दुर्गा भागवत की पुस्तक 'व्यास पर्व' में महाभारत के सभी प्रमुख पात्रों पर उनके चिंतनापूर्ण निबंध संकलित हैं. प्रस्तुत हैं उपरोक्त शीर्षक निबंध के अंश

महाभारत की शोकांतिका किस घटना में उद्घाटित होती है? द्रौपदी के पुत्रों के निधन में? कर्ण के बलिदान में? कुंती के दुख की अविरत प्रवाहित धारा में? कौरवों के भीषण संहार में? मुझे लगता है हम चाहे इस सब दुखों को एकत्र करें फिर भी ज्ञान-लालसा से उद्भूत जिस अभियान ने, लीनता ने और लबालब भरे अभिनव अनाम दुख ने एकलव्य को संपूर्णत : एकाकी कर दिया, उस दुख के एक कण की बराबरी उन महान कहलानेवालों के जगन्यमान्य दुख नहीं कर सकते. कर ही कैसे सकते हैं? उनमें से प्रत्येक के दुख में स्वयं उनके कुछ प्रमाद साझा करते रहे हैं; उनके अपने कर्मों का भोक्तृत्व रहा है. परंतु एकलव्य भोक्तृत्व क्या था? उसका आखिर तक वर्णन करते समय व्यास की लेखनी भी रुक गयी. जहां एकलव्य की कथा समाप्त होती है वहां उस धागे को एकदम लपेटकर जो अंतिम विराम—अपूर्ण अवस्था में विराम—चिन्ह लगाने की कारीगरी व्यास ने दिखायी है, उस की मिसाल नहीं मिलेगी. कहा गया है कि कवि का मौन सर्वाधिक सृजनशील होता है. इस दृष्टि से देखती हूं तो प्रतीत होता है कि अकेले व्यास ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कृति में, ऐसा मौन धारण किया है जो अपने सृजन के बीज गर्भ में छिपाये हुए हैं. कभी संदेह होता है : ऐसा तो नहीं कि प्रतिष्ठा के केंद्र को चुनौती देते सत्य को—जो खुभता है, जो डसता है, व्यास ने ढक दिया— ''नरो वा कुंजरो वा'' की चालाकी की तरह? इधर-उधर कुछ कह दिया और सत्य की एक झलक दिखा दी, बस. सतही दृष्टि से देखें तो एकलव्य की कहानी वैसे ही सुनायी गयी है जैसे वह घटित हुई है. पर उसकी 'गूंज-अनुगूंज' वह कहां गयी? एकलव्य की कहानी सुनाते समय स्वर ने दुनिया-दारी क्यों अपनायी? वाणी ने संक्षिप्तता क्यों ग्रहण की? क्या यहां कुछ भी ऐसा नहीं था जो कवि-मन को आकंठ भर जाता? क्या यहां वह आवेगी सत्य जरा भी नहीं था जो बाढ़ की तरह बहा ले जाता है?

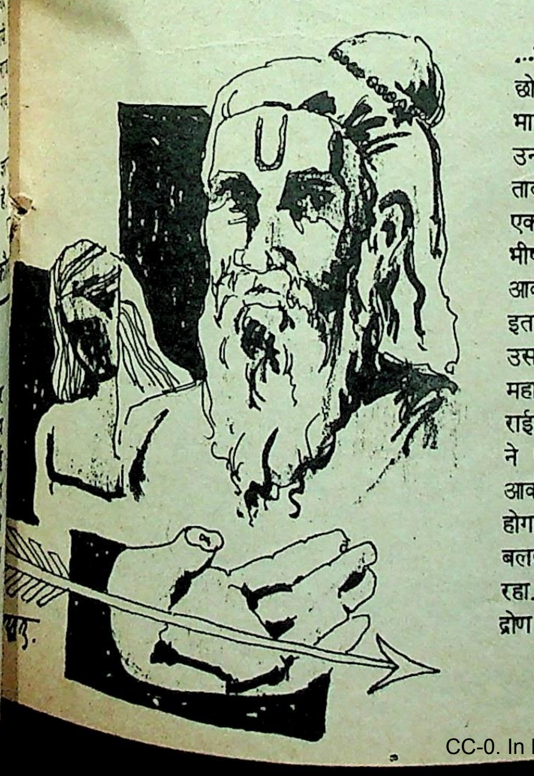

नहीं, यह भी नहीं कहा जाता ! एकलव्य तो खैर मौन से ढक गया, लेकिन द्रोण बचे रहे. उनके जीवन की सफलता की विफल कहानी में ही एकलव्य की अनाम उत्तरकथा मिल जाती है. नायक के नेपथ्य में चले जाने पर जो खलनायक का नाटक रंग जमाता है, वह द्रोण की कथा का ही है. जैसे एकलव्य की इस उत्तरकथा का भान हो आता है, दिखाई पड़ती हैं, चहुंओर फैली-पसरी व्याधगीता, भगवद्गीता आदि अनेक उपदेशपरक दर्शनों की हरी-भरी गाथाएं. एकलव्य की कहानी से उभरे कुरूप सत्य को ढकने के लिए कितने प्रयास से इन पुष्ट दर्शनों को सजाया गया है. एक व्याधपुत्र के साथ जो अन्याय किया गया था, उसे छिपाने के लिए दूसरे व्याध के मुख से सांसारिक दर्शन कहलवाया गया है, और कैसी खूबसूरती से !

कलाकार व्यास ने गीत गाये हैं, गीत पर गीत ...पर ऐसा भी आया एक गीत कि कड़ियां न बनें, छोड़ दें तो छोड़ते न बने. गीत के अमूर्त स्वरों ने, भावों ने उन्हें पागल कर दिया. उसी क्षण देखा उन्होंने : एकलव्य की व्यथा द्रोण की चिरव्यथा में तादात्म्य पा चुकी है. नहीं, वह कथा अब न एकलव्य की रह गयी है, न द्रोण की. अब वह भीषण शोककथा है बुद्धिजीवियों की अविकसित आकांक्षाओं की. जानकारों की विशाल दुनिया राई इतनी हलकी और छोटी है. बहा दीजिए आप उसमें प्राणों की धारा, शायद ही कभी किसी महाभाग का स्पर्श पाकर दुबारा विशाल हो पाये. राई आखिर राई ही रहती है. उस राई के तड़के ने ऐसी परंपरा तैयार की कि अगर एक को आकाश छूता है तो दूसरे को धरती पर ही रहना होगा. 'तू नहीं तो मैं' का दर्शन बन गया. बलवानों का बल निसर्गदत्त और तपः साध्य न रहा. व्यावहारिक समर्थ जन बलशाली बन गये. द्रोण ने एकलव्य का अंगूठा क्या कटवाया, बुद्धि और कौशल का नियोजन आरंभ करा दिया.

दरिद्र ब्राह्मण थे द्रोण. ब्राह्मण के लिए दरिद्रता कोई नयी बात नहीं. परंतु ऐसे ब्राह्मण सिर्फ द्रोण ही थे जिनके हृदय को दरिद्रता ने जलाकर राख कर दिया था. वह हृदय दुबारा नया, हरा भरा न हुआ. द्रुपद द्वारा मिला अपमान एक नासूर बन गया. पुत्र-पौत्रादि सहित द्रुपद का वध करने की प्रतिज्ञाकर द्रोण ने धृतराष्ट्र के दरबार में राजपुत्रों को शस्त्र-विद्या सिखाने का काम ले लिया था. अर्जुन का कौशल देखा तो द्रोण को लगा कि इसी के हाथों मनोरथ सिद्ध होगा. अर्जुन की महत्वाकांक्षा को द्रोण ने चेताया, पाला-पोसा. अर्जुन को आशीर्वाद दिया : ''तुम सबसे श्रेष्ठ धनुर्धारी होगे !''

हालत सुधरी परंतु मन द्रुपद के प्रति बैर पाले रहा. यहां तक कि अंत में द्रुपद रहा एक तरफ, बैर ने द्रोण के हृदय के कोने-कोने को व्याप लिया. वह सर्वभक्षी व्यथा से भर उठा. उनके रोम-रोम में असहिष्णुता ने घर कर लिया. उद्दाम, रुग्ण मनोवृत्तिवाले मनुष्य में कहां से आता ज्ञानदत्त संयम, विनय, जब वह यही मान कर चलता था : ''संसार में गुरु हैं तो सिर्फ द्रोणाचार्य हैं ; शिष्य यदि कोई हो सकता है तो वह हमारा ही होगा. विद्या की मर्यादा वही होगी जो मैं बांधूंगा.'' यही थी वह अनुदार, आत्मकेंद्री वृत्ति जिसने एकलव्य जैसे वन्य राजकुमार को शिष्य के रूप में स्वीकृत नहीं किया. और एकलव्य था कि उसने द्रोण को अपना गुरु मानकर धनुर्विद्या में निपुणता प्राप्त की ; और गुरु ने गुरुदक्षिणा का निमित्त प्रस्तुत कर एकलव्य के दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लिया. एकलव्य ने असंतोष नहीं दिखाया, शिकायत नहीं की. तोड़कर हाजिर कर दिया, बस यहीं पूर्वकथा समाप्त होती है ; परंतु जहां एकलव्य का जीवंत मरण शुरू होता है, वहीं द्रोण के मृत जीवन का प्रारंभ होता है. द्रोण ने अर्जुन को आशीर्वादात्मक अभिवचन दिया था, इस उद्देश्य से कि राजघराने में अपनी प्रतिष्ठा बनी रहे ; और उन्होंने उसे पूरा कर दिखाया, चाहे उसमे क्रूरता, अन्याय का दाग लग गया हो! अपनी लाचारी छिपाने के लिए द्रोण नाना प्रकार के बहाने खोजते रहे. सोच-समझकर नहीं, बल्कि इसलिए कि वैसा करना उनका स्वभाव बन चुका था. एक भय था—कहीं दुबारा दारिद्र लौटकर तो नहीं आयेगा? वही उन्हें खा गया. वे दारिद्र्य के भय से कभी पीछा न छुड़ा सके. उनका व्यवसाय था शूरता का, किंतु वे भय के सामने कायर ही बने रहे.

एकलव्य मर गया ; संतोष लेकर गया कि गुरुचरणों में सर्वस्व समर्पित कर चुका हूं. फिर भी उसकी अघोरी प्रवंचना की उत्तरकथा को समाप्त करना व्यास की शक्ति के बाहर की बात है. जब तक वर्णसंकर ईर्ष्या से ग्रस्त बुद्धिवादी जीवित रहेंगे, तब तक राई का तड़का बराबर लपटें फैलायेगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म

नरेंद्र कोहली

धर्म की परिभाषा आखिर क्या है? किसके आचरण को हम धर्म कहेंगे— युधिष्ठिर के आचरण को जिसने पितामह भीष्म के कहने पर दुर्योधन के साथ जूआ खेलना स्वीकार कर लिया था और हारने पर अपनी पत्नी को अपमानित करने का अधिकार दुर्योधन को दे दिया था? या भीष्म के आचरण को जिन्होंने यह जानते हुए भी कि पांडवों का पक्ष न्याय का है, कौरवों का ही साथ दिया? या फिर कृष्ण के आचरण को जिन्होंने अपने सगे मामा की हत्या कर दी थी.

"कृष्णे !"

द्रौपदी का जैसे संयम ही टूट गया. पहले आंखें भर आयीं और फिर टप-टप आंसू गिरने लगे. अंत में जब स्वयं को संभालने के उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये, तो वह सशब्द रो उठी.

"पांचाली !" कृष्ण का स्वर शीतल बयार का-सा प्रभाव लिये हुए था.

"मैं सह नहीं सकती. असहनीय है यह सब कुछ मेरे लिए." द्रौपदी हिचकियों के बीच बोली, "जिसका कोई न हो, उस अनाथा का भी इतना अपमान नहीं होता. वह अपमान..."

"मैं समझता हूं कृष्णे," कृष्ण बोले," और यह भी कहता हूं कि निश्चय ही कौरव इसका यथेष्ट दंड पायेंगे. धर्म उनको कभी क्षमा नहीं करेगा."

लगा, जैसे द्रौपदी के शरीर पर कोड़ा पड़ा हो. उसका सारा शरीर झकोला खा गया. सहसा ही भीतरी ताप से आंसू सूख गये. हिचकियां बंद हो गयीं आखों से चिंगारियां फूटने लगीं, "नाम न लो धर्म का. उसके लिए ये धर्मराज ही काफी हैं."

उस स्थिति में भी कृष्ण मुस्करा पड़े, "धर्मराज !..."

"कौरवों के विरुद्ध मेरे मन में क्या है, वह कहने की बात नहीं," द्रौपदी आवेश भरे स्वर में बोली, "मैं तो धिक्कारती हूं अपने इन पांच पतियों को, इनके क्षत्रियत्व को, इनके युद्ध-कौशल को, इनके शस्त्रों को..." द्रौपदी अग्नि-शिखा सी जल रही थी, "दु:शासन मेरे केशों को पकड़कर भरी सभा में घसीट लाया, और ये देखते रहे. वे मुझे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करते रहे काम-योग के निमंत्रण देते रहे और ये सिर झुकाए बैठे रहे. क्या करूं मैं युधिष्ठिर के धर्म का, भीम के बल का, अर्जुन के गांडीव का, सहदेव के खड्ग और नकुल की रथ तथा अश्व-संचालन की क्षमताओं का, जो अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकते...एक साधारण-सा अपंग पुरुष का, जो अपनी पत्नी की रक्षा के लिए दहाड़ता-चिंघाड़ता है. और ये विश्व-विख्यात, अलौलिक शस्त्रों से सज्जित क्षत्रिय योद्धा अपने पैरों के अंगूठों से भूमि कुरेदते रहे. धर्म..."

"मैं तुम्हारा कष्ट समझता हूं पांचाली. "कृष्ण धीरे से बोले, "यदि मैं वहां होता, तो यह सब कदापि न होता, चाहे धर्मराज की टेक कितनी ही धर्मनिष्ठ क्यों न होती..."

"पर तुम वहां नहीं थे कृष्ण, इसलिए मैं उस अत्याचार को भूल जाऊं?" द्रौपदी का स्वर पुन : आरोह की ओर बढ़ा.

"नहीं, तुम भूल भी जाओ तो प्रकृति नहीं भूलेगी. प्रकृति कुछ नहीं भूलती. उनके कर्म का फल उन्हें मिलेगा. कौरव दंडित होंगे."

"कौन दंड देगा उन्हें?" द्रौपदी का अविश्वास मुखर हो उठा था, "धर्मराज?"

"पांडव !" कृष्ण की आंखों में आसाधारण ज्योति थी," और यदि पांडवों ने उन्हें दंडित नहीं किया, "कृष्ण के स्वर में मेघ का सा गर्जन था. "धर्मराज?"

द्रौपदी उन आंखों के तेज को जैसे पीती रही. उसके चेहरे की उग्र रेखाएं कुछ शांत हुईं. आंखों में जैसे विश्वास जागा, "तुम्हारे वचन पर अविश्वास नहीं है मुझे...और वैसे भी मेरी रक्षा तुमने ही की कृष्ण." द्रौपदी का स्वर शांत और गंभीर हो चला था, "तुम वहां नहीं थे, पर वह तुम्हारा ही भय था, जिसने मेरी रक्षा कर ली, नहीं तो उन पिशाचों ने अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी."

"बहन !" धृष्टद्युम्न ने पहली बार मुख खोला, "जब वासुदेव कृष्ण ने कह दिया है तो निश्चय जानो, कौरवों को इसका दंड दिया जायेगा. इन नीचों को अपने रक्त से अपने पिशाच कृत्यों का मूल्य चुकाना होगा. इनमें से किसी एक को भी क्षमा नहीं किया जायेगा."

द्रौपदी चुप रही, पर उसकी आंखों से पुन: आंसू बह निकले, जैसे उसके भीतर का दुख रह-रहकर हृदय से उठकर आंखों में आ जाता हो.

"मैं क्या करूं. उस दृश्य को मैं भूल नहीं पाती. और जब जब मुझे उसकी याद आती है, मैं फिर से जैसे उसी सभा में खड़ी कर दी जाती हूं. मेरे कानों में उन दुष्टों के अट्टहास और अपशब्द गूंजने लगते हैं. उनकी दृष्टियां मेरे शरीर को भेदने लगती हैं. कैसे बताऊं कि मेरे मन में अपने पतियों के लिए कैसे-कैसे धिक्कार उठने लगते हैं. मेरे मन में इतनी भयंकर हिंसा उठती है कि इच्छा होती है कि या तो सारी सृष्टि को आग लगा दूं या स्वयं ही समाप्त हो जाऊं..."

"नहीं, पांचाली, यह मनुष्य का धर्म नहीं है." कृष्ण की वाणी सांत्वना देकर रक्त के तृप्त कणों को शांत ही नहीं करती थी, सारे शरीर में जैसे बल का संचार कर जाती थी.

किंतु द्रौपदी की उग्रता क्षीण होते-होते जैसे फिर से भड़क उठी. "फिर वही धर्म ! धर्म की बात मुझसे मत करो. मुझे धर्म से घृणा हो गयी है. मेरा तो एक ही धर्म है—विनाश !"

"मधुसूदन !" युधिष्ठिर के स्वर में पीड़ा झलक रही थी, "यह वितृष्णा धर्म के प्रति नहीं, वस्तुतः मेरे प्रति है. सच पूछो तो इन दिनों हम सबके मन में या तो विश्लेषण है या वितृषणा." वे कुछ रुके. "मैंने भी बहुत विश्लेषण किया है. अपने-आप को बहुत परखा-तौला और खंखाला है, और हर बार मेरे विवेक ने यही कहा है कि मैंने कोई अधर्म नहीं किया. फिर भी द्रौपदी मानती है कि अपने और अपने परिवार के इन सारे कष्टों का कारण मैं हूं. मेरे भाई अपने मुख से कुछ कहें, न कहें, किंतु इनके मन में भी यही है कि मैं एक मूर्ख और अविवेकी जुआरी मात्र हूं. ये लोग अपने धर्म के कारण मुझसे अलग नहीं होते या मुझे दंडित नहीं करते. किंतु अपने मन में ये लोग मुझे निर्दोष नहीं मानते. जैसे आज पांचाली मुझे धिक्कार रही है ऐसे ही भीम ने भी अनेक बार मुझे धिक्कारा है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहसा, कृष्ण बिना किसी भूमिका के हंसने लगे.

युधिष्ठिर अवाक्-से उनकी ओर देखते रह गये. इस दुख, विषाद, करुणा, पीड़ा और आक्रोश के वातावरण में यह सहज हंसी. ज्वाला-मुखियों के भीतर से भी निर्मल जल की स्रोतस्विनी फूट सकती है क्या? ...धर्मराज कुछ बोले नहीं, किंतु उनकी आंखें स्पष्ट प्रतिवाद कर रही थीं, जैसे कह रही हों कि मैं तो तुमसे अपनी व्यथा कह रहा हूं और तुम हंस रहे हो. यही है तुम्हारी मित्रता, स्नेह और करुणा?

शेष लोगों की समझ में भी कुछ नहीं आया. वे कुछ उत्सुकता और कुछ खीझ से , कृष्ण की ओर देख रहे थे.

कृष्ण की हंसी, मुस्कान में बदल गयी, "इससे धर्मराज कहीं यह निष्कर्ष तो नहीं निकाल रहे कि धर्म पर चलना, सदा दुखदायी है. अतः धर्माचरण दुख का राजमार्ग है?"

"पता नहीं धर्मराज क्या सोच रहे हैं, किंतु हम सब इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं." नकुल के स्वर में कड़वाहट थी, "न युधिष्ठिर धर्मराज होते, न हमें यह दिन देखना पड़ता."

"इसके बाद अगला तर्क होगा कि धर्म पर चलना व्यर्थ है." कृष्ण बोले, "अतः धर्म को तत्काल तिलांजलि दे दी जानी चाहिए."

"लगता तो यही है," भीम का वाक्य छोटा किंतु तीखा था, "मेरा तो मन कहता है कि मुझे धर्म-वर्म के चक्कर में पड़ना ही नहीं चाहिए था. जिस समय उन दुष्टों के मुंह पर द्रौपदी के लिए पहला ही शब्द निकला था, उसी समय मुझे चाहिए था कि दुर्योधन को उठाकर भूमि पर दे मारता या अपने गदा से उसकी खोपड़ी कुचल डालता. मेरा तो यही धर्म था..."

"क्यों युधिष्ठिर," कृष्ण बोले, "यदि भीम यह कर बैठता तो वह धर्म होता?"

"नहीं," युधिष्ठिर बोले, "वह अधर्म होता. मैं पांचाली को हार चुका था. वह धर्म के अनुसार दुर्योधन की दासी थी."

भीम ने जोर से भूमि पर पैर पटका, "फिर वही बात !"

"असफल और निराश व्यक्ति अपनी भूल और सीमा को समझने का प्रयत्न करने के स्थान पर सृष्टि के नियमों को दोष देने लगता है." कृष्ण का स्वर जैसे आकाश की संपूर्ण गंभीरता को संजोए हुए था.

"आप स्वयं ही सोचिए भैया !" सहदेव कृष्ण से संबोधित हुआ. "धर्मराज के धर्म के अनुसार जो कुछ धृतराष्ट्र-पुत्रों से तय हुआ है, वह क्या है—उसका अर्थ क्या है? वे लोग हमें आज्ञातवास में भी खोज निकालेंगे और हम बारह वर्षों के लिए पुनः वनों में चले जायेंगे. और यदि वे हमें खोज नहीं पाये तो मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि लौटने पर या तो वे हमें इंद्रप्रस्थ लौटायेंगे नहीं, या फिर राजा धृतराष्ट्र भैया को जुआ खेलने के लिए पुनः निमंत्रित करेंगे. भैया फिर जुआ खेलेंगे और हार जायेंगे. पांचाली फिर अपमानित होगी, हम फिर निर्वासित होंगे. भैया धर्मराज बने रहेंगे और हम वन-वन धक्के खाते हुए अपना जीवन समाप्त कर देंगे."

कृष्ण ने देखा : युधिष्ठिर के चेहरे पर एक प्रकार की स्वीकृति थी और शेष सब लोगों के चेहरों पर इस काल्पनिक भविष्य के सत्य होने की आशंका.

"युधिष्ठिर," कृष्ण बोले, "क्या जूए में तुम्हारी आसक्ति इतनी अधिक है कि तुम्हें भले-बुरे, सद्-असद्, धर्माधर्म का विवेक ही नहीं रहता?"

"नहीं," युधिष्ठिर के स्वर में सत्य के खनक भी थी और स्वाभिमान की रक्षा की पीड़ा भी,"बात द्यूतासक्ति की नहीं, बात तो धर्म की ही है. पितृ-तुल्य राजा धृतराष्ट्र के निमंत्रण को अस्वीकार करना अधर्म है. इसमें गुरुजनों का अपमान निहित है. वह निमंत्रण नहीं था. वह आदेश था—पितृ आदेश. फिर क्षत्रिय होकर, युद्ध और द्यूत का निमंत्रण मैं अस्वीकार नहीं कर सकता—राजन्य संस्कृति से संपन्न कोई क्षत्रिय यह नहीं कर सकता. क्षत्रिय-धर्म की अपनी मर्यादा है."

युधिष्ठिर की दृढ़ता को देख, कृष्ण कुछ प्रभावित हुए-से लगे, फिर मुस्कराये "धर्म में तुम्हारी निष्ठा को देखकर तुम्हारे सामने मैं नतमस्तक हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराज. पर तुम्हारी इसी धर्म-निष्ठा के कारण, तुम्हारे भाई धर्म के शत्रु हो गये हैं..." उन्होंने रुककर सीधे युधिष्ठिर की आंखों में देखा, "धर्माचरण से पहले धर्म के स्वरूप को समझ लेना चाहिए."

"क्या पिता-तुल्य राजा का आदेश मानना धर्म नहीं है?" युधिष्ठिर कुछ हतप्रभ-से हो गये.

"संबंध की सृष्टि से कंस मेरे लिए भी उतना ही आदरणीय था, जितने तुम्हारे लिए धृतराष्ट्र हैं." कृष्ण बोले, "कंस ने मेरे सात भाइयों का वध किया और अनेक बार मेरे वध का भी प्रयत्न किया." वे रुक गके, "तुमने ठीक कहा कि क्षत्रिय, युद्ध और द्यूत के निमंत्रण को अस्वीकार नहीं करता..." कृष्ण हंसे, "मैंने भी मथुरा आकर मल्लयुद्ध में भाग लेने के, कंस के निमंत्रण को अस्वीकार नहीं किया था. मथुरा में उस दुष्ट ने मेरी हत्या का प्रयत्न किया और मैंने उसका वध कर दिया. क्या मैंने अधर्म किया?"

"नहीं, नहीं, तुम अधर्म कैसे कर सकते हो कृष्ण !" युधिष्ठिर बोले, "तुमने आत्मरक्षा की, अपने माता-पिता की रक्षा की. प्रजा को कंस के अत्याचारों से बचाया. तुम अधर्म कर ही नहीं सकते..."

"और तुम क्या कर रहे हो धर्मराज."कृष्ण बोले, "तुम्हारे पिता-तुल्य धृतराष्ट्र ने तुम सबको वारणावत के लक्षागृह में जलाकर मारने का प्रयत्न किया. तुम जीवित बच निकले तो तुम्हें राज्य न देकर, एक उजड़ा नगर और वन प्रांतर सौंपकर विदा कर दिया कि तुम लोग वन्य जातियों और वन्य-पशुओं से लड़ते हुए अपने प्राण त्याग दो. उससे बच गये तो एक षड़यंत्र रचकर तुम्हारे साथ शकुनी से जूआ खिलवाया. मनमाने नियमों में बांधकर तुम्हारे सर्वस्व का अपहरण किया. कृष्ण का अपमान किया. तुम यह सब देखते रहे और समझते रहे कि तुम धर्म पर चल रहे हो और धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा. नहीं युधिष्ठिर, यह धर्म नहीं है..."

"तो धर्म क्या है?" युधिष्ठिर जैसे अपने-आप से पूछ रहे थे.

किंतु कृष्ण उनकी बात अनसुनी कर अपने ही प्रवाह में बोलते चले गये, "तुम कहते हो कि क्षत्रिय युद्ध-निमंत्रण को अस्वीकार नहीं करता और मैंने क्या किया? एक ओर से जरासंध चढ़ा चला आ रहा था और दूसरी ओर से काल-यवन. मैं यदि तुम्हारे क्षत्रिय धर्म के अनुसार उनके युद्ध निमंत्रण को स्वीकार करता तो सारा यदु-कुल समाप्त हो जाता. मैंने युद्ध न करने का निर्णय किया. मैंने न केवल युद्ध नहीं किया, वरन् शत्रुओं के लिए मथुरा खाली कर दी. मैंने युद्ध-क्षेत्र से पलायन किया, "क्या वह अधर्म था?"

"नहीं ! नहीं! !" युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक बोले, "नहीं, तुमने अधर्म नहीं किया. तुमने सारे यदु-कुल की रक्षा की."

"तो फिर तुम अपने भाइयों, अपनी पत्नी और अपनी मां की रक्षा क्यों नहीं करते?" कृष्ण का स्वर कुछ तीखा था, "जानते हुए भी कि वे तुम्हारी हत्या करना चाहते हैं. तुम्हें वंचित, पीड़ित और अपमानित करना चाहते हैं, तुम बार-बार जाकर उनके षड़यंत्रों के जाल में फंस जाते हो."

युधिष्ठिर निःशब्द, असमंजसपूर्ण आंखों से कृष्ण को देखते रहे, जैसे डांट पड़ने पर बच्चा यह तो मान जाये कि उससे भूल हो गयी है, पर भूल कहां हुई है, उसकी समझ में न आये. फिर धीरे से बोले, "मैं तो अपने धर्म पर चलता रहा मधुसूदन."

"तुमने धर्म के स्थूल रूप को ही धर्म माना युधिष्ठिर. धर्म बहुत सूक्ष्म वस्तु है." कृष्ण बोले, "तुम घट को पकड़े हुए हो, किंतु उसके भीतर के जल को तुमने झांककर भी कभी नहीं देखा कि वह जल स्वच्छ है या नहीं पीने योग्य है या नहीं?"

"धर्म का मर्म क्या है कृष्ण?" युधिष्ठिर का स्वर दीनता लिये हुए था, "द्रौपदी के पूछने पर पितामह भीष्म ने भी यही कहा था, "धर्म का मर्म बहुत सूक्ष्म है पांचाली."

"मैं भी यही कहता हूं धर्मराज." कृष्ण बोले, "धर्म का मर्म सूक्ष्म है. किसी विशेष संदर्भ में मानवों के किसी समाज-विशेष के द्वारा अपनी रक्षा और कल्याण के लिए बनाये गये नियम प्रकृति का धर्म नहीं हैं. मानव-निर्मित जड़ नियम सृष्टि का सत्य नहीं हो सकते. धर्म अत्यंत सूक्ष्म है. अपने परिवार और उसके हितों की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है या नहीं?"

"है."

"अपनी निरपराध पौत्र-वधू पांचाली के सम्मान की रक्षा करना पितामह भीष्म का धर्म था या नहीं?"

"था."

"पर तुम दोनों ने ही धर्म के मर्म को नहीं समझा." कृष्ण बोले, "तुम दोनों ही देखते रहे, जानते रहे कि तुम लोगों के विरुद्ध एक षड़यंत्र चल रहा है, तुम्हारे हित और कल्याण का दाह हो रहा है, पर तुम लोग रूढ़ नियमों और मान्यताओं को धर्म मानकर, उनको अपने वक्ष से चिपकाए अन्याय को खुली आंखों से देखते रहे और उसे न्याय मानते रहे. नारी के अपमान में धर्म कैसे हो सकता है, किसी के सर्वस्व का अपहरण करने में किसी को वंचित करने में धर्म कैसे हो सकता है...तुम लोग धर्म के बंधन में बंधे रहे, जबकि धर्म सबको मुक्त करता है, बांधता नहीं. जो बांधता है, वह धर्म नहीं. धर्म सदा मेरे बंधन काटता रहा और मैं नयी से नयी मुक्ति का अनुभव करता रहा. मैं नया से नया कर्म करने को स्वतंत्र रहा और तुम बंधते चले गये. भीष्म सबसे अधिक धार्मिक व्यक्ति हैं और वे ही सबसे अधिक बुद्धिभ्रष्ट हैं. न उनकी बुद्धि स्वतंत्र है, न उनका कर्म. वे अपनी भ्रमित धर्म-बुद्धि के कारण सदा पाप और अन्याय के उपकरण बनते चले गये हैं..."

"कृष्ण."

"हां धर्मराज, तुम समय से न चेते तो तुम्हारी भी वही अधोगति होने जा रही है."

"पितामह भीष्म, और पाप के उपकरण !" युधिष्ठिर का मन हो रहा था कि अपने ही दांतों से अपनी जीभ काट ले.

"जिस समय निसर्ग नियम से उन्हें अपना विवाह करना चाहिए था, उस समय उन्होंने युवती स्त्री से अपने पिता का विवाह करवाया. उसी क्षण से कुरू कुल में सब कुछ उलट-पलट गया." कृष्ण बोले, "उन्होंने पितृ-भक्ति की रूढ़ि को अपने जीवन का धर्म मान लिया. वह एकांगी और असंतुलित सत्य था, जीवन का समग्र सत्य नहीं. वह उनकी व्यक्तिगत इच्छा या श्रेय हो सकता है, समाज का सम्यक धर्म नहीं. एकांगी धर्म सम्यक धर्म नहीं होता. वस्तुतः एकांगी धर्म सदा अधर्म और पाप का उत्स बनता है. उन्होंने लोक-धर्म और राज-धर्म को सर्वथा विस्मृत कर दिया. अपने जीवन के आश्रम-धर्म की अवहेलना की. यदि उन्हें आश्रम-धर्म के अनुसार जीवन-यापन नहीं करना था तो संन्यास ग्रहण कर वनवास करते—तो भी शायद जन-सामान्य की इतनी क्षति नहीं होती. परिवार में रहेंगे, शासन के केंद्र में रहेंगे और शासन-सूत्र अपने हाथ में नहीं लेंगे. शासन-तंत्र अन्याय करेगा तो उसका प्रतिवाद नहीं करेंगे, क्योंकि शासन में हस्तक्षेप न करने की उनकी प्रतिज्ञा थी...उनका सारा प्रयत्न शासन तंत्र की रक्षा के लिए होगा. उसके लिए अपने प्राण दे देंगे, चाहे शासन-तंत्र कितना ही अत्याचारी क्यों न हो. दुर्योधन के हाथ में शासन है, इसलिए दुर्योधन जैसे दुष्ट को भी भीष्म का संरक्षण मिल रहा है. आज दुर्योधन के सबसे बड़े संरक्षक कर्ण, द्रोण और धृतराष्ट्र नहीं—स्वयं भीष्म हैं. वे सभा में न आते तो स्थिति कुछ और होती. वे सभा में वर्तमान रहेंगे और देखेंगे कि द्रौपदी का अपमान कौरव किस प्रकार करते हैं..."

युधिष्ठिर ही नहीं, पांचों पांडव और द्रौपदी आज पितामह भीष्म को एक नयी दृष्टि से देख रहे थे. वे जो कुछ सुन रहे थे, यह उनके मन में पहले कभी नहीं आया था. लगा उन्हें भी था कि पांडवों से उत्कट स्नेह रखते हुए भी, अनेक अवसरों पर वे उनकी सहायता को नहीं आये थे. और तो और जिस समय उनकी पौत्र-वधू सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र की जा रही थी, तब भी वे 'धर्म का मर्म अत्यंत सूक्ष्म है' कहकर गर्दन झुकाए बैठे रहे थे.

"नहीं, तुम पितामह के प्रति अधिक कठोर हो रहे हो कृष्ण. धर्मात्मा भीष्म पाप और अधर्म के उपकरण नहीं हो सकते." अर्जुन ने रुककर कृष्ण को देखा, "उनकी मान्यता तुमसे भिन्न है. देश और काल के भेद से मान्यताएं भिन्न हो जाती हैं. वे अपनी मान्यताओं के प्रति पूर्ण आस्थावान हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेर-फेर

बलराम

प्रधानमंत्री इंद्र की टेबुल पर देशी-विदेशी अखबारों का ढेर लगा था. सभी अखबार देखकर प्रधानमंत्री इंद्र चिंतामग्न हो गये और हथेली पर ठुड्डी टिकाकर कोने में अंटे मकड़ी के जाले को देखने लगे. तभी बृहस्पति गुरु का आगमन हुआ. अनमने भाव से प्रधानमंत्री इंद्र ने उन्हें प्रणाम किया और सिर झुकाकर बैठ गये. प्रधानमंत्री इंद्र की उदासी देखकर बृहस्पति गुरु कुर्सी से उठकर उनके पास आये और स्नेहमिश्रित स्वर में पूछा.

''वत्स, क्या बात है, आज तुम कुछ अधिक ही उदास और चिंतित नजर आ रहे हो?''

''हां गुरुवर, आज मैं बहुत चिंतित हूं. उस बार हम लोगों को सुर और असुर नाम की दो पार्टियों में बांटकर आपने मेरे विरोधियों का सफाया कर दिया था. इस बार इन सुरों में ही कुछ लोग मुझसे अधिक प्रभावशाली होने लगे हैं.''

''नहीं वत्स, ऐसा नहीं सोचते. ये लोग तो तुम्हारे ही बैनर के नीचे जनता की भलाई के लिए काम कर रहे हैं. विश्वामित्र को ही लें—उन्होंने काले धन पर सवारी कस दी है. चीजों के भाव गिरने लगे हैं. जनता खुश है. इसमें चिंता की कोई बात नहीं दीखती.''

बृहस्पति गुरु की यह बात सुनते ही इंद्र के चेहरे पर और भी अधिक परेशानी उभर आयी. कुछ तेज आवाज में वे बोले, ''यही विश्वामित्र तो मेरी आंख की किरकिरी बन गया है. विश्वास न हो तो टेबुल पर जमा देशी-विदेशी अखबारों का यह ढेर उठाकर देख लो. हर जगह विश्वामित्र के फोटो, काले धन पर उसकी सवारी की खबरें, वही विश्वामित्र का दीवाना हुआ जा रहा है. लोग मुझे भूलने लगे हैं.''

''इससे क्या हुआ, जनता तो खुश है..''

''जनता तो खुश है, लेकिन मैं तो दुखी हूं. मेरी कुर्सी कांप रही है. उसके छिन जाने का अंदेशा है.''

''तो क्या जनता का गला घोंट दिया जाये..''

''जनता का नहीं, विश्वामित्र का.''

''ऐसा नहीं हो सकता.''

''ऐसा नहीं हुआ तो मेरा भविष्य चौपट हो जायेगा.''

''तुम्हारा भविष्य देश से बड़ा नहीं है.''

इंद्र के नथुने फड़क उठे और उन्होंने अपना अंतिम अस्त्र इस्तेमाल कर दिया.

''गुरुवर, अगर ऐसा है तो आज से आपको गुरुपद से मुक्त किया जाता है.'' और फिर ऐसा ही हुआ. अगले दिन बृहस्पति की जगह शुक्राचार्य ने प्रधानमंत्री इंद्र को समझाया, ''वत्स, तुम चिंता न करो. सब ठीक हो जायेगा. आज ही आकाशवाणी से मंत्रिमंडल में हेर-फेर की सूचना प्रसारित करवा दो. भोले शंकर से पेट्रोलियम विभाग लेकर विश्वामित्र को सौंप दो और विदेशों से खनिज तेल प्राप्त करने के बहाने उनकी विदेश यात्रा का प्रबंध कर दो. और हां, सेवा के लिए उनके साथ कुमारी मेनका को भेजना न भूलना.''

नये गुरु शुक्राचार्य की यह योजना प्रधानमंत्री इंद्र के लिए वरदान साबित हुई. उन्होंने मंत्रिमंडल में हेर-फेर कर विश्वामित्र को कुमारी मेनका के साथ विदेश यात्रा पर भेज दिया. उसके बाद विश्वामित्र कभी अखबारों में नहीं आये. □

उन्हें अपना धर्म मानते हैं और पूरी निष्ठा से उस पर आचरण करते हैं. हमारे समाज में, हमारे कुल में पुत्रों ने अपने पिता के लिए अपना यौवन दे दिया. पितामह ने अपने पिता की प्रसन्नता के लिए अपने जीवन का भोग त्यागा. धर्मराज, पितृ-तुल्य राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सके. इतने भर से ये लोग पापी नहीं हो जाते.''

''मान्यता और आस्था से मेरा विरोध नहीं है,'' कृष्ण बोले,'' पर आचरण-सिद्ध व्यक्ति को मान्यताओं पर प्रश्न-चिन्ह लगाना भी आना चाहिए. अपनी मान्यता का फल देखना चाहिए. परिणाम तो गला फाड़-फाड़कर कहता है कि मैं अच्छा हूं या बुरा हूं. कौरवों की राज-सभा में जो कुछ हुआ, उसके बाद भी क्या भीष्म यह नहीं देख पा रहे थे कि वह अच्छा है या बुरा. और अपनी जिस मान्यता को वे धर्म माने बैठे हैं, वह धर्म है या अधर्म. व्यवस्था के भीतर ही से नहीं, कभी व्यवस्था का अतिक्रमण करके भी सोचना चाहिए.'' कृष्ण क्षणभर रुककर बोले, ''बहुत सहानुभूति से भी भीष्म का विश्लेषण करूंगा तो यही कहूंगा कि वे दो पीढ़ी पुराने व्यक्ति हैं—जिन स्थापनाओं से उनका आचरण परिचालित होता है, उनकी परख अब वे नहीं कर पायेंगे. वे स्थापनाएं ही उनके जीवन का सत्य, धर्म और मर्म हैं. न पितामह को बदला जा सकता है, न उनकी मान्यताओं को. किंतु उनकी मान्यताओं के कारण हो रहे अधर्म को देखते हुए हम यह तो कहेंगे ही कि वे स्वयं में चाहे कितने ही धर्मात्मा हों, किंतु उनके धर्म के कारण अब पाप का पोषण होने लगा है और वे स्वयं उसका उपकरण बन रहे हैं.''

''मानवता की नयी पीढ़ियों के साथ मान्यताएं तो बदलती ही हैं'' अर्जुन बोले, ''किंतु संतान को पिता-पितामह का अपमान या अवज्ञा तो नहीं करनी चाहिए. कल को तुम्हारे पुत्र तुम्हारी अवज्ञा करें तो?''

कृष्ण मुस्कराये, ''मुझे अपने ही सिद्धांतों में बांधने का प्रयत्न कर रहे हो. अनादर और अवज्ञा का भी स्वरूप-भेद है मित्र.'' वे गंभीर हो गये, ''तुम लोग स्वयंवर से लौटे तो तुम्हारी माता ने अनजाने में एक वाक्य कह दिया, ''जो लाये हो, सारे भाई बांट लेना,'' तो तुम लोगों ने इसका अर्थ यह निकाला कि तुम पांचों को द्रौपदी से विवाह कर लेना चाहिए. दूसरी ओर मेरे अपने पुत्र प्रद्युम्न ने वय में स्वयं से कहीं बड़ी भाभी से विवाह कर लिया. निश्चित रूप से मैं और रुक्मिणी अपने पुत्र के लिए पत्नी-रूप में ऐसी स्त्री को नहीं चुनते. फिर भी मैं इसे अपनी अवज्ञा नहीं मानता. मैं तुम लोगों से भी प्रेम करता हूं और प्रद्युम्न से भी. तुम्हारा अपनी माता का आदेश मानना सद्भावना से पूर्ण था और उसका परिणाम भी शुभ हुआ. तुम सबकी एकता और आत्मीयता सुरक्षित रही. किंतु यदि तुम्हारी माता की आज्ञा का आदर पांचाली के लिए स्वीकार्य न होता—यदि वह इसे अपने साथ अत्याचार मानती तो तुम्हारा धर्म, सद्भावना और सदेच्छापूर्ण होते हुए भी अधर्म को जन्म देता. यदि मैं और रुक्मिणी अपने पुत्र की विवाहिता पत्नी को एक अनुचित चुनाव मानकर स्वीकार न करते तो संतान के प्रति वात्सल्य-धर्म और हमारी स्वेच्छा के होते हुए भी हमारा कृत्य अधर्मपूर्ण होता.''

''बात तो पितामह भीष्म के पाप के उपकरण बन जाने की थी.'' धृष्टद्युम्न बोले.

''हां,'' कृष्ण ने उत्तर दिया, ''सत्यवती पराशर की अनुरागिनी थी. उसका विवाह वृद्ध शांतनु से करवा दिया. वृद्धावस्था में जैसी संतानें हो सकती थीं, शांतनु की संतानें वैसी ही हुईं. चित्रांगद और विचित्रवीर्य. जो शासन करने योग्य नहीं था, उसके हाथों में सत्ता सौंपी और भीष्म स्वयं न्याय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्याय का समझते हुए भी उससे दूर बने बैठे रहे...जो विवाह करने योग्य नहीं थे, उनके विवाह कराने के लिए तीन-तीन कन्याओं का अपहरण किया. नारी का अपमान...''

''क्यों? तुम रुक्मिणी का हरण नहीं कर लाये?'' भीम ने आपत्ति की.

कृष्ण समझ रहे थे कि भीम को पितामह से कोई सहानुभूति नहीं थी, किंतु कृष्ण को अड़ंगी लगाकर, उसका मजा वे लेना चाहते थे.

''अखाड़े में व्यायाम करने के बाद किसी अच्छे गुरु से थोड़ा व्याकरण भी पढ़ लिया करो,'' कृष्ण मुस्कराये, ''अपहरण और हरण में बहुत अंतर है. रुक्मिणी-हरण का अर्थ था, उसे उसके पिता और भाई के अत्याचार से मुक्ति दिलाना, उसकी इच्छा के विरुद्ध उस पर थोपे गये पति नामक पुरुष के बलात्कार से उसकी रक्षा करना और उसे उसके मनोवांछित पति से मिला देना.'' कृष्ण पूर्ण आत्मविश्वास के साथ बोले, ''धर्मराज युधिष्ठिर के जीवन में ऐसा अवसर आया होता तो इनका धर्म इन्हें बांध देता कि कन्या अपने पिता की संपत्ति है, पिता की इच्छा के विरुद्ध उसकी संपत्ति को कैसे हाथ लगाया जाये. किंतु मेरा धर्म मुझे बांधता नहीं है. मैं स्त्री को पुरुष की संपत्ति नहीं मानता—न पिता की, न पति की, न पुत्र की. वह चेतन प्राणी है, मनुष्य है—वह किसी की संपत्ति कैसे हो सकती है. प्रकृति के नियमों के अनुसार उसकी इच्छा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी किसी पुरुष की. उसका मनोवांछित पुरुष ही उसका पति हो सकता है. नारी -पुरुष संबंध मनोनुकूलता से अपार्थिव प्रेम को जन्म देता है और मन की प्रतिकूलता से यह संबंध पाप-कृत्य हो जाता है.'' कृष्ण कुछ धीमे हुए, ''ऐसा न होता तो अर्जुन के प्रति सुभद्रा के प्रेम को जानकर अर्जुन द्वारा उसके हरण में मैं सहायक न होता. कुल-गौरव को नाम पर अर्जुन से युद्ध करता. मेरा धर्म कहता है कि दो प्राणियों का प्रेम अलौकिक सत्य है. उस सत्य के समर्थन में मुझे सक्रिय योगदान देना है, एक मिथ्या कल्पना के मोह में बंधकर सत्य का विरोध नहीं करना है...''

''तुम्हारा धर्म मेरी समझ में नहीं आता...'' धर्मराज धीरे से बोले.

''धर्म का मर्म अत्यंत सूक्ष्म है धर्मराज !'' कृष्ण मुस्कराये, ''सबकी समझ में नहीं आ सकता.''

''काशीराज की कन्याओं का अपहरण अधर्म कैसे था...?'' नकुल ने बात को दूसरी ओर मुड़ते देखकर पूछा.

''भीष्म ने अपने क्षात्र-धर्म के उन्माद में उन तीन कन्याओं का अपहरण किया.'' कृष्ण बोले, ''अपहरण इसलिए कह रहा हूं क्योंकि उस कृत्य में उन कन्याओं की सहमति नहीं थी...ठीक है?''

''ठीक है,'' नकुल ने समर्थन किया.

''अंबा को उसके प्रेमी शल्य से छीना और उसको तिरस्कृत तथा अपमानित किया.'' कृष्ण बोले, ''अंबिका और अंबालिका को, उस पुरुष को सौंप दिया, जो न पति होने योग्य था न पिता. और उसकी मृत्यु के पश्चात् संतान न होने के कारण, उन दोनों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें व्यास देव को सौंप दिया. ''वे कुछ रुके, ''भीम, तुम कहोगे कि नियोग की अनुमति समाज भी देता है, शासन भी और धर्म भी. किंतु नियोग का अर्थ है, जहां नारी, संतान पाने की उत्कट आकांक्षा में अपने पति की असमर्थता तथा इच्छा जानकर, अथवा पति के अभाव में किसी सात्विक तथा प्रिय व्यक्ति से स्वयं संतान की याचना करे. किसी स्त्री को उसकी प्रतिकूल मानसिकता में ''किसी भी पुरुष की शैया पर धकेल देना नियोग नहीं है. भीष्म ने अपने एकांगी धर्म को निभाने के लिए यह भी किया.''

''धर्म है क्या?'' धर्मराज ने कृष्ण की ओर देखा.

''और एक बात मैं और कह दूं,' कृष्ण अपने प्रवाह में कहते चले गये.''यदि भविष्य में कभी तुम्हारा और धृतराष्ट्र-पुत्रों का युद्ध हुआ—जिसकी बहुत अधिक संभावना है, तो तुमसे बहुत अधिक स्नेह रखतो हुए भी, तुम्हारा पक्ष, न्याय का पक्ष मानते हुए भी, वे कौरवों की ओर से ही युद्ध करेंगे, क्योंकि वे अपने रूढ़ राज-धर्म से चिपके रहेंगे.''

''मैं तुमसे ही पूछ रहा हूं माधव, कि धर्म क्या है?'' युधिष्ठिर ने पुनः कहा.

''भैया के प्रश्न से पहले एक प्रश्न मेरा भी है.''अर्जुन ने मुस्कराकर कहा, ''धर्मावतार कर्ण के विषय में तुम्हारा क्या विचार है? वह भी धर्म का स्तंभ माना जाता है.''

''कर्ण.'' कृष्ण मुस्कराये, ''वह गंगा में खड़े होकर सूर्य की पूजा करने और याचक को दान देने को संसार का सबसे बड़ा धर्म समझता है, और उसके बाद वह कुलवधुओं के अपमान का समर्थन करता है. दुर्योधन और शकुनी जैसे पापियों की संगति कर, उन्हें अपना संरक्षक मान, उनकी रक्षा करता है. ऐसा पाप-समर्थक व्यक्ति धर्म के मर्म को नहीं समझता—केवल धार्मिक होने का स्वांग करता है और सच्चे मन से विश्वास करता है कि वह सच्चा धार्मिक है.''

''तो धर्म का मर्म भी समझाओ.'' युधिष्ठिर का आग्रह कुछ और प्रखर हो गया था.

''धर्म का मर्म अनासक्त विवेक में है.'' कृष्ण का स्वर बहुत गहरा हो गया, ''मोह का पूर्ण त्याग. मोह किसी के प्रति नहीं होना चाहिए—न जाति के प्रति, न संबंध के प्रति. धर्म सदेच्छा और सद्परिणाम में है. यदि परिणाम मानवता के हित में शुभ नहीं है तो व्यक्ति को अत्यंत निर्भय होक अपनी धर्म-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था का परीक्षण करना चाहिए. धर्मराज, तुमने पूर्व स्थापनाओं पर आचरण करना सीखा है, स्थापनाओं का परीक्षण करना नहीं. तुमने मानव-निर्मित नियमों को धर्म मान लिया है. इसिलिए भयंकर परिणामों को देखकर भी तुमने नियमों की सत्यता में संदेह नहीं किया. तुम देख रहे थे कि कौरव तुम लोगों का सर्वस्व-अपहरण करने के लिए, तुम्हें निरादृत और अपमानित करने के लिए एक षड्यंत्र रच रहे हैं, फिर भी तुम दो-दो बार उनके साथ जूआ खेलने बैठ गये. तुम जानते हो कि यदि फिर ऐसी स्थिति आयी और राजा धृतराष्ट्र ने पुनः आदेश दिया तो तुम फिर जूआ खेलोगे.''

''मैं उनके आदेश का तिरस्कार कैसे कर सकता हूं...'' धर्मराज पूर्ण असहायता के साथ बोले, ''वे पितृतुल्य हैं.''

''नहीं !'' भीम ने अपना पैर भूमि पर पटका.

''यदि फिर ऐसा हुआ तो सर्वनाश हो जायेगा.'' कृष्ण बोले, ''तुम्हारे ये भाई तभी तक तुम्हारे हैं, जब तक तुम इनके कल्याण की रक्षा कर सकते हो. ये तुम्हारी संपत्ति नहीं हैं—ये तुम्हारा आदर करते हैं. यदि तुम जानते-बूझते फिर कौरवों के षड्यंत्र में जा बंधे तो भीम तुम्हें धिक्कार कर ही मौन नहीं रह जायेगा...''

''पर मेरा धर्म?'' युधिष्ठिर जैसे एक [illegible] हो गये थे, ''मैं [illegible] धृतराष्ट्र का कहा नहीं टाल सकता. उनकी [illegible] को जानते हुए, उनका विरोध नहीं कर सकता.''

''विवेकी पुरुष अपने बंधनों को ज्ञान से काटता है.'' कृष्ण मुस्कराये. ''धर्मराज, जिस समय अपने छोटे भाइयों और माता के साथ अनाथ-से तुम हिमालय क्षेत्र से हस्तिनापुर आये थे, तब तुम अजाने ही स्वयं को बहुत तुच्छ, अकिंचन, असहाय, असुरक्षित और जाने क्या-क्या मान बैठे थे. उस समय तुमने धृतराष्ट्र को देखा—वे तुमसे वय में बहुत बड़े थे. संबंध की दृष्टि से पितृ-तुल्य थे. समर्थ थे, संपन्न थे, राजसी वैभव और गौरव से मंडित थे. तुम्हारा मन उनके आतंक से भर उठा था. तुमने मान लिया था कि उस व्यक्ति की प्रसन्नता से ही तुम सुरक्षित रह सकते हो, उसकी अप्रसन्नता तुम्हारे लिए हानिकारक हो सकती है. तुम्हारे बाल-मन की ये धारणाएं तुम्हारे व्यक्तित्व में बद्धमूल हो गयीं. तुम बड़े हुए, समर्थ हुए, स्वतंत्र राज हुए, राजसूय यज्ञ कर चक्रवर्ती सम्राट हुए, किंतु अपने मन के उस बंधन को तुम काट नहीं पाये. उसी बंधन को तुम अपना धर्म समझे बैठे हो.'' कृष्ण ने रुककर अपने आस पास बैठे सब लोगों पर एक दृष्टि डाली. वे लोग बहुत ध्यान से उनकी बात सुन रहे थे. कृष्ण की दृष्टि पुनः आकर युधिष्ठिर पर थम गयी. ''धृतराष्ट्र के मन में भी तुम्हारे प्रति पुत्र-तुल्य भाव होता, थोड़ा-सा न्याय कर सकते या वे दुर्योधन के प्रति अंधे वात्सल्य के कारण सर्वथा ही असहाय न हो गये होते तो शायद तुम्हारा उनके प्रति निहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतंक-भाव भी उतना हानि-कारक न होता किंतु ऐसा है नहीं. दुर्योधन के प्रति धृतराष्ट्र का मोह कोई सीमा नहीं जानता. यह जानते हुए भी कि दुर्योधन दुष्ट, पापी, अन्यायी, स्वार्थी, और अधर्मी है—वे दुर्योधन की इच्छा का विरोध नहीं कर सकते. राजा धृतराष्ट्र न्यायी और स्वतंत्र राजा नहीं है, वे अपने पुत्र की इच्छाओं के संकेत पर नाचने वाली कठपुतली हैं. ऐसे में तुम्हारा धर्म उनके आदेशों का पालन करना है या उनके षड्यंत्रों से अपनी और अपने ऊपर आश्रित इन भाइयों, पत्नी और बच्चों की रक्षा करना?"

युधिष्ठिर चुप बैठे रहे किंतु उनका असमंजस उनके चेहरे पर बहुत प्रत्यक्ष रूप में विराजमान था.

कृष्ण पुनः बोले, "एक बात और कहूं, शायद तुम्हें अपनी वृद्धावस्था से उबरने में सहायता मिले."

"क्या?" युधिष्ठिर ने सिर उठाकर उनकी ओर देखा.

"तुम अपने भाइयों में सबसे बड़े हो. तुम्हारे छोटे भाइयों ने अपने शैशव से तुम्हें सदा इसी प्रकार अपने से बड़ा और समर्थ माना है, जैसे तुम आज तक धृतराष्ट्र को मानते रहे हो. वे यह भी समझते हैं कि पांडवों की एकता ही उनका बल है, इसलिए वे तुम्हारी संपत्ति बने बैठे हैं और तुम उनके स्वामी. कौरवों की राजसभा में उन्होंने तुम्हारे प्रति अपने प्रेम और भक्ति की अग्नि-परीक्षा दी है. भीम ने यद्यपि क्रोध में कुछ अपशब्द कहे हैं, किंतु मर्यादा उसने भी नहीं तोड़ी. किंतु बार-बार ऐसी परीक्षा लेने का जोखम मत उठाना. विवेक के विकास से व्यक्ति अपने बंधन तोड़ता है. धर्म अनासक्त विवेक का ही दूसरा नाम है. ऐसा न हो कि तुम अपनी जड़ता न तोड़ो और तुम्हारे भाइयों या पत्नी को अपनी मर्यादा तोड़नी पड़े..."

युधिष्ठिर स्तब्ध-से कृष्ण को देखते रहे.

"ये कठोर बातें इसलिए कह रहा हूं, "कृष्ण, अग्नि को शीतल कर देने वाली मुस्कान अपने अधरों पर ले आये, "कि वनवास की अवधि में जीवन के सत्य और धर्म के मर्म को समझने का प्रयत्न करो...और यद्यपि अभी पर्याप्त समय है, फिर भी एक आश्वासन मुझे दो कि वनवास की अवधि समाप्त हो जाने पर, कौरवों से कोई भी व्यवहार करने से पूर्व अपना धर्म, हम सबके परामर्श से निर्धारित करोगे."

पांडवों के चेहरे खिल गये. द्रौपदी की पीड़ा उसके चेहरे से पुंछ गयी. धृष्टद्युम्न तो पूर्णतः उल्लासित हो उठा.

सुभद्रा ने पहली बार मुंह खोला, "भैया ! आप पहले क्यों नहीं आये?"

उसके चेहरे पर बहन के लाड और बेटी के अधिकार के सारे भाव एक साथ विराजमान थे.

कृष्ण ने मुस्कराकर उसे देखा, "अतीत को छोड़ पगली, भविष्य की बात कर." कृष्ण की आंखों से जैसे स्नेह के निर्झर बह रहे थे, "सुभी ! मेरे साथ द्वारका चलोगी या अपने पति के साथ वन में रहोगी?"

"उसे धर्म-संकट में मत डालो मित्र !" अर्जुन ने सुभद्रा को बोलने का अवसर नहीं दिया, "वह तुम्हारे साथ द्वारका जायेगी. अभिमन्यु अभी बहुत छोटा है—वन्य-जीवन की प्रखरता उसके अनुकूल नहीं है."

"क्यों?" सुभद्रा ने अत्यंत शालीन स्वर में कहा, "क्या वन्य-जीवन की प्रखरता, उसे और भी प्रखर नहीं बनायेगी?"

"केवल वन्य-जीवन की असुविधाओं की बात होती तो मैं तुमसे सहमत हो जाता." अर्जुन ने कहा, "पर इस सारी स्थिति में दुर्योधन और उसके दुष्ट मित्र हमें परेशान करते रहेंगे. ऐसी स्थिति में स्त्रियों और बच्चों का हमारे साथ वन में रहने से अच्छा है कि वे सुरक्षित स्थान पर रहें."

"अर्जुन ठीक कह रहे हैं." कृष्ण बोले, "अज्ञातवास के वर्ष में सबसे अधिक कठिनाई होगी. जितने अधिक लोग साथ रहेंगे, पहचाने जाने की संभावना उतनी ही बढ़ जायेगी. इसलिए केवल वे ही लोग वनवास करें, जिनका वनवास आवश्यक है."

"मैं धृष्टद्युम्न के साथ कांपिल्य नहीं जा रही." द्रौपदी ने सर्वथा निश्चयात्मक स्वर में कहा, "मैं वन में अपने पतियों के साथ रहूंगी. हां, यदि आप लोग सहमत हों तो प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, सतनीक तथा श्रुतकर्मा को भैया धृष्टद्युम्न के साथ कांपिल्य भेज दें."

"क्यों? तुम कांपिल्य क्यों नहीं जाना चाहतीं पांचाली?" कृष्ण ने पूछा.

"पहली बात तो यह है कि जूए में मैं भी हारी गयी थी. अतः नियमानुसार मुझे भी वनवास करना ही है." द्रौपदी क्षण भर को रुकी, "दूसरे, मेरे मन में अपने इन पतियों के लिए इस समय इतनी कड़वाहट है कि यदि मैं बारह वर्ष इनसे अलग रही तो अपने आक्रोश के कारण उस कड़वाहट को विष में बदल डालूंगी—ऐसा मैं नहीं चाहती. अच्छा है कि मैं इनके साथ रहूं और अपना मन-मुटाव दूर करूं."

"और तुम्हारी सुरक्षा?" धृष्टद्युम्न ने पूछा.

"उसका दायित्व इस बार मुझ पर है." भीम कुछ उच्च स्वर में बोले, "अब किसी ने यदि पांचाली को तनिक भी क्लेश पहुंचाया तो मैं किसी धर्म-वर्म की चिंता किये बिना उसके प्राण ले लूंगा. तब मुझे कोई रोकेगा तो अच्छा नहीं होगा."

युधिष्ठिर ने चुपचाप सिर झुका लिया.

"तो ठीक है." अर्जुन ने कहा, "द्रौपदी हमारे साथ वन में रहे. बच्चे धृष्टद्युम्न के साथ चले जायें. सुभद्रा और अभिमन्यु द्वारका जायें. करेणुमती. धृष्टकेतु के साथ जाये."

"धर्मराज. आप सहमत हैं?" कृष्ण ने पूछा.

युधिष्ठिर क्षण भर के लिए शून्य में देखते रहे. फिर बोले, "मैं अपने भाइयों में सबसे बड़ा अवश्य हूं, पर इस क्षण से न मैं इनका स्वामी हूं न ये मेरी संपत्ति हैं. मुझे अपने भाइयों या अपनी पत्नी पर स्वामित्व का अधिकार नहीं होगा. हमें सब समानता के आधार पर परस्पर विचार-विमर्श कर अपने धर्म को निर्णय करेंगे."

कृष्ण की मुस्कान बहुत ही मोहक थी, "धर्मराज. आपने कौरवों के साथ आगामी युद्ध में आज पांडवों की विजय निश्चित कर दी है. □

175, वैशाली, दिल्ली-110034

चलते-चलते

'मिथक' की परिभाषा विज्ञान के अभ्युदय से पूर्व के एक ऐसे कल्पनाशील प्रयास के रूप में की जा सकती है, जो किसी घटित अथवा संभावित घटना की व्याख्या के लिए पुराख्यान सृष्टा के कौतूहल को उद्दीप्त करता है. ऐसी घटनाओं से मन में पैदा हुए विकल संभ्रम से निकलकर संतोष की स्थिति में पहुंचने का प्रयास ही इनके पीछे है. □

—आक्सफोर्ड क्लासिकल डिक्शनरी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्ती

इंतजार हुसैन

उन्होंने मछली को सागर में ढकेला और कहा, ''अब तू मेरा पिंड छोड़. इस विशाल सागर में जितना मन चाहे उतना फैल !'' उन्होंने कहा ही था कि मछली फैलने लगी और पूरे सागर पर छा गयी! प्रलय के संदर्भ में पौराणिक मिथकों को उजागर करती पाकिस्तान के प्रख्यात कथाकार की कहानी कि किस प्रकार समस्त मानव जीवन एक कश्ती में सिमटकर भी अजेय रहता है—

बाहर मेह बरस रहा था. उमस से परेशान होकर जिस-जिसने सिर बाहर निकाला, फौरन अंदर कर लिया.

''बारिश कुछ कम हुई?''

''बिलकुल नहीं. उसी वेग के साथ हुए चली जा रही है. यह बारिश है या कयामत?''

''अंदर के हुबस से तो बहरहाल बेहतर सूरत है.''

''कोई बेहतर सूरत नहीं. अंदर हुबस, बाहर बारिश. आदमी आखिर कहां जाये?''

''सब कुछ तो डूब गया. अब आखिर बारिश क्यों हुए चली जा रही है.''

''हम जो बाकी रह गये हैं.''

''हां, बस हम हीं बाकी रह गये हैं, मगर हम हैं. कितने...उंगलियों पर गिन लो.बाकी तो चरिंद-परिंद ही हैं.''

''हां बाकी तो चरिंद-परिंद ही हैं. शायद इसलिए भी हुबस हो गया है. जानवरों के दरम्यान सांस लेना कितना मुश्किल हो रहा है. पता नहीं कब तक हम इस तौर जानवरों के दरम्यान बसर करते रहेंगे.''

''कितने दिन गुजर गये, बारिश उसी रफ्तार से हुए चली जा रही है.''

''शुरू किस दिन हुई थी?''

''किस दिन?...हां, कितने दिन हो गये.'' सबने अपने-अपने तौर पर याद किया. पर किसी को याद न आया कि वह कौन-सा दिन था या कौन-सी तारीख थी, जब बरसन शुरू हुआ था.

''इसका मतलब यह है कि हमें अब कुद अंदाजा नहीं कि हम कितने दिन से सफर में हैं.''

सब सोच में पड़ गए. कितने दिन से, कितने बरस से, कितनी सदियों से? बारिश और सफर में यही होता है. लगातार बरसे तो लगता है कि बरस-बरस से बरस रहा है, और बरस-बरस बरसेगा.. सफर के बीच कोई पड़ाव न आये, तो यों महसूस होता है कि जन्म-जन्म से सफर में हैं.

''बहरहाल, जिस दिन बारिश शुरू हुई थी उसी दिन हम घरों से निकले थे. अगर किसी को यह याद हो कि हमने किस रोज अपने घर को छोड़ा था तो बात बन सकती है.''

घरों को छोड़ने के बाद यह पहला मौका था कि घरों का नाम किसी के लब पर आया था...तो हमारे घर भी थे. यह सोचकर वे हैरान हुए...और छोड़े हुए घर अचानक उनके तसव्वुर में यों उभरे जैसे अभी-अभी वे उन्हें छोड़ कर निकले हैं.

''उन घरों को क्या याद करना, जो ढह गये और बह गये.'' तब सब आंखें डबडबाईं. फिर उन सबने मिलकर अपने घरों को याद किया और वे रोये.

''अजीजो, उन घरों की बरबादी मुकद्दर हो चुकी थी.''

''वह कैसे?''

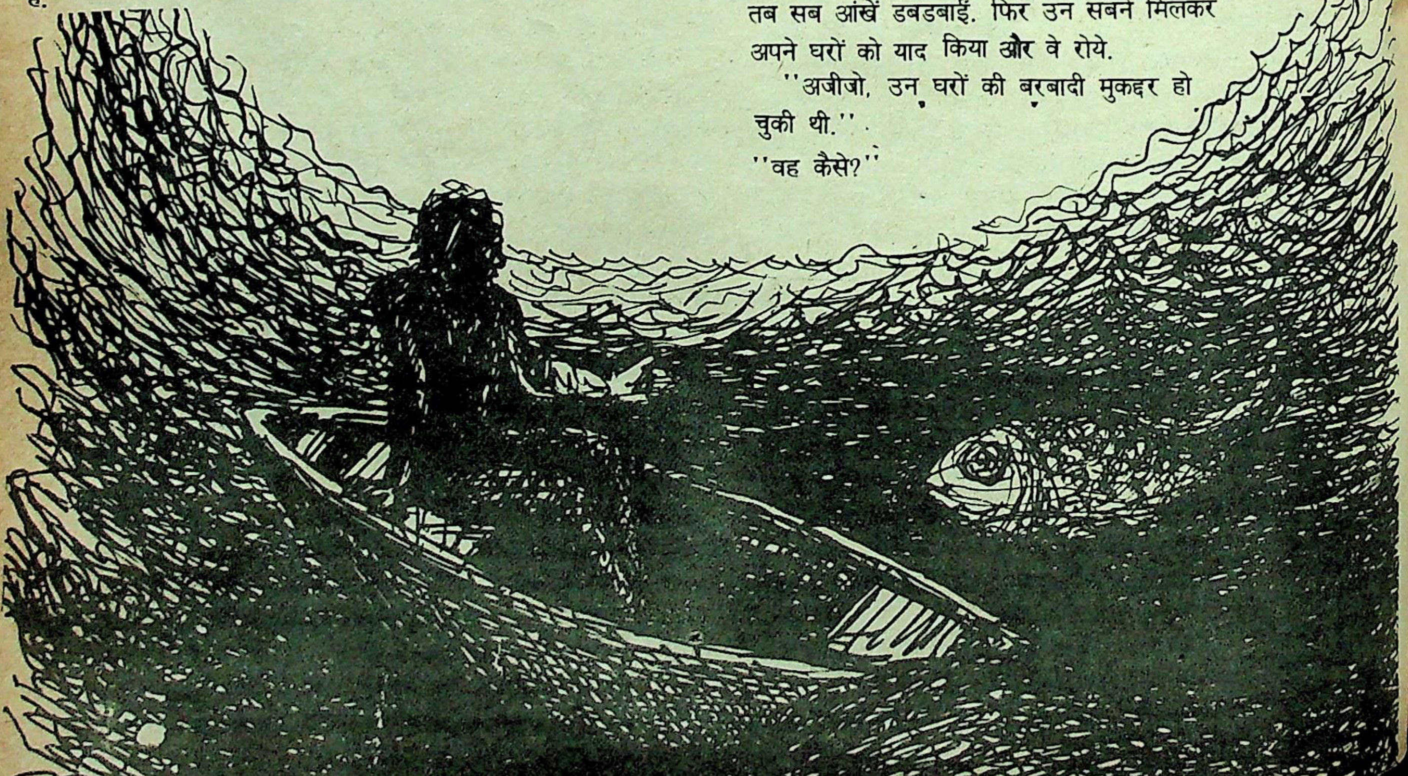

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब कुलगमस घुटनों के बल हो बैठा. और बोला, "हमसफरों, दीदाए-इबरत निगाह रखते हो तो मुझे देखो कि में किन-किन पुरशोर समंदरों से गुजरकर इस देश में पहुंचा, जहां मैं इतना आराम करता था. मैं ने सुना था कि हरकत में बरकत है और सफर कामयाबी है, पर मुझ दरमांदा-राह ने हरकत को बेबरकत पाया और सफर को लाहासिल जाना, जबकि हयाते-जावदानी के मजे लूटता है और इस बहिश्ते बुनियाद इकलीम में आराम करता है.

तब उन्होंने सोचा और याद किया कि हुआ क्या था. हुआ यों कि जमीन आदमियों से भर गयी. आदमियों से, जुल्म से. खुदावंद के बेटों ने उन बेटियों को खूबसूरत पाया, और अपनी जोरू बना लिया और उन बेटियों ने जोरू बनकर और बेटियां जनीं कि और खुदा के बेटे उन पर रीझे और उन्हें जोरू बनाकर अपने घरों में लौटे. बस, इस तौर जमीन आदमियों से भरती चली गयी. आदमियों से और जुल्म से...और ऐसा हुआ कि खुदावंद ने जमीन पर नजर की और पाया कि जमीन बिगड़ गयी है. तब खुदावंद जमीन पर इंसान के पैदा करने से पछताया और फिर यों बोला कि मैं आदमजाद से भर पाया, सो मैं अब इंसान को, जिसे मैंने रच रखा था. बरबाद करूंगा कि जमीन बहुत बिगड़ गयी है और जुल्म से भर चुकी है.

उन्हीं बिगड़े हुओं के बीच एक नेक बंदा था खुदावंद के साथ चलता था. खुदावंद ने उससे कहा, "ए लमक के बेटे, तू ऐसा कर कि एक कश्ती बना...और देख जब तूफान उठे तो हर जी-रूह के एक जोड़े को अपने साथ ले और कश्ती में बैठ जा." और उस बंदे ने वैसा ही किया.

पर वह बंदा भी जोरू वाला था, और उस जोरू ने बेटे जने, जिन्होंने बड़े होकर खूबसूरत बेटियों को अपनी जोरू बनाया, और वह जोरू शौहर को कश्ती बनाते देखती, तो ठठा करती और बेटों को बुलाकर कहती कि तुम्हारे बाप ने यह क्या खटराग फैला रखा है, दिन-रात लकड़ियां काट-काटकर कुछ बनाता रहता है.

यह ताने सुन-सुनकर लमक के बेटे नोह ने आखिर जबान खोली और कहा कि ए मेरी जिंदगी की शरीक! डर उस दिन से कि तेरा गर्म तंदूर ठंडा हो जाए और कोई आकर तुझे तूफान की खबर सुनाए वैसे ही जैसे भोर भये मनुजी यह देखकर भौचक रह गए थे कि मछली बड़ी हो गयी है और बसान छोटा रह गया है. कल ही तो स्नान करते समय उनके चुल्लू में यह मछली आ गयी थी. उस समय वो उंगली के समान थी. वह उसे फेंकने लगे थे कि उसने दुहाई दी कि प्रभु शांति! मैं तुम्हारी शरण में हूं. और नदी में बड़ी मछलियों के बीच नहीं रह सकती. उन्होंने इसे अपने शरण में ले लिया और एक कुंडे में जल भरकर उसे उसमें डाल दिया. वह उसे देख ही रहे थे कि कूंडा छोटा रह गया और मछली बड़ी हो गयी.

मनुजी ने मछली को कुंडे से निकालकर घड़े में डाल दिया और उसमें पानी भर दिया. पर अगले दिन भोर भये जब मनुजी पूजा के लिए उठे तो देखा कि घड़ा छोटा रह गया है और मछली बड़ी हो गयी है. उसकी दुम घड़े से बाहर निकली हुई है. अब उन्हें और भी अचरज हुआ कि तनिक-सी मछली बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गयी है कि घड़े में नहीं समाती. मछली ने दुहाई दी कि प्रभु कृपा करो. घड़े में मेरा दम घुट रहा है!

मनुजी की कुटिया के बाहर एक जलकुंड था. उन्होंने मछली को घड़े से निकालकर जलकुंड में डाल दिया और निश्चिन्त हो गये. पर अगले दिन फिर उन्हें चिंता लग गयी. जलकुंड छोटा रह गया था. मछली बड़ी हो गयी थी. उसकी पूंछ उसकी जलकुंड से बाहर निकली हुई थी. मछली ने फिर दुहाई दी कि प्रभु तुमने मुझे अपनी शरण में लिया है. पर मुझे तुम्हारी शरण में चैन नहीं मिला. मनुजी ने यह सुनकर मछली को जलकुंड से निकाला और नगर से बाहर तलैया में खिसका दिया. कहा, 'ले, अब तू तलैया में तैर और चैन कर.'

मनुजी मछली को तलैया में छोड़कर ऐसे आये जैसे सिर से बड़ा बोझ उतार करके आये हैं. उस रात वह चैन से सोये, पर जब तड़के आंख खुली तो खुली की खुली रह गयी. मछली की पूंछ तलैया से लंबी होते-होते उनके आंगन में फैल गयी थी. वह झट-पट उठ तलैया पर गये. क्या देखा कि तलैया छोटी रह गयी है. मछली बड़ी हो गयी है. इतनी बड़ी कि तलैया के अंदर तो बस उसका मुंह था, बाकी धड़ और पूंछ सब बाहर. मछली बोली, "हे प्रभु! तुम्हारी शरण में मैं तैरने और सांस लेने को तरसती हूं."

मनुजी ने मछली को तलैया से निकाला. कमर पर लादा और चले गंगा नदी की ओर. वहां जाकर उन्होंने उसे नदी में छोड़ा और कहा, "हे री मछलिया! मैंने तुझे गंगा मैया की गोद में दिया. मैया की गोद में चाहे सिमट, चाहे फैल." पर वह अभी यह कह ही रहे थे कि मछली फैलने लगी. इतनी फैली कि गंगा की गोद छोटी रह गयी.

मनुजी यह देखकर बोले, "अरी, तू निराली मछली है. फैलती ही जा रही है. जीने का नियम यह है कि जितनी चादर देखे, उतने पांव फैलाये.. पर तेरे लच्छन ये हैं कि जितना जल देखती है, उससे ज्यादा फैल जाती है. अच्छा अब तेरा उपाय यही है कि मैं तुझे सागर की भेंट कर दूं. यह कहकर उन्होंने मछली को गंगा की गोद से लिया और कंधे पर लाद चले सागर की ओर.

सागर की ओर जाते हुए मनुजी को ध्यान की लहर बहाकर अतीत में ले गयी; जब विष्णुजी बौने के रूप में प्रकट हुए थे. उन्होंने उस दुष्ट राजा से तीन डग धरती मांगी थी. उस मूर्ख राजा ने सोचा कि बौने के तीन डगों में कितनी धरती जाती है. उसने मांग मान ली. पर विष्णुजी एकदम बौने से देव बन गए. उन्होंने तीन डग ऐसे भरे कि धरती, आकाश समेट लिए...इस ध्यान ने उन्हें चौंका दिया. एक संदेह के साथ उन्होंने मछली को देखा पर तुरंत ध्यान की एक और लहर आयी. जी में कहा कि उस समय तो धरती राक्षसों के चंगुल में थी, अब विष्णु महाराज ऐसा स्वांग क्यों भरेंगे!

बस, यही सोचते-सोचते मनुजी सागर किनारे पहुंच गये. मछली को सागर में ढकेला और कहा कि अब तू मेरा पिंड छोड़. इस विशाल सागर में जितना मन चाहे, उतना फैल!...उन्होंने कहा ही था कि मछली फैलने लगी. फैलते-फैलते पूरे सागर पर छा गयी.

मनुजी ने एक भय के साथ यह सब देखा. फिर श्रद्धा से उनका सिर झुक गया. दोनों हाथ जोड़कर आंखें मूंद के खड़े हो गये और लगे कहने, "प्रभु शांति! प्रभु शांति!" आवाज आयी, "हे मनु, धरती, अधर्मियों के हाथों अशांत है. फिर भी तुझे शांति मिलेगी. सो, तू नाव बना. जब सागर उमड़े और धरती डूबे तो पशु-पक्षियों में से एक-एक जोड़ा संग ले नाव में बैठ जाना."

मनुजी यह सुन बोले, "हे प्रभु, जब सागर उमड़ेगा तो मेरे हाथों की बनायी हुई बोदी नैया डूबेगी या तैरेगी." आवाज आयी, "हे मनु, तुम उसे मेरी पूंछ के बाल से बांध देना." बोले कि बांधूगा काहे से मेरे पास कोई रस्सी नहीं है. तुरंत एक सांप रस्सी के समान लहरों में लहराया "हे मनु, यह रही रस्सी. इससे नैया बांध लीजियो."

तब जोजा, हजरत नोह के पास पहुंची. इस हाल से कि उसके हाथ ओट में सने और होश उड़े हुए थे. बोली कि ए मेरो वाली, हमारा गर्म तंदूर ठंडा हो गया है और पानी उसकी तह में उबल रहा है. हजरत ने ध्यान किया. फिर बोले,"देख, अब कयामत के जलाल का दिन आन पहुंचा है. तू यों कर कि अपने जनें को इकट्ठा कर और कश्ती में सवार हो जा. इस पर वह जोरू बोली कि मैं तंदूर को तश्त से ढके देती हूं. फिर पानी नहीं उबलेगा. यह कहकर वह दौड़ी हुई अंदर गयी. तश्त उलटा करके तंदूर पर ढका और ऊपर बड़ा-सा पत्थर रख दिया. फिर वह बाहर आकर अपने वाली से बोली कि देख, मेरी तरकीब काम आयी. पानी उबलना बंद हो गया है. वह यह कहती थी कि पानी अंगनाई से निकलकर बाहर उमडने लगा. तश्त और पत्थर उसके बीच तैर रहे थे और उसी क्षण बराबर के घरवाले की बीबी घबरायी हुई आयी और चिल्लायी कि मेरे घर के तंदूर से फव्वारा फूट रहा है. अंगनाई जलथल हो गयी. फिर कई घरों से बीबियां निकलीं. हर एक के लब पर यह खबर थी कि तंदूर उसके घर का गर्म से ठंडा हुआ और पानी उबलने लगा. सैलाब बाहर से उमड़े तो रोका जा सकता है, मगर जब घर के अंदर से फूट पड़े तो क्योंकर उस पर बंद बांधा जाये!

फिर बारिश शुरू हो गयी. ऐसे जैसे आसमान के सब दरीचे खुल गये हों.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब हजरत नोह ने कहा, "बेशक खुदावंद के कहर का दिन आन पहुंचा है." तब हजरत नोह ने अपनी कश्ती निकाली...सब जानवरों के जोड़ों को उसमें बिठाया और बीवी से कहा, "अब यों कर कि अपने जनों को इकट्ठा कर और कश्ती में सवार हो जा."

पर वह बोली, "ऐ मेरे वाली, इस घर में मैंने तेरे संग पांच सौ से उपर बरस खींचे. याद कर कि हम दोनों ने मिलकर इस घर में कितने दुख देखे और मितनो सुख पाए. कितनी बार मैं प्रसूता हुई. दूधों नहायी, पोतों फली. सोच कि में क्योंकर इस घर को छोड़ दूं."

"घर जो कि आदम के बेटों ने बनाये, बोदे हैं, और वाए खराबी मेरी कि मैंने घर बनाया, बीच उन लोगों के जिनके जुल्म से जमीन भर गयी. सो ढहना उस घर का मुकद्दर ठहरा. इससे पहले कि दीवारें भी बैठ जायें और छत नीचे आन पड़े, तू यहां से निकल और कश्ती में बैठ.. आज जमीनों-आसमान के बीच वही एक पनाहगार है."

बीवी ढीठ होकर बोली, "अगर मेरा घर मुझे पनाह नहीं दे सकता, तो फिर मुझे कहां पनाह मिलेगी"

तब हजरत अपने बेटों से मुखातिब हुए और कहा, "ऐ मेरे बेटो, तुम्हारी मां ने तो जमीन पकड़ी है और हलाक होनेवालों में शामिल हो गयी है. तुम बाप की सुनो...और जल्द ही कश्ती में बैठ जाओ कहीं तुम भी नाफरमानों में न शुमार किये जाओ और हलाकत के घेरे में आ जाओ."

यह सुनकर बेटे कश्ती में सवार हुए. सिवा बड़े बेटे कनआन के. उसने मां की राह को अपनाया और बाप से कहा, "मैं क्योंकर घर को, जिस में मेरी नाल गड़ी है, उस मिट्टी से,जिसने मुझे रस और जस दिया है, मुंह मोड़कर उस कश्ती में सवार हो जाऊं, जिसमें तुमने हर रंग का जनावर जमा कर लिया है."

हजरत ने बेटे की बात सुनाकर कहा,"ऐ मेरे बेटे, देख यह कहर का दिन है, सो इंसान और हैवान सब एक कश्ती में सवार हैं, तूफान बेअमान है और जिंदगी की जमानत इस कश्ती के सिवा कहीं नहीं है."

बेटा बोला, "तनहाई की मौत हुजूम के साथ जिंदा रहने से बेहतर है, और घर के अंदर पानी में गर्क हो जाना अच्छा है, बनिस्बत इसके कि आदमी अजनबी पानियों में जानवरों के दरम्यान बसर करें."

फिर यों हुआ कि कौए को कश्ती के अंदर बैठे-बैठे बेकली हुई. उसने पंख फड़फड़ाए और काएं-काएं करता उड़ गया. मगर चक्कर काटने के बाद वापस आ गया. उसकी वापसी ऐलान थी कि अभी कहीं खुश्की नहीं है.

फिर चूहों के जोड़े को बेकली हुई. उन्होंने पूरी कश्ती का चक्कर काटा कि कहीं कोई बिल मिले और वह उसमें लटक जायें, पर उन्होंने कश्ती में कोई बिल न पाया तो उन्होंने कश्ती के पेंदे को कुतरना शुरू कर दिया. कश्ती के जानवरों ने यह देखा. और घबराये कि कश्ती में छेद हो जायेगा, उसमें पानी भर आयेगा और वे गर्क हो जायेंगे! तब उन्होंने फरियाद की. हजरत नोह से और अफसोस किया. हजरत नोह ने कहा "वाए-खराबी मेरी कि मैंने कश्ती में सवार किया चूहों को कि जिनकी आदत ही है, कुतरो और सूराख करो." हजरत ने उन्हें इस फैल से बाज रहने की हिदायत की, मगर वह बाज न आये. तब हजरत ने तंग आकर शेर के मुंह पर हाथ फेरा. और हाथ फेरते ही निकली उसके नथुनों से एक बिल्ली, जो झपटी चूहों पर और चट कर गयी उन्हें दम के दम!

तब कश्ती के सब जानवरों ने खुशी मनायी और बिल्ली को शाबाश दी. फिर यों हुआ कि उसी क्षण कबूतरी जैतून की पत्ती चोंच में दबाये वापस आ पहुंची. वे खुश हुए कि पानी उतरने लगा है और खुश्की नुमुद करने लगी है, मगर फिर उन्होंने देखा कि ज्योंही वह जैतून को पत्ती समेत कश्ती में उतरी त्योंही बिल्ली उस पर झपटी और उसे चट कर गयी. यह क्या हुआ. उन्होंने देखा और हैरान रह गये...साथ में जैतून की पत्ती भी..अजीब बात है.

"अब हम बीच पानियों में है....और कोई यह बतानेवाला नहीं है कि खुश्की कहां है!"

सबने खौफभरी नजरों से एक-दूसरे को देखा. नोह कहां है? तब हातमताई ने जुबान खोली और यह कलाम लब पर लाया, "ऐ हमसफरान, सब्र का दामन हाथ से मत छोड़ो. देखते हो कि परदा-ए-गैब से क्या नुमूदार होता है. मुझे देखो कि मैने भेद भरी नदियों के बीच ऐसी कश्तियों में सफर किया, जिनका कोई खेवैया नहीं था. कान धरकर सुनो कि कोहे-नदा की मुहिम में मुझ पर क्या बीती. हैरान सरगरदां चला जाता था कि एक पहाड़ नजर आया. उसी की तरफ रवाना हुआ. तीन दिन बाद उसके नीचे जा पहुंचा और जिस पत्थर को उठाकर देखा, उसके तले लहू बहता पाया...फिक्र करता था कि कोई यहां नहीं है, जिससे उसका अहवाल पूछूं. फिर क्या देखता हूं कि एक दरिया बड़े जोर-शोर से बह रहा है और उसका ओर-छोर भी नहीं मिलता. दिल में कहा कि या इलाही, अब इसे क्योंकर पार ऊपारूं. इतने में एक नाव नजर आयी जो उधर ही चली आती थी. जाना मैंने कि कोई मल्लाह लिये आता है. जब किनारे आ लगी तो उस पर किसी ने न देखा. हैरान हुआ. फिर खुदा का नाम लेकर सवार हो लिया. क्या देखता हूं कि या एक दस्तख्वान में कुछ लिपटा धरा है. सूखा तो.है ही, फौरन हाथ बढ़ाकर खोला तो दो गर्म-गर्म नान और कबाब, हैरान हुआ कि इलाही, यह गर्म नान किस तंदूर से आये हैं. ध्यान आया कि शायद मल्लाह ने अपने वास्ते रखा हो. पराये का हम खाना खूब नहीं. इतने में एक मछली ने दरिया से सिर निकाल कहा, 'ए हातम, यह रोटियां और कबाब तेरी ही रिजक हैं से खा. कुछ अंदेशा जी नों न ला.' कहकर वो गोता मार गयी. मैं हैरान कि मछली कौन थी!"

"मछली?" सब चौक पड़े. मछली तो उनके ध्यान से उतर ही गयी थी.

"मछली कौन थी? हां, पहले तो प्रजापति चौंक भौचक रह गये थे, पर फिर इसी की मूंछ के बाल से उन्होने नाव को बांधा."

सबने बाहर झांक कर देखा...बाहर चारों ओर घोर अंधेरा और गरजते जल की धारा. मानो सागर उमड़ा था, पर मछली का कहीं अता-पता नहीं था."

"मछली तो कहीं दिखायी नहीं दे रही."

सबने बाहर दूर तक देखा. बस, लहराती रस्सी दिखायी पड़ी. मछली कहीं नहीं थी.

"मित्रो, रस्सी तो सांप-समान नाव के चारों ओर लहरा रही है, पर मछली नहीं है."

"यह तो बहुत चिंता की बात है."

सो, चिंता नें उन्हें आ घेरा और संदेह ने आन पकड़ा. दूर-दूर की बात ध्यान में आयी. पर गुत्थी न खुली. नाव डोल रही थी. और जल की धारा गरज रही थी.

अनुवाद: सुरजीत

चलते-चलते

अठारह अक्षौहिणी माने कितनी? कहीं भी निश्चित संख्या की सूचना नहीं मिलती...उस समय इतनी बड़ी संख्या में सेना एकत्रित हुई, जितनी आर्यों ने पहले कभी नहीं देखी थी. उसमें समस्त आर्यावर्त के राजाओं के भाग लेने का कारण भी क्या था...पारंपरिक महाभारत तो उस युद्ध को धर्मयुद्ध कहता है, परंतु धर्म के विरुद्ध संख्या अधिक थी न! अपनी खुजली मिटाने के लिए युद्ध कर लें...जुआ, युद्ध और स्वयंवर का नाम सुनते ही दौड़कर जानेवाली जाति थी वह...मैं महाभारत के पात्रों की कथा नहीं लिख रहा हूं. मानव के अनुभवों के विविध आयाम, रूप और मानव-संबंधों के रूप और उनका विवेचन कर रहा हूं.

—भैरप्पा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतिम दर्शन

मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार

ज्ञानपीठ-साहित्य-पुरस्कार विजेता कथाकार मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार को आधुनिक कन्नड़ कथा साहित्य का जनक माना जाता है. उनकी पहली कहानी 1910 में प्रकाशित हुई थी और तब से वे निरंतर लिख रहे हैं. यहां प्रस्तुत है उनके लेखन के हीरक जयंती वर्ष (1984) में प्रकाशित मास्तिजी की यह अनन्य रचना जो कृष्ण-अर्जुन संवाद के बहाने बहुत से चिरंतन प्रश्नों का समाधान भी ह. . . कि कृष्ण भगवान का अवतार थ या कि महापुरुष. . . कि उन्हें महापुरुष से 'भगवान' किसने बनाया. . . ?

हस्तिनापुर से द्वारिका तक घोड़े से पंद्रह दिन की यात्रा थी. यह यात्रा समाप्त करके अर्जुन कृष्ण के भवन में पहुंचा. वहां ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो बच्चों को खोकर सारा नगर का नगर ही रो रहा हो. राजभवन के सेवकों ने बताया—"राजमहल में रानियां हैं. कृष्ण, नगर से कुछ दूर के सरोवर के तट पर योग में बैठे हैं." अर्जुन के मन में क्षण भर को यह प्रश्न उठा कि रानी रुक्मणी से बात करके कृष्ण के पास जाया जाय पर तुरंत ही लगा कि यह अनावश्यक है.

कृष्ण सरोवर के तट पर एक बड़े अश्वत्थ वृक्ष के तले किसी विचार में निमग्न सामने के नीले जल को निहार रहे थे.

अर्जुन कृष्ण के पास गया. उनके सामने उन्हीं के द्वारा दिखाए स्थान पर बैठ गया.

कुछ क्षण दोनों में से कोई भी कुछ न बोला. बाद में कृष्ण ने पूछा, "अभी आये क्या ? वहां सब कुशल तो हैं? बड़े भैया कैसे हैं ? यहां का समाचार सुनकर बड़े दुखी हुए होंगे ?"

अर्जुन ने कहा, "उससे भी अधिक तुम्हारी स्थिति सोच-सोचकर वे इतने टूट गये हैं मानो उन्हीं के प्राण चले गये हों."

"बच्चों को खोने का दुख क्या होता है यह भैया जानते हैं, इससे मेरी स्थिति का अनुमान लगाकर उनका टूट जाना स्वाभाविक है, मैं भी टूट गया हूं, भैया. मैंने सोचा इतने बच्चों को खोकर उनके खोने के दुख से आंसू गिराती स्त्रियों को कब तक देखता रहूं. जीवन में ऐसे दुखों से छुटकारा नहीं, यह तो सत्य है. पर दुखों की सीमा होनी चाहिए. मानव में दुख सहने की शक्ति की भी सीमा होती है न. इसके अतिरिक्त और भी एक बात है. अब जी कर करना भी क्या है ?"

"क्या बात है, कृष्ण, तुमने क्या करने का निश्चय किया है?"

"इसमें मेरे निश्चय की कौन-सी बात है. विधि ने किया है."

"मैं यह बात आगे बढ़ाना नहीं चाहता पर उसे समाप्त भी नहीं किया जा सकता. विधि ने क्या निश्चय किया है?"

"इस लोक में कृष्ण का काम समाप्त हो चुका है. इसलिए उसने कृष्ण की जीवन लीला समाप्त करने के लिए जरा को भेज दिया है."

"जरा?"

"हां भैया, जरा अर्थात बुढ़ापा. जरा एक व्याधि है. अन्य कारणों से यदि जीवन समाप्त न हो तो उसे समाप्त करने को सबके पास वह पहुंच जाता है. अब मेरे शरीर में शक्ति नहीं रही. इसकी कथा आज या कल समाप्त हो जाएगी."

"वह समाप्त हो जाएगी या तुम समाप्त कर रहे हो ? ऐसा लगता है उसे समाप्त करने के लिए तुम कुछ कर रहे हो ?"

"मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा भैया. करने को कुछ है भी नहीं. वह अपने आप समाप्त होता जा रहा है."

"क्या मतलब? तो इसका अर्थ यह हुआ कि भैया के मन की आशंका सच होने जा रही है."

"यह बात नहीं, मेरे मित्र, तुम इस घर के दामाद हो, साथ ही मेरे प्रिय बंधु और सखा भी हो. तुम्हारा और तुम्हारे भैया का मेरे बारे में सोचना और तुम्हारा मुझे देखने आना बहुत ही अच्छा हुआ. तुम्हारे आने से तुम्हारे भाई को, तुम्हारी रानियों को, परिवार के अन्य लोगों को मेरा समाचार सीधा मिलना संभव हो सकेगा. मुझे ऐसा लगा था कि अंतिम बार अर्जुन को देख लेता तो अच्छा था. तुम आ गये. तुम आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते तो अच्छा होता, मैंने ऐसा क्यों सोचा? तुमसे अंतिम बार बातें करने की इच्छा थी. इसी से ऐसा लगा."

"तुम यहां ऐसा सोच रहे हो इसीलिए भैया को ऐसा स्वप्न दीखा. सपने में भैया से कहा, 'अब मैं जाता हूं भैया.' वह 'जाता हूं' शब्द उन्हें अमंगलकारी लगा. वे बड़े व्याकुल होकर चिंता में डूब गये हैं."

"इस सरोवर का जल भी इतना साफ नहीं जितना बड़े भैया का मन साफ है. मुझे तो वे अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हैं. मेरे जीवन में जो वैराग्य आ गया उसकी छाया उनके मन पर पड़े बिना रहेगी ? सपने में उन्होंने मुझे देखा होगा और उसी में उन्होंने ऐसा अनुभव किया होगा."

पता नहीं कृष्ण के स्वर में कौन-सा जादू था कि उसकी बात के एक-एक शब्द ने मंत्र के समान अर्जुन को सांत्वना दी.

अर्जुन ने पूछा, "कृष्ण, तुमने पता नहीं कितने लोगों को किस समय समझा-बुझाकर सही मार्ग दिखाया, पर तुम्हारे परिवार के बच्चे गलत मार्ग पर क्यों चले? क्यों तुम उनको सुधार नहीं सके?"

"नहीं कर पाया. गलती हो गयी. मुझे पता था कि वे गलत राह पर जा रहे हैं. एक-दो बार सचेत भी किया. बड़े भैया को भी सचेत किया था. पर एक बात के कारण इनका अनर्थ हो गया."

"कौन-सी बात थी वह?"

"मद्य, भैया. बड़े भैया का भी यही रास्ता था! सबने पीना सीख लिया. मैं ही था जो नहीं पीता था. पर पीना आसान होता है. बिना पीये रहना मुश्किल होता है. छोटों ने बड़े भैया का रास्ता ही पकड़ा."

"तुम अगर बड़े भैया को सचेत करते तो?"

"किस बात के लिए? यह पीना गलत है? यह तो भैया ही कहते थे. अब भी कहते हैं, 'कृष्ण, मेरी राह ठीक नहीं, मुझे मालूम है, पर क्या करूं भैया, यह मेरी कमजोरी है. इस लत ने मुझे जकड़ लिया है.' उन्हें स्वयं ही यह बात पता थी. उसमें मेरे बताने की क्या बात थी?"

"तो तुम्हें भी तब पता न था कि ऐसा अनर्थ हो जाएगा?"

"ऐसा अनर्थ होगा या वैसा अनर्थ होगा यह दीखना संभव नहीं. इतना अवश्य जानता था कि अनर्थ होगा. मैं लत छुड़वा नहीं सका."

"दादाजी ने भगवान् के एक अवतार के रूप में तुम्हारा वर्णन किया है. ऐसे अवतार पुरुष को क्या ऐसा असहाय होना चाहिए?"

"मान लो भगवान का ही अवतार सही; पर संसार को चलाने का संकल्प किसका है? भगवान् का ही! भगवान का अवतार उसे रोक सकता है. अब इस बारे में क्या कहा जाय? तुम्हारे यहां ही कौन-कौन-सा अनर्थ नहीं हुआ? यही अवतार वहां क्यों चुप रह गया?"

"यह कैसी पहेली है?"

"पहेली? हां, पहेली ही है; पर हमारी बनाई हुई पहेली है. दादाजी ने ऐसी और भी बातें कही हैं, तुमने सुनी ही होंगी. ये सब पुराने ऋषियों की बातें हैं. सारी सृष्टि भगवान ही है. भगवान के सिवा कुछ है ही नहीं. इस हिसाब से सब उसी के अवतार हैं. सुर, नर, किन्नर, कृमि-कीट, सब ब्रह्म ही हैं. ब्रह्मा ने सृष्टि का सृजन किया. जब सृजन किया तब उसकी एक स्थिति थी. ब्रह्म ने उसे चलने की प्रेरणा दी. उसी भांति सृष्टि चलती जा रही है. ब्रह्म ने कुछ नियम बनाये. सृष्टि उन नियमों का पालन करती हुई चल रही है. और कुछ किया नहीं जा सकता. उन नियमों के अनुसार सृष्टि कदम भरती जा रही है. अब कदम भी बदल नहीं सकते."

"भैया ने कहा था, 'दादाजी ने बताया है कि तुम यही बात कहोगे.' तुम इस तरह के दस-बीस सूत्र बनाते हो; दादाजी यह सब जानते हैं. युद्ध-भूमि में मैंने यह कहा था कि मेरा युद्ध करने का मन नहीं. तब तुम्हीं ने समझाया था कि युद्ध के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं. तुम्हें पता है कि दादाजी ने उसी बात को लेकर और कुछ थोड़ी-सी बातें उसमें जोड़कर एक स्मृति की रचना की है?"

"नहीं. पर वे ऋषि हैं, ऐसा कर सकते हैं. कृष्णव्यास एक महाज्ञानी हैं. एक युग में ऐसा महाज्ञानी मुश्किल से एक ही जन्म लेता है, दूसरा नहीं. लोक का संचालन करनेवाले धर्म को जानना चाहिए. उसे लिखकर रखना चाहिए. यह उनके जन्म का कर्तव्य है. ऐसा वे जानते हैं. इसीलिए वे ऐसा कर रहे हैं. उन्होंने तुम्हारे वंश की कहानी लिखकर उसमें इस धर्म का स्वरूप दिखाया है. तुम्हें यह पता है?"

"नहीं."

"जब कुछ दिन पूर्व मैं तुम्हारे यहां आया था, तब वे भी आये थे. तभी उन्होंने यह बात बताई थी."

"तो उसमें उन्होंने तुम्हारी बात तो कई बार कही होगी."

"हां कही होगी. मेरा वर्णन एक अवतार पुरुष के रूप में ही किया होगा. मैं तुम लोगों का घनिष्ठ मित्र हूं. उसी बात को लेकर उस पुस्तक में मेरा 'केवल एक मनुष्य ही नहीं हूं.' ऐसा वर्णन किया गया है."

"मनुष्य नहीं तो क्या हो?"

"उस हिसाब से या तो मैं राक्षस हूं और या भगवान्! राक्षस मैं हूं नहीं, तो भगवान ही हुआ."

"उन्होंने ऐसा कहा है कृष्ण! मैं तो उसे स्वीकार करता हूं. हमारे परिवार के लिए तो तुम भगवान ही सिद्ध हुए, कृष्ण."

"तुम्हारे लिए यह बात गलत नहीं होगी. अर्जुन, परंतु दादाजी ने कह दिया, और पोते ने स्वीकार कर लिया यह सोचकर यदि मैं भी हां कहूं तो गलत होगा. भैया, भगवान क्या होता है? सृष्टि का सृजनकर्त्ता! सृष्टि में भी प्रत्येक को अपने-अपने स्थान पर रखनेवाला तत्व! सबको सही मार्ग पर चलानेवाला तत्व यानी सुर-असुर दोनों का राजा. इन दोनों को सही चलानेवाला तत्व. यहां बैठा मैं भला भगवान कैसे हो सकता हूं. क्या यह संभव है? सबको चलानेवाला भगवान है वह सब में अंतर्यामी है. ऐसा होते हुए भी वह पृथक भी है. भगवान का स्थान लेना संभव भी नहीं. पूछो तो क्यों? इसका भी अपना एक खेल है. यह खेल चलता रहना चाहिए. सबको चलानेवाला बनकर स्वयं उसमें भाग लेना यह केवल भगवान के लिए ही संभव है, मेरे लिए नहीं. यह पहेली अवतारों की कल्पना में मिल गयी है. मनुष्य की बुद्धि में इसे समझने की शक्ति नहीं. भगवान एक ही होता है. मन को ऐसा लग सकता है कि वह अलग-अलग होकर करोड़ों रूपों में रहता है. परंतु उसे विस्तार से समझना संभव नहीं."

इसके बाद दोनों ने थोड़ा आराम किया, फिर बातें शुरू कीं.

अर्जुन : "दादाजी ने हमारे वंश का एक इतिहास लिखा है. साथ ही उन्होंने अपने शिष्यों को यह आज्ञा दी है कि उसमें तुम्हारी महिमा जोड़कर एक बड़ा ग्रंथ बनाएं."

कृष्ण : "मुझे अवतार कहने के बाद महर्षि ने अवतार-पुरुष की महिमा व्यक्त करनेवाली कहानियां संकलित करने का विचार किया होगा. हमारे लोगों ने मेरे बारे में बहुत कहानियां बताकर मुझे बड़ा आदमी बना दिया. महर्षि के शिष्यों के लिए यह सब अच्छी सामग्री है. परंतु मेरे बारे में प्रचलित इन सब कहानियों को सही मानना गलत है. कुछ बहुत-सी बातें हुई ही नहीं पर उनकी कहानियां बन गयी हैं. कुछ हुई बातों को बढ़ा-चढ़ाकर कहानियां बनाई गयी हैं. कुछ कहानियों का रूप विकृत हो गया है. ऐसी भी कुछ कहानियां प्रचलित हो चुकी हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि जनता की रक्षा के लिए हमारा राजा कुछ भी करने को तैयार रहता है. इनमें कुछ कहानियां उसे अयोग्य भी सिद्ध करती हैं. 'ऐसा हो जाएगा.' यह सोचकर भी लोग उन कहानियों को कहना बंद नहीं करते. जिस प्रकार दादाजी मुझे अवतार पुरुष कहते हैं उसी प्रकार पुराने लोगों ने अयोध्या के राम और उससे भी पुराने जमदग्नि राम को अवतारपुरुष कहा. पुराने उन दोनों रामों ने जो साहस के कार्य किये उनमें दो कार्य अपनी ओर से जोड़कर लोगों ने उन्हें महापुरुष बना दिया. इन महर्षि और उनके शिष्यों के द्वारा मेरी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति होगी. वे दोनों राम वास्तव में महान पुरुष थे. उनकी पूजा करना सही है. चार सही बातों के साथ अपनी पसंद की चार बातें जोड़ना सही नहीं होता. यह बात सभी को स्वीकार करनी चाहिए. पर हमारे और तुम्हारे कह देने पर ही लोग नहीं मानेंगे. वे कहेंगे, हम जिनकी पूजा करते हैं, उनकी प्रशंसा की कथाएं सुनने में अच्छी लगती हैं. वे सच नहीं हैं, ऐसा कहकर हम उन्हें क्यों खो दें. जनता का मन बच्चों की तरह का होता है. कोई भी अद्भुत बात सुनाने पर बच्चा उसे मान लेता है, विश्वास कर लेता है. हमारी गोकुल की जनता का मन भी ऐसा ही सरल है. ऐसे मन वाले लोगों को सब कल्पित कथाएं भी सच प्रतीत होती हैं."

"तो हमें क्या करना चाहिए?"

"जब ऐसी कथाएं भक्त लोग सुनाते हैं तब चार आदमियों को इकट्ठा करके यह कहना होगा कि यह सही नहीं है. दादाजी अपने शिष्यों द्वारा जैसी कथाएं संकलित कर रहे हैं, उन्हें झूठा सिद्ध करने के लिए क्या तुम एक शिष्य मंडली तैयार कर सकोगे?" यह कहकर कृष्ण हंस पड़ा. अर्जुन भी हंस दिया.

कृष्ण ने कहा, "अब तुम नगर जाओ, सबसे बात करके जो ठीक समझ में आये, करना. अपनी भाभी से हमारे बिछुड़ने की बात भी उठाना. तब पता चल जाएगा कि वह कैसी स्त्री है और कैसी पत्नी है."

उस बात के अनुसार अर्जुन नगर में आ गया. रुक्मणी देवी से मिला. उसके मुख से यह उद्गार निकला, "बच्चों के खो देने के दुख में ही पति से बिछुड़ने का प्रसंग भी आ गया न! ऐसे में मुझे आप से मिलने का साहस नहीं हो रहा था. पर भैया ने आपसे मिलकर जाने को कहा. इसलिए बहुत साहस करके आया हूं."

देवी बोलीं, "हमसे मिलने के बारे में आपका संकोच ठीक है और आपके भैया का हमसे मिलने के लिए कहना भी सही है. आपके भैया की पत्नी होने के नाते मुझे भी उनके ज्ञान का थोड़ा-सा अंश मिला है. बच्चे चले गये हैं, कोई पास नहीं है. पति ने भी जाने का निश्चय कर लिया है. वे सामने नहीं रहेंगे. उनका कहना है कि सामने न रहने की इस बात को बड़ा करने की आवश्यकता नहीं. देह सामने नहीं रहती यह कह देने से अपना प्रिय नहीं रहेगा क्या? देह छोड़ने पर भी वे मुझे अकेली छोड़कर नहीं जाएंगे. साथ ही रहेंगे."

इधर-उधर की दो बातें करके कृष्ण की अन्य पत्नियों और नगर के प्रमुख से मिलने के बाद अर्जुन बलराम से मिलने के लिए गया. बलराम बच्चों के मर जाने के शोक और कृष्ण की अनुपस्थिति के दुःख से और भी अधिक सुरापान में डूबा था. उसने अर्जुन को कभी पसंद नहीं किया था. उसके मन में यह बात बैठी थी कि यह हमारी लड़की को फुसलाकर भगा ले गया. वह बहुत बड़ा धनुर्धारी हो सकता है पर अच्छा आदमी नहीं. इस उपेक्षा के अतिरिक्त मद्य का नशा भी था. उसने केवल औपचारिकता के नाते पूछा, "कुशल तो हो? वहां सब सकुशल हैं न?"

अर्जुन ने कहा, "आप के आशीर्वाद से सब कुशल हैं."

अतिथि भवन में रात बिताकर प्रातः अर्जुन कृष्ण के पास गया. तब कृष्ण ने पूछा, "सबसे मिलकर बात करके आये हो क्या?" अर्जुन ने बताया कि वास्तव में भाभी को समझाने योग्य कोई बात ही नहीं थी. श्री कृष्ण ने कहा, "यह तुम्हें पता लग जाय इसलिए उनके पास भेजा था. यह बात तुम पर भी लागू होती है. मैं नहीं रहूंगा अर्थात् मेरी देह नहीं रहेगी. फिर भी मैं समाप्त नहीं होऊंगा, कहीं भी नहीं जाऊंगा. मैं सदा तुम्हारे साथ हूं. इसी विश्वास से रहो. तब तुम्हें कोई चिंता न रहेगी."

"हां, कृष्ण! यह बात तुमने मुझसे युद्ध के दिन भी कही थी. मिटती तो देह है, हम नहीं. यह कितना सहज सत्य है परंतु हाथ में पकड़े पारे के समान यह बात फिसल जाती है. यह चिपककर रहनेवाला सत्य नहीं. प्रिय लगनेवाला भी नहीं. तुम ज्ञानी हो. तुम हम साधारण लोगों से अपने जैसे ज्ञान की अपेक्षा मत करना. दुर्बलता हमारा जन्मजात गुण है." बातों के बीच में बलराम की बात भी आयी...

"उन्होंने कुछ भी नहीं कहा. यह स्पष्ट व्यक्त हो रहा था कि वे मुझे पसंद नहीं करते हैं. पर कोई कड़वी बात उनके मुंह से नहीं निकली."

"भैया का मन बड़ा उदार है. उन्हें जब अच्छी बात कहनी होती है तभी बोलते हैं. बुरी बात कहकर मुंह गंदा नहीं करते. ऐसे अवसरों पर वे मौन धारण कर लेते हैं. यही उनका ढंग है."

"बाहर से न दीखने पर भी लगता है कि वे उदार स्वभाव के हैं."

"यदि उदार न होते तो क्या वे मुझे अपने छोटे भाई के रूप में सहन करते, अर्जुन? वे गोकुल के राजा हैं. वे ही उसके अधिकारी हैं. वे उसी वंश के हैं. मैं तो उनके बंधु वंश में पैदा हुआ था. उन के घराने में एक पालित पुत्र हूं. रिश्ते से मैं उनका भाई हूं. हम दोनों में काफी अंतर भी

पौराणिक आख्यान पर ही उपन्यास क्यों?

▣ वि. स. खांडेकर

प्रकाशन से पूर्व ही 'ययाति' का विज्ञापन पढ़कर कई लोगों को बेचैनी हुई थी. शायद उन्हें लगता होगा कि विगत बीस वर्षों में दुनिया में अनेक अौचित्य घटनाएं हो गयी हैं. आज भी ऐसी घटनाएं हो रही हैं जिनके आगे पुराणों के चमत्कार भी फीके पड़ जाते हैं. स्वयं हमारे देश में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं. समाज-पुरुष भीतर और बाहर पैर के नाखून से लेकर सिर तक बदल रहा है. आज हमारे सामने ऐसी अनेक नयी सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक समस्याएं अचानक आकर उपस्थित हो गयी हैं कि उनके आगे कल-परसों के ज्वलंत प्रश्न हमें गुणा-भाग के सवालों की तरह अत्यंत सरल मालूम होते हैं. ऐसे समय आज का उपन्यास-कार अपनी कथा-वस्तु के लिए यदि पुराणों की शरण जाये तो क्या यह उसका वैचारिक पलायन नहीं है ? क्या वह यह स्वीकार नहीं कर लेता कि वह स्वयं अब पुराण-पुरुष हो गया है ?

इन प्रश्नकर्ताओं का पुराणों से इतना ही संबंध होता है कि बहुधा बचपन में उन्होंने 'बाल-रामायण' और 'बाल-महाभारत' इत्यादि पुस्तकें पढ़ी हुई होती हैं और उन पुस्तकों के द्वारा ही उन्होंने पुराण की कथाओं का विशाल आकाश देख लिया होता है, परंतु उस आकाश को उन्होंने देखा होता है आंगन में बने पानी के हौज में पड़े हुए उसके प्रतिबिंब के रूप में ! और वह भी दिन में ! आकाश के निरभ्र रहते समय ! वर्षा का काले-काले बादलों से भरा हुआ और किसी चिंताग्रस्त वृद्ध की तरह लगनेवाला उदात्त आकाश, दूध पीकर संतुष्ट हुए बालक की तरह दिखनेवाला शरद की पूर्णिमा का प्रसन्न-मुख आकाश, अलंकारों से सजी हुई और उन्हें अपने विभ्रमों से सजा देने वाली नववधू की तरह लगनेवाला जाड़े की अमावस्या का तारों भरा आकाश—उन बेचारों की आंखों ने इनमें का एक भी आकाश देखा नहीं होता ! फिर आंख भरकर उसका दर्शन करना तो दूर ही रहा ! इसी कारण ऐसे लोगों को पौराणिक कथाएं व्यर्थ की बातें प्रतीत होती हैं. परंतु सचमुच हमारी पौराणिक कथाएं साहित्यकार की दृष्टि से सोने की खाने हैं, यूनान की पौराणिक कथाओं ने सोफोक्लीज से लेकर यूजिन ओलीन तक अनेक कलाकारों की प्रतिभाओं को चुनौती दी है और नव-सृजन के लिए मानवी भावनाओं और वासनाओं के संघर्षों से सराबोर साहित्य उन्हें दिया है. भारतीय पौराणिक कथाओं में भी यह सामर्थ्य निस्संदेह है.

यह मेरा आजकल का मत नहीं. मेरी कहानियों और निबंधों में स्थान-स्थान पर जो अनेक पौराणिक संदर्भ आये हैं, उनसे भी इन कथाओं के प्रति मेरा प्रेम सहज ध्यान में आ सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. ध्यान से देखा जाय तो मैं बंधु भी नहीं हूं. लेकिन इस भाई ने मुझे अपने सगे भाई की तरह रखा. मेरे अपने स्वभाव के कारण या उनसे थोड़ा ज्यादा समझदार होने के कारण लोगों ने मुझे जरा ज्यादा ही प्यार दिया पर इन्होंने इस बात का बुरा नहीं माना. हम दोनों एक साथ बढ़े, इस कारण हम दोनों का अंतर भी दीखने लगा. पर क्या उन्होंने इसका बुरा माना? कदापि नहीं. पर हर बात में वे यही कहते आये हैं, 'जाकर मेरे भाई कृष्ण से पूछ लो. हममें उसके समान समझदार कोई नहीं है.' मुझे हर बात में आगे करके बड़ा बनाकर स्वयं पीछे रहे और सदा प्रसन्न रहे. इतना बड़प्पन कहां मिलेगा, अर्जुन! इतना तो केवल मेरे भाई बलराम में ही मिलेगा या इसका दूसरा उदाहरण तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर हैं. अपने छोटे भाइयों को बड़ा बनाकर उन्हें आगे करनेवाले भाई संसार में अधिक नहीं. वे आज भी वैसे ही हैं, 'जब तुम अपने इस शरीर को छोड़ दोगे, तभी मैं भी अपने प्राण छोड़ दूंगा'—उनका यही हठ है. लगता है वे ऐसा ही करेंगे. भगवान का इतना अनुग्रह उन पर है."

"तो यह बात है. कृष्ण, मैंने नगर के प्रमुखों से बात की. उन्होंने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की. सुनने में वे सब बातें बड़ी अच्छी लगीं. उनकी बातों का सार यह था कि तुमने अपने बचपन में बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये. गोकुल के लोगों की जुबान पर आज भी ये बातें हैं. उन्होंने भी वही सब कुछ सुनाया. यह भी बताया कि एक वर्ष पूर्व महर्षि के शिष्य उनकी ओर से गोकुल गये थे और ये कथाएं संग्रहीत करके ले गये थे."

"हां, सुना है. मैंने तुम्हें कहा था कि लोग ऐसी बातें करते हैं. उस स्त्री के मरने की बात मुझे याद नहीं. मेरे उसके स्तन पर मुंह रखते ही वह मर गयी. यह सही नहीं. उसकी आयु समाप्त हो गयी थी. अतः वह मर गयी. यह तो काकतालीय न्याय जैसी है. हमारे लोगों के लिए आंधी भी राक्षस है. ढलान पर फिसलती गाड़ी भी एक राक्षस है. एक सांप, एक सांड कुछ ऐसी ही बातें हैं. मेरा मामा बुरा आदमी था. इस कारण मुझे बड़ा आदमी बनने का अवसर मिल गया. वह पिता को कारागृह में बंदी बनाकर आप राजा बन बैठा. ज्योतिषियों की बात पर विश्वास करके उसने मेरे माता-पिता को भी बंदी बना लिया. जन्म देनेवाली मां के सामने ही बच्चे को जान से मार डालने की धमकी दी. नानाजी साधु स्वभाव के थे. उसने कहना शुरू किया कि उनमें राज्य करने की शक्ति नहीं. मैं राज्य चलाऊंगा. मेरे पिता उससे बड़े थे. मेरी मां उसकी बड़ी बहिन थी. बड़े होने के नाते मेरे पिता ने उसे समझाने का प्रयास किया. इस कारण उन्हें कारागार में डाल दिया. 'यह बच्चे को मार डालेगा.' इस डर से मेरे पिता ने मेरा जन्म होते ही मुझे अपने निकट के बंधु नंदजी के घर पहुंचा दिया. मुझे मां यशोदा की गोद में डाल दिया. भाई इस प्रतीक्षा में था कि गर्भवती बहिन के यहां बच्चा पैदा होगा पर बच्चा पैदा हो जाने की बात उसे पता ही न चली. 'गर्भवती होने की बात गलत थी.' कहकर मेरे माता-पिता बच गये. भांजे को मार डालने के मामा ने बहुत से प्रयत्न किये. इस बारे में बहुत-सी कहानियां बन गयी हैं. मैं वही भांजा हूं. क्या उसे पता था कि मैं नंद के पास गोकुल में बढ़ रहा हूं? मैं बड़ा हुआ. मैंने सोचा यह दुष्ट मेरा मामा नहीं हो सकता. वह अपने पिता को गद्दी से उतारकर स्वयं राजा बन बैठा है. बहिन और बहनोई को बंदी बनाकर इतरा रहा है. मैंने सोचा, इसे ठीक करना चाहिए. मैंने बड़ा होते ही उसे जान से मार डाला और नाना को फिर से गद्दी पर बिठाया. माता-पिता को बंदी-गृह से स्वतंत्र किया. सारे देश ने मेरी प्रशंसा की. मुझे यश मिला. जनता के प्रेम ने इसे एक महान इतिहास ही बना डाला. मामा का अपना ही एक दल बन गया और मेरे पालने वाले पिता का दूसरा दल. मामा के दल का कहना था, 'हम राज्य करने वाले क्षत्रिय हैं. तुम लोग गाय चरानेवाले ग्वाले हो. हमारी तुम्हारी क्या बराबरी?' मेरे पालक पिता के दल का अपमान भी किया गया. उन्होंने कहा कि 'हम राज्य करनेवाले हैं. हमारी बेटी रुक्मणी का विवाह गाय चराने वाले कृष्ण के साथ नहीं हो सकता.' मैंने कहा, 'यह सही है कि आप क्षत्रिय हैं, राज्य संचालन करते हैं, पर कैसा राज्य संचालन कर रहे हैं? गरीबों की रक्षा करते हैं? तुममें कोई बड़प्पन है क्या? अपने को बड़ा कहने का अहंकार ही सबसे बड़ा गुण है. अपने आपको बड़ा कहनेवाला बड़ा आदमी कैसे हो जायेगा? वह गलत रास्ते पर चलेगा. नीच बनेगा. आपका दल ही नीचों का दल है. तुम लोगों को तुम्हारी गद्दी से उतार दूंगा.' यह कहकर मैंने उन्हें अपना शत्रु बना लिया.

"उन्होंने मुझे तंग किया. जब तक बन पड़ा और जहां तक बन पड़ा मैंने उनसे युद्ध किया. उस युद्ध में पता नहीं कितने लोग मारे गये. तब मुझे लगा कि अपनी प्रतिष्ठा के लिए आगे और लोगों को मरने नहीं देना चाहिए. मैंने गोकुल और मथुरा ही छोड़ दिया और यहां चला आया. यहां आने पर जरा शांति मिली. इस बीच अपने को क्षत्रिय कहने वाले आप लोगों में युद्ध ठन गया. आपका पक्ष न्याय का पक्ष था. आप मेरी बुआ के बेटे थे. आपको संकट में डालनेवाले दुर्योधन का अहंकार तोड़ने के लिए मैंने आप लोगों की सहायता की. मुझसे जो बन पड़ा वह मैंने किया. फिर से रक्तपात रोकने का मैंने पूरा प्रयास किया. मेरा शांति पाठ आप लोगों की जाति की दुर्बुद्धि के सामने व्यर्थ रहा. फिर से रक्तपात हुआ. मैं अपने हाथों रक्त बहाना नहीं चाहता था, इस कारण तुम्हारा रथ चलाकर तुम्हारी सहायता की. बस भाई, मेरी इतनी ही कहानी है."

"कृष्ण, तुम्हारे पास बैठकर तुम्हारी बातें सुनें तो लगता है कि तुम साधारण मनुष्यों के समान मनुष्य नहीं, भगवान ही हो."

"वह तुम्हारा प्रेम है, अर्जुन! जब भैया ने सुभद्रा को दुर्योधन को देने की बात सोची तो मैंने सोचा अपने घर की बेटी उस घमंडी के घर में नहीं देनी चाहिए. सात्विक घराने में देनी चाहिए. लड़की ने भी तुम्हें पसंद किया. यह अच्छा ही हुआ, यह सोचकर मैंने उसकी इच्छा पूरी होने में सहायता दी. भैया को क्रोध आ गया. उन्होंने कड़वी बातें कहीं. शायद उन्हीं का फल होगा कि सुभद्रा अपना पुत्र खो बैठी. इसे मैं विधि का विधान मानकर दुखी हुआ. यह सब हो गया. अब तो यह इतिहास हो गया. मेरे लिए तो अब यह इतिहास ही समाप्त हो रहा है."

अर्जुन का शीघ्र ही देश लौटने का निश्चय हो चुका था. सेवक उसके घोड़े लाये. उसके चलने से पूर्व श्री कृष्ण ने उससे कहा, "मैं कह नहीं सकता कि तुम्हारे अपने नगर पहुंचने तक मैं रहूंगा या नहीं. पूर्व निश्चय के अनुसार तुम प्रयाण के लिए निकल पड़ो. बीच में कोई बात हो गयी तो यहां के लोग तुम्हें समाचार देंगे. उस समय बीच प्रयाण में हो तो लौट आना. यहां के कार्य संपन्न करने में सहायता करना."

"अच्छी बात है," कहकर अर्जुन घोड़े पर सवार हो गया. तब कृष्ण ने कहा, "तुम और मैं एक प्राण दो देह के समान हैं, अर्जुन! जब मैं देह छोड़ूंगा तो समझना तुम्हारे ही प्राणों का आधा भाग निकल गया. मेरे इहलोक छोड़ते ही यह बात तुम अनुभव कर लोगे."

अर्जुन की दो दिन की यात्रा पूरी हो गयी थी. तीसरे पड़ाव पर प्रातः जब उठा तो अकारण ही उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे शरीर में जान ही नहीं है. उसे प्राण निकल जाने जैसी यातना अनुभव हुई. पर क्षण में वह यातना जाती रही. उसे चलते समय कृष्ण की कही अंतिम बात याद आयी. वह वहीं से द्वारका लौट पड़ा. आधे रास्ते में ही उसी को समाचार देने आता हरकारा मिला. उसे हस्तिनापुर भेजकर वह द्वारका पहुंचा.

कृष्ण देह छोड़ चुके थे. पता नहीं वह कौन-सी शक्ति थी कि उसके कुछ ही देर बाद बलराम ने भी अपनी देह छोड़ दी थी. अर्जुन ने रुक्मणी देवी से आज्ञा लेकर उनसे सारे अंतिम संस्कार कराये. उसके बाद देवी से पुनः आज्ञा लेकर हस्तिनापुर लौट पड़े.

सारा दिन सोचने के बाद युधिष्ठिर ने कहा, "हमारा भगवान हमें छोड़कर चला गया है. अब हमारे लिए यह जीना काफी हो गया है." उसके बाद सब भाइयों ने परीक्षित का राज्याभिषेक करके, उसकी देख-रेख के लिए सुभद्रा को छोड़कर द्रोपदी सहित महाप्रस्थान किया. □

संक्षिप्त रूपांतर : [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथहास का नया दर्शन

अमृता प्रीतम

कहानियां कब और कैसे प्रतीक धारण करती हैं या वे किस तरह के चमत्कार होते हैं, जिन्हें कहने के लिए पात्र घड़ लिये जाते हैं, यह सब कुछ पकड़ में नहीं आता, पर हमारा इतिहास इस तरह की प्रतीकात्मक कथाओं से भरा हुआ है. मिथहास और इतिहास के ऐसे ही अनन्य संयोगों से उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन करने वाली प्रख्यात पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम समझा रही हैं मिथहास का नया दर्शन—

मैं एक कहानी लिखना चाहती थी, उस अकेली औरत की कहानी, जिसने एक कालेज की प्रधानाचार्य होने के नाते सारी जिंदगी किताबों की दुनिया में गुजार दी है, पर उसने मेरी दोस्ती को कोई भी व्यक्तिगत सवाल-पूछने का अधिकार नहीं दिया. सिर्फ कभी पिघले हुए पलों में बस इतना-सा बताया था—'जिंदगी में मोहब्बत के दो-चार पल आये भी तो क्या. . !' और ऐसे वाक्यों के बाद हमेशा एक चुप फैल जाती थी—एक वीरानगी की तरह. . . अचानक इस चुप के वीराने में एक दिन मुझे महसूस हुआ —जैसे वह औरत एक ति-मंजिला इमारत है, जिसके खंडहर बोलते हैं कि उसकी पहली मंजिल जरूर किसी की मुलाकात से आबाद हुई होगी. . .

सहज ही एक कहानी कागज पर उतरने लगी, जिसमें मैं पहली मंजिल का वर्णन करने लगी तो दो साये-से नजर आने लगे. मैंने लिखा—

"हवा कुछ तीखी बहने लगी. शायद इसलिए कि हवा में तुम्हारी सांस घुली हुई थी! तभी हवा की छाती में खड़े वृक्षों के पत्ते धड़कने लगे! मैं मांस और मज्जा की एक इमारत थी, पर तुम्हें सामने राह से गुजरते देखा तो जैसे अपने ही बदन से बाहर आ गयी. . . देखा कि बाहर तुम्हारे पांव मानो राह से बातें कर रहे हों! तुमने मालूम नहीं क्या कहा कि राह की मिट्टी का रंग गुलाबी-सा हो गया. और फिर जब अगली बार तुम उस राह से गुजरे तो एक वृक्ष के तले पलभर खड़े हो गये थे. बाद में उस वृक्ष ने मुझे बताया कि उस दिन उसकी टहनियों में बौर पड़ गया था. . . और फिर एक दिन बहुत तपती दोपहर थी, जब तुम उस राह से गुजरे तो मेरे द्वार के समक्ष, सदियों से प्यासे की तरह इस तरह थम गये मानो तुम उस द्वार से किसी कुएं-बावड़ी का पता पूछ रहे हो! . . . मैं एक इमारत थी और इमारत के अंदर पानी का मटका था. तुम जब भी कभी उस राह से गुजरते, तुम्हें प्यास लगती और तुम पानी का घूंट पीकर चले जाते! . . . बाद में मुझे लगता कि मेरा गला भी शुष्क हो गया है और एक प्यास मेरे होंठों पर सिसकने लगती. . ."

वह औरत एक व्यक्ति के रूप में मेरे सामने आयी तो मेरी नजर में उस इमारत की निचली मंजिल उस धरती जैसी हो गयी, जो कभी मोहब्बत का मौसम आने पर हरिया उठी थी! . . और उस इमारत की दूसरी मंजिल उसी हरियावल की दूसरी मंजिल बन गयी, जहां तन-मन में फूल खिलते थे. . .

मेरी कहानी कुछ इस तरह आगे बढ़ी—

'तुम आये और एक दिन पानी का घूंट पीने के बाद दूसरी मंजिल की सीढ़ियों की तरफ देखने लगे. . . यह शायद तन की प्यास का संकेत था. . . और उपरली सीढ़ी पर पांव रखते हुए जब तुमने दीवार पर हाथ रखा तो मुझे लगा, एक कंपकंपी मेरी कांछ में से गुजर गयी है. . .'

यह कहानी एक औरत की थी, जिसने एक इमारत का प्रारूप धारण कर लिया था. इसलिए इमारत की दीवार औरत का कंधा भी हो सकती थी, उसकी बांह या हाथ भी. . .

बात इमारत की थी, जहां एक घर का चूल्हा जल रहा था. . . उस चूल्हे में जलती आग, शरीर में बढ़ती तपन का प्रतीक बन गयी, जिसकी लपट का सुर्ख साया उस आनेवाले की आंखों में चमकने लगा.

उस समय उस औरत और उस मर्द में कुछ संकोच, कुछ झिझक, कुछ घबराहट भी नुमाया रही होगी, उसी का बयान कहानी में नुमाया हुआ—

चूल्हे पर पकनेवाली गर्म रोटी, उस औरत और उस मर्द के तन की भूख की प्रतीक हो गयी, जिसका एक कौर तोड़कर खाते हुए दोनों के बदन में एक कंपन-सी दौड़ गयी. . .

पर बदन में छिपी हुई कंपन को निगाहों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़ना आसान नहीं, इसलिए एक बदन, दूसरे बदन को आलिंगन में लेते हुए मानो अपनी-अपनी कंपन को छिपाने भी लगा और दूसरे की कंपन को खोजने भी लगा.

'. . . और जब तुम चले गये, मैंने अपनी उम्र का बीसवां साल अपने जिस्म से उतारकर तहखाने में रख दिया!'

कहानी और आगे बढ़ी, तीसरी मंजिल की तरफ, जिसमें उस औरत के जीवन के वे वर्ष थे, जबकि उसका अध्ययन समृद्ध होता गया था. डिग्रियां बढ़ती गयी थीं. . . और रोटी-रोजी के संघर्ष के साथ-साथ जीवन की खामोशी भी. उस समय को कहानी में मेरी कलम ने इस प्रकार कलमबद्ध किया—

'तुम एक दिन फिर आये, बहुत अरसे बाद. उस दिन तुम्हारे पांवों में पहली मंजिलवाला संकोच नहीं था, न दूसरी मंजिलवाली झिझक, तुम सीधे तीसरी मंजिल पर आ गये, जहां मेरी प्रतीक्षा के दिनों जैसी बंद, ठंडी और खामोश किताबें रखी थीं. . . तुम कितनी ही देर चुप खड़े रहे मानों सैकड़ों किताबों में एक और किताब बढ़ गयी हो. . .'

कहानी में उस मर्द के आगमन का, दो मंजिलों से गुजरकर कुछ निःसंकोच हो जाने के बावजूद तीसरी पर पहुंचकर खामोश किताबों में पड़ी एक किताब हो जाना, मेरी नजर में एक ऐसी मुलाकात थी, जिसका वर्त्तमान तो था, लेकिन भविष्य नहीं.

भविष्य नहीं था, यह भी एक सच था, पर वर्त्तमान था, यह भी एक सच था. . . और वर्त्तमान के उस सच को पकड़ने के जतन में कहानी इन शब्दों में ढल गयी—

'मैंने कुछ आगे बढ़कर तुम्हारे हाथ को इस तरह छुआ, जैसे हौले-से एक किताब की जिल्द पलटकर उसका पहला सफा देखना हो. . . तुम धीमे-से हंस दिये मानो उस किताब की इबारत तुमने होंठों में भर ली हो! और तुमने मेरे होंठों को इस तरह छुआ जैसे मेरे होंठों में भरी हुई इबारत को पढ़ना चाह रहे हो!. . .'

उस समय मांस की दीवार औरत के जिस्म से भी उतर जाती है और मर्द के जिस्म से भी!. . . और वर्त्तमान का पलभर का सच उनके उस वसल में नुमाया होता है, जब वे दो नदियों के पानी की तरह मिलते हैं और उनके एहसास उस पानी में हंसों की भांति तैरते हैं. . .

लम्हों के हुस्न में डूबने-तैरने के बाद मेरी कहानी जीवन के उस यथार्थ की तरफ मुड़ गयी, जिसे मैंने उस औरत की जिंदगी में देखा था. . . और मैंने लिखा—

'नदियां जब सूख जाती हैं, फिर से मिट्टी हो जाती हैं. तुम पास होते थे तो मैं नदी हो जाती थी, तुम चले जाते थे तो मैं फिर से मिट्टी हो जाती थी—मांस-मिट्टी की औरत!'

मिथहास (मिथक) और इतिहास

▣ लालबहादुर वर्मा

अति प्राचीन काल में, जब इतिहास लेखन शुरू नहीं हुआ था, मनुष्य मिथकों और गाथाओं के माध्यम से अपने अतीत की कथा-स्मृति को यथासंभव सुरक्षित रखता था, लेकिन उस समय यथार्थ और कल्पना इतने घुल-मिल जाते थे कि एक-दूसरे को अलग कर पाना संभव नहीं था. यद्यपि कॉलिंगवुड का विचार है कि मध्यपूर्व की प्राचीन सभ्यताओं में एक प्रकार के धार्मिक इतिहास के बीज मिलते हैं. वास्तव में इतिहास की शुरुआत हमें यूनान के 'हेरोदोतस' से मानना चाहिए, पर हेरोदोतस और थूसीदीदस भी गाथाओं और मिथकों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके थे, लेकिन उन्होंने अपने इतिहास में मनुष्य के कार्यों को देश-काल में स्थित करना शुरू किया और इतिहास लेखन का प्रारंभिक दौर शुरू हुआ. यदि रूसी विचारक वरदिएफ की तरह कोई (विचारक) इतिहास को मिथक की संज्ञा दे दे तो भारत में प्राचीनकाल से ही इतिहास उपलब्ध होने लगेंगे. □

पर किसी बदन में से हसीन लम्हों का गुजर जाना, एक कयामत का गुजर जाना होता है, जिनमें किसी औरत की कोख में पलनेवाले सपने से इंकार नहीं हो सकता. मेरी कहानी ने उस सपने को पकड़ना चाहा और कहा—

'फिर तुम आना ही भूल गये. . . और एक रात मेरी कोख में से रोने की आवाज इस तरह आती रही कि मैंने अपनी कोख और उसमें से आनेवाली किसी के रोने की आवाज को, अपने शरीर से उतारकर तहखाने में रख दिया. सोचा—जब कभी तुम आओगे, मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें तहखाने में ले जाऊंगी. . . वहां अपनी उम्र से काटकर मैंने जो अपना बीसवां साल रखा हुआ है, और कोख में से उठनेवाली किसी के रोने की आवाज रखी हुई है, वह सब तुम्हें दिखाऊंगी. . .

'तुम्हारे इकरार को मैंने अपने हाथ में फूल की तरह नहीं पकड़ा हुआ था, मैंने उसे अपनी हथेली में बीज लिया था. वह कितने वर्ष मेरी हथेली पर खिलता रहा, पर मांस की हथेली आखिर मांस की हथेली होती है, मिट्टी की तरह हमेशा जवान नहीं रहती, उसमें वर्षों की झुर्रियां पड़ जाती हैं. . . और जब वह बंजर होने लगती है तो उसमें खिला हुआ हर फूल-पत्ता मुरझा जाता है. . . तुम्हारे इकरार का फूल भी कुम्हला गया. . . और एक दिन मैंने कांपते हाथों से उस मुरझाये हुए फूल को तहखाने के अंधेरे में रख दिया. . .'

जिन्होंने दुनिया का मिथहास पढ़ा है, वे जानते हैं कि आज से हजारों साल पहले यूनान के मिथहास में एक 'यूरेनस' नाम का पुरुष होता था, जिसने 'गाइया' नाम की स्त्री से प्रेम किया, पर गाइया की कोख से जो संतान जन्म लेती थी, उसे यूरेनस धरती में दबा देता था!. . और गाइया को हमेशा धरती में से बच्चों के रोने की आवाज आती रहती थी. . .

कहानी लिखती गयी तो तहखाने का जिक्र करते हुए सहसा मेरे सामने यूनान का मिथहास आ गया, और लगा—मानो मेरी कहानी उसी मिथहास का नया दर्शन है. कहानी लिखकर मैंने अपनी मित्र—उसी औरत को सुनायी, जो मेरी कहानी की पात्र है. पूछा, "दोस्त, तुमने मुझे कभी कुछ नहीं बताया, पर मैं तुम्हारी जिंदगी की हकीकत को पकड़ पायी हूं या नहीं?"

वह हंस दी, सिर्फ इतना ही कहा, "यह कहानी मेरी हो सकती है और किसी की भी."

कहानियां कब और कैसे प्रतीक धारण करती हैं या वे किस तरह के चमत्कार होते हैं, जिन्हें कहने के लिए पात्र घड़ लिये जाते हैं, यह सब कुछ पकड़ में नहीं आता, पर हमारा इतिहास इस प्रकार की चिह्नात्मक कहानियों से भरपूर है. मसलन—हमारे इतिहास में पुरूरवा और उर्वशी की कहानी सदियों से चली आ रही है. इस कहानी के पात्र हमारी नजर में अब एक हकीकत बन चुके हैं. पुरूरवा को हम एक राजा के रूप में ही देखते हैं, जिसे एक अप्सरा उर्वशी से प्रेम हो जाता है और उसके बिछोह में व्याकुल होकर राजमहल में तड़पता है, पर हकीकत यह है कि कुदरत के तत्त्वों को नुमाया करने के लिए पात्र घड़ लिये गये थे. पुरूरवा कोई राजा नहीं, एक समय विशेष का नाम है.

बुध ग्रह कभी भी सूरज से 27 अंश से अधिक दूर नहीं रहता, पर वही जब 271 अंश पर पहुंचता है तो सूरज का प्रकाश उसके दोनों तरफ पड़ता है. उसे मध्य बिंदु या गर्भ बिंदु कहते हैं. पृथ्वी जब उस मध्य बिंदु को स्पर्श करती है तो उस काल का नाम पुरूरवा होता है. उसी मध्य बिंदु से चंद्र बिंदु के भ्रमण की दशा शुरू होती है और उसी की उत्तर दिशा का नाम है—उर्वशी. 27 अंश उत्तर की तरफ जब चंद्रमा आता है तो वह समय उर्वशी और पुरूरवा के मिलने का होता है. प्रकृति के इन तत्त्वों के मिलन से राजा पुरूरवा और उर्वशी की रोमांचक कहानी ने जन्म लिया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राह न रुकी

रांगेय राघव

सती वसुमति को जैन साहित्य में चंदनबाला के नाम से बड़ी साधवी के रूप में माना गया है. महावीर स्वामी ने स्त्री-संघ के लिए उसे सबसे ऊंची जगह दी थी. नारी-स्वातंत्र्य के संदर्भ में ही नहीं, पुनर्जागरण के संदर्भ में भी वरिष्ठ कथाकार-विचारक रांगेय राघव का यह उपन्यास विशेष महत्व का है. प्रस्तुत है इसी उपन्यास का संक्षिप्त रूपांतर . . .

राजकुमारी

रथ गांव पहुंचा. दिन का समय था. पुरुष खेतों में थे. एक युवती ने देखा तो पास आ गयी, "कौन हो तुम लोग ?" मैंने कहा, "घूमने चले आये थे. प्यास लगी है. पानी है ?"

"अरे पानी की क्या कमी?" वह रस्सी-कलसा ले कुएं की ओर चल दी.तभी एक बूढ़ी औरत बैठी हुई खिसकती-सिखकती आ पहुंची, "वह राक्षसी कहां गयी ? ओ मुझे कोई मार डालो."

मैं उससे कुछ पूछ ही रही थी कि युवती पानी लेकर आ गयी. उसने बताया कि बुढ़िया उसकी नानी है और उसने बड़े कुकर्म किये हैं. उसने फिर कहा, "हे भगवान, अगले जन्म में मुझे औरत मत बनाना !" बूढ़ा को उसने लात मारकर भगा दिया था.

जरिता ने कहा, "चलिए राजकन्ये ! देर हो जायेगी."

"राजकुमारी ?" युवती चौंक उठी. उसने झपटकर मेरे पांव पकड़ लिये. मारुत रथ की ओर बढ़ चला. मैंने युवती को अपना कंगन उतार कर दिया, "देख, उस बूढ़ी को अपना पाप भोगने दे, पर उसे मारा मत कर."

"नहीं मारूंगी राजकन्ये !" कहकर उसने मेरे पांव छुए.

मैं रथ पर चढ़ते ही जरिता से पूछने लगी, "यह बता, स्त्री ऐसा क्यों करती है ?"

वह बोली, "भाग्य है बिटिया ! पाप है पाप. प्राणी भोगता है. मेरे ही बचपन की बात है. पड़ोस में एक वैश्य रहता था. उसकी

CC-0. In Public Domain. Guru

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी बहुत अहंकारी थी. वह अपनी सास को ही घर से निकाल देने पर उतारू हो गयी. बुढ़िया बेचारी, जिसने पति के न रहने पर कितनी मुसीबतें सहकर तो बेटे को पाला-पोसा था. . . चुपचाप घर छोड़ गयी. उसे दासियों की तरह जीवन बिताना पड़ा. फिर मर गयी. . . ."

मारुत बोला, "जरिता ! अच्छा-बुरा देखने वाले हम इसी जन्म को देखते हैं. पर जन्म एक ही तो नहीं होता. . ."

"नहीं तो तुझ पर ही क्यों ऐसी मुसीबत आन पड़ती. . ."

मैंने पूछा, "जरिता अम्मा ! सारथी को क्या हुआ ?" तो मुश्किल से जरिता ने सारथी की उन तीनों विवाहित पुत्रियों की कथा सुनायी जो अपनी-अपनी दुनिया में दुख झेल रही थीं.

मारुत ने घोड़े रोक दिये. प्रासाद आ गया. हम भारी मन से उतर पड़े. मैं सोचने लगी यह संसार इतना दुखी क्यों है ?

अंब चंदन की चौकी पर बैठी थीं. दो-तीन स्त्रियां पास ही बैठी थीं. नीला के नीचे पति पर वार्ता हो रही थी, जो एक दूसरी स्त्री के साथ रहने लगा था. नीला पति के पास ही जाना चाहती थी. अंब ने वैसी ही व्यवस्था करवा दी. मैंने अंब्र से कहा, "वह मेरे पास नहीं रह सकती थी क्या?" जरिता ने कहा, "देवी! बिटिया क्या जाने कि स्त्री के लिए पति क्या होता है?"

मेरा चित्रकला सीखने का समय हो चला था. आचार्य करवीर ने कहा, "राजकन्ये, आज मैं तुमको एक नाटक सुनाऊंगा. यह नाटक मेरे एक शिष्य ने रचा है. बेचारे का पारिवारिक जीवन बड़ा दुखी है, उसकी पत्नी उसे बहुत तंग करती है.

मुझे उसकी पत्नी पर बहुत रोष हो आया. मैंने कहा, "आर्य, नाटक सुनाइए."

नाटक अच्छा था. मैंने कहा, "आर्य आप चाहें तो मैं धन दे दूं."

"नहीं बिटिया. लोग क्या कहेंगे! . . . . .महाराज से दान दिलाओ."

"आर्य, तो मैं कल मिलूंगी पिताजी से."

आचार्य चले गये तो मंगला ने कहा, "ऐसा भी क्या पति हुआ कि पत्नी को भी काबू में न रख सके."

मैंने पूछा, "तूने यह कहां से सीखा री?" तो वह बोली, "अंतःपुर की बातचीत से. चलो, महारानी से पूछें. . . . ."

महारानी ने समझाया, "स्त्री को स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहिए. उसकी बुद्धि चंचल और विनाशकारी होती है. स्त्री बुरी होती है."

"तो मां," मैंने कहा, "स्त्री को ज्ञान क्यों न दिया जाये. उसे व्यापक दृष्टि क्यों न दी जाये?"

जब हम पिता के प्रासाद में पहुंचे, उस समय वे न्यायाधिकरण में थे. मैं एक ओर को बिछी चौकी पर बैठ गयी और मंगला मेरे चरणों के पास. क्षत्रिय शिष्ठ गोत्रीय मरकंद की पत्नी शेफालिका को अपराधिनी के रूप में प्रस्तुत किया गया. मरकंद ने पहली पत्नी के न रहने पर उससे विवाह किया था. शेफालिका से जब पुत्रोत्पत्ति न हुई तो वह नये विवाह की बात सोचने लगा. शेफालिका को यह सहन न हुआ. . . और उसने अपनी नन्हीं-सी बच्ची की हत्या कर दी. एक किरात स्त्री के कहने पर उसने सात शनिवारों को आग लगायी और लोगों के घर बर्बाद कर दिये. यह सब उसने स्वीकार भी किया और दंड की मांग भी रखी. पर जब उसने अपने साथ-साथ मरकंद को भी दंडित करने की प्रार्थना की तो मरकंद ने उसे बांझ साबित करना चाहा. मैं चुप क्यों रहती, "नहीं, उसने पुत्री को जन्म देकर मातृत्व प्रमाणित किया है." इसी पर विवाद हो गया. महाराज ने कहा, " विषय परिषद के विचारार्थ है."

महाराज से मैंने कवि की सहायता को कहा तो वे नाटक सुनकर बोले, "अवश्य कवि को धन देना चाहिए."

दुपहर बीतने लगी. आचार्य नहीं आये तो मैंने मंगला से कहा, "चल कहीं घूम आयें. . . . . "

हम लोग सशस्त्र सैनिकों के साथ नगर की ओर निकले तो आर्य करवीर की दारुण स्थिति देख मैं दुखी हो उठी. उन्होंने बताया, "मेरी लाडली बेटी को कुटनी फुसलाकर भगा ले गयी. अब वह कहीं बेच दी जायेगी."

मुझे बुरा-सा लग रहा था. प्रासाद में आकर मैं शैया पर लेट रोने लगी. "मां!" मैंने कहा, "यह संसार तो बहुत बुरा है."

"मां बोली, "तभी तो मृत्युलोक कह लाता है, बेटी."

फिर मां और पिता मेरे दुख को देख दुखी हो विचार-विमर्श करने लगे मैं उठी, "पिता, यह संसार क्या केवल पाप है? मां तो संसार में बहुत अच्छी होती है. . . . फिर लोग ऐसे क्यों होते हैं?"

महारानी

यह अंगदेश है और इसकी राजधानी है चंपा. मेरे पति दधिवाहन अंगदेश के राजा हैं. दधिवाहन के कोई दूसरी स्त्री नहीं. जब कभी ऐसी स्त्रियों से बात होती है? जिनके पति की कई पत्नियां हों तो मेरी बेटी वसुमति पूछती है, "अब, ऐसा क्यों होता है?"

मैं सोचती हूं क्या सचमुच स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं?

दासी श्यामला उस परिवार की कथा सुनाती है, जहां वह पहले काम कर चुकी है. . . . .कि किस तरह से भाई ही अपनी पत्नी के कहने में आकर प्यारी बहनों को मारने में उतारू हो जाता है. तब बहनें कहती हैं, "स्त्री तब ही पिटती है जब उसे पेट के लिए दबकर रहना पड़ता है.

मेरी बेटी अब चौदहवें में लग रही है. अनिंद्य है इसका रूप. इसका विवाह किससे हो? मैं सोचती रहती हूं. तभी श्यामला आकर बताती है कि राजकुमारी घूमने जाना चाहती है. . .

महाराज किसी लोक-कल्याण योजना में लगे थे.

"देव, आपको कुछ घर की भी चिंता है?

"क्यों, क्या हुआ है?" वे चौंक पड़े.

"पुत्री अब युवती हो चली है. " मैंने कहा.

"इतनी बड़ी हो गयी?" उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया, "फिर हम-तुम रह जायेंगे. . . . . . केवल दो?"

"स्वामी, अंगदेश के उत्तराधिकारी का क्या होगा? पुत्री के बाद आप भी एक विवाह और कर लीजिए. शायद. . . . . "

"क्या कहती हो? कैसे कह सकीं यह तुम निष्ठुर."

मैं रो पड़ी. कितना मादक था वह क्षण!

मैं अपने प्रासाद में आ गयी थी. श्यामला आयी तो मैं रोना ही भूल गयी. उसने बताया कि एक स्त्री को बच्चों सहित उसका पति छोड़कर चला गया तो उसकी दशा देख राजकुमारी किस तरह दुखी हो उठी. फिर कैसे वह वेश्याओं का स्थान भी देख आयी. . . . पूछने लगी, "स्त्री क्यों स्वीकार करती है इसे?" जब उसे समझाया कि ये परंपरागत रूप से ऐसा करती चली आ रही हैं. यह इनकी मजबूरी है तो कहने लगी, "मर क्यों नहीं जाती? मरने से डरती होंगी. पुरूष वीर है."

फिर सुनयना भी राजकुमारी की ही ओर से प्रश्न लेकर उपस्थित हुई थी, "देवी, क्या आप अधीन हैं? राजकुमारी कहती है कि आप महाराज के अधीन हैं." मैंने बताया, "सारा राज्य महाराज के अधीन है."

"नहीं," राजकुमारी ने कहा, "आप महाराज की पत्नी हैं, पति के अधीन हैं?"

मुझे बहुत विचित्र लगा. फिर प्रश्न आया कि कौन बनाता है ऐसी सृष्टि?. . . वसु ने ही पुछवाया था. मैंने बताया कि सृष्टि तो ईश्वर ने बनायी है. तो जाकर वह राजकुमारी को बता आयी. पर उसने कहा, "ईश्वर होता तो यह सब ऐसा नहीं होता. . . . ईश्वर कुछ नहीं होता."

अब वसुमति से बातें करना मैंने ही ठीक समझा. मैंने समझाया, "परिवार में ऐसी बात नहीं. अधीनता की बात धन के कारण आती है."

महाराज से मिली तो बोले, "देवी, पुत्र और पुत्री में भेद कहां है? फिर अपनी वसु को ही उत्तराधिकार दिलाने की चेष्टा करूंगा. भले ही फिर यह परिषद के समक्ष विचारार्थ क्यों न रखना पड़े."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद के सदस्य एकमत से सहमत न हुए. सेनाध्यक्ष रूद्र वर्मा और श्रेष्ठि नंदक की अनुपस्थिति की वजह से इसे पुनर्विचार के लिए छोड़ दिया गया. उधर जनता में भी वसु को उत्तराधिकारी बनाने पर तरह-तरह की टिप्पणियां होने लगीं.

महाराज वसु को समझा रहे थे, "तू मेरा पुत्र ही है. शारीरिक बल-भेद विशेष महत्व नहीं रखता. बलवान तो वास्तव में विवेक है, बुद्धि है. इसीलिए मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है." महाराज वसु से संयमित रहने की प्रतिज्ञा करवाना चाहते थे. मैं तभी चिल्ला उठी.

वसुमति की दृढ़ता सारे चंपा में फैल गयी. स्त्री शासन करेगी. मेरे दिमाग में शतानीक, पांचाल के क्षत्रिय, शाक्यों का कपलवस्तु लिच्छवियों की वैशाली, मल्लों का पावा और कुसीतारा, कौसल का प्रसेनजित, मगध का बिंबिसार, अवंतिका चंद्रप्रद्योत, और भी न जाने क्या-क्या घूम गया. . . . . मैंने बेटी को छाती से लगाकर कहा, "जीवन एक संग्राम है वसु."

महाराजा

मैं दधिवाहन, अंगदेश का राजा. मेरी धारिणी का हृदय बहुत कोमल है. और नसु है हमारी पुत्री.

मैं दंडधर से कहकर वसुमति को बुलवाता हूं. वसु पुरुष वेश में है. अब वह राज्य की उत्तराधिकारिणी जो है. वह मां से 'कौमार्य-धर्म' और 'पत्नी-धर्म' पर चर्चा करके आयी है. मैं कहता हूं, "संयम ऐसी बात है वसु, जो स्त्री पुरुष को बड़े-बड़े कामों की तरफ ले जाती है."

सेनापति रूद्र वर्मा आकर बताते हैं कि समाचार ठीक नहीं हैं. सीमा पर वत्सराज की सेना घूम रही है. उसने अंगराज्य के ग्रामीणों को मारा-पीटा है.

रूद्र वर्मा हंसता है, "राज्य और परिवार दो अलग-अलग चीजें हैं." तभी श्रेष्ठि नंदक बताते हैं कि वत्स की सेना ने सार्थ लूट डाला.

"हानि हम पूरी करेंगे नंदक." मैं कहता हूं.

रूद्र वर्मा क्रोध से बाहर चला गया है. नंदक भी. वसु को महारानी ने अपने पास सोने को बुलवा लिया है. और मैं सोच रहा हूं. . . . 'ग्रामीण कितने अधिक हैं. . . फिर भी नहीं बचा सकते. स्वयं को!'

गंगा मार्ग से आते हुए हमारे पत्र-वाहक को शतानीक पकड़वा लेता है. ग्रामीण क्षुब्ध अवस्था में बाहर खड़े हैं. वे सब युद्ध करने को तत्पर हैं शत्रु से. मेरी बात कोई नहीं सुनता. मेरे साथ वसु है केवल. वह कहती है, "तो पिता, युद्ध घोषित कर दीजिए न." तभी रूद्र वर्मा और श्रेष्ठि नंदक आकर अपनी युद्ध समर्थक इच्छाएं व्यक्त करते हैं. . .

परिषद जमा हुई है. परिषद का एक स्वर है—युद्ध. युद्ध का बदला युद्ध, हत्या का बदला हत्या. नाश का बदला सर्वनाश. कोलाहल शांत होते ही सब मेरी ओर देखते हैं. मैं कहता हूं, "हिंसा का अंत कहां है सम्यगण यदि हिंसा का पथ न अपनाया जाये तो? मैं युद्ध के बदले युद्ध स्वीकार नहीं करता. एक बार मुझे अवसर दो, उसके बाद युद्ध होगा."

मैं सोचता हूं, शतानीक का इतना साहस कैसे हुआ? इस समय यदि कौसल उस पर उत्तर से टूट पड़े तो? अवंति के लिए वत्स खुला पड़ा है और मगध का बिंबिसार. . . . . ? गुप्तचर यदि भड़का दे मगध को शाक्यों को. . . . और वैशाली को. . . दक्षिण-पश्चिम में तो कलिंग और बंग है ही, पर यह तो कूटनीति हुई. . . . इससे सत्य की विजय कहां?

मैं अपना मार्ग ग्रहण करता हूं और सेना को पीछे छोड़ अकेला ही खड्ग लेकर शतानीक के सामने जा पहुंचता हूं. उसे विश्वास नहीं होता कि मैं, जो युद्ध से स्थापित शांति का विरोध कर रहा हूं, उसके पीछे कोई मानव-कल्याण का भाव छिपा है. वह समझता है कि खड्ग मैं उस पर चलाने को लाया था. . . खड्ग से जब मैंने खुद पर वार कर लिया तब वह समझा. . . . विक्षुब्ध-सा देखता रह गया.

खांडेकर का कहना है...

मेरा किशोरवय का यह मत कि उत्कृष्ट काव्य, नाटक तथा उपन्यास लिखने के लिए उपकारक बने ऐसी अनेक कथाएं पुराणों में हैं, कभी नहीं बदला. प्रत्युत पाश्चात्य साहित्य के परिशीलन के कारण वह अधिक दृढ़ हो गया. यदि लेखक को अपनी प्रतिभा की किस्म, शक्ति और सीमा का ठीक से ज्ञान हो चुका है, यदि उसने आत्म-अभिव्यक्ति के लिए योग्य कथा चुन ली है, साहित्य के जिस माध्यम के द्वारा वह उस कथा को प्रकट करना चाहता है उस माध्यम पर कलाकार का अधिकार है, पौराणिक कथाओं में जो भव्य भीषण संघर्ष मिलते हैं उनका मंथन करने योग्य शक्ति यदि उसके चिंतन में है, जो यह समझ गया है कि जीवन जिस तरह क्षण भंगुर है उसी तरह वह चिरंतन भी है और जितना वह भौतिक है, उतना ही वह आत्मिक भी है, तो यह देखने के लिए कि पौराणिक कथा से सुंदर ललित कृति किस प्रकार निर्मित होती है, किसी को विदेश यात्रा की आवश्यकता नहीं!

मेरा ही उदाहरण ले लीजिए. मैंने बचपन से पौराणिक कथाओं का पारायण किया था. उनके विभिन्न रसों का मनमाना स्वाद चखा था. रूपक, प्रतीक और संदर्भ के रूप में उनका मुक्त हस्त से उपयोग किया था, इसके बावजूद सन् 1942 के पूर्व तक पौराणिक उपन्यास लिखने की इच्छा कभी न जागी थी. □

श्रेष्ठि धनवाह

स्वस्तिश्री योग्य लिखी श्रेष्ठि धन्यवाद, कोसांबी निवासी का ताम्रलिप्ति निवासी श्रेष्ठि मणिपूरकदास को निवोदित हो. आगे यह हाल है कि उधर वत्स की सेना बढ़ चली और दधिवाहन ने अकेले जाकर उसे रोका. इधर बिंबिसार ने चुपके से चंपा पर अधिकार कर लिया. शतानीक लौट पड़े. यों ही अनेक दिन बीत गये. दूकान से एक दिन घर लौट रहा था कि दासों की हाट में एक अधेड़ स्त्री को चिल्लाते देखा. उसके साथ ही चौदह-पंद्रह साल की एक युवती खड़ी थी. नगर नायिका वेश्या अंगसेना ने इसे चार हजार पण में खरीद लिया था. पर वह वहां जाने को तैयार ही न थी. मैंने पांच हजार पण दिये और उसे अपने साथ ले आया व्यापार से लौटा तो उसकी तीन दिन भूखी दशा देख बहुत दुखी हुआ. सूप में रखे उर्द के बाकले उसे खाने को दे मैं भोजन की व्यवस्था करके लौटा तो देखा कि वर्धमान महावीर उससे भिक्षा ले रहे हैं. श्रमण ने पंद्रह दिन का उपवास तोड़ा है".

"धीरज रख!" कहकर श्रमण तो चल दिये. चंदनबाला देखती रही.

भीड़ लग गयी थी. एक व्यक्ति ने रोते हुए अपराधी भाव से चंदनबाला के पैर पकड़ लिये. वह राजकन्या, चंपा की महारानी की पुत्री को पहचान गया था.

खबर शतानीक तक जा पहुंची. उसके कर्मचारी वसु को ले जाने को आये भी. पर चंदनबाला ने कहला दिया कि जो नाम मुझे मिला है. . . उसके योग्य स्वयं को प्रमाणित करना होगा. . . .

राजकर्मचारी लौट गये. चंदनबाला चल पड़ी. भीड़ भी. वह चली गयी; वहां—जहां वर्धमान श्रमण थे.

देखा तो मुस्कुराए. पवित्र मुख, निर्विकार, दिगंबर! वसु ने कहा, "श्रमण! आयी हूं आपके चरणों में सत्य खोजने. स्त्री हूं, पुरुष ने जिसे वासना का पुंज कहा है, स्थान मिलेगा?"

महावीर ने कहा, "साध्वी, तूने मेरे अभिग्रह की रक्षा. खोजने निकला था लोक में, कौन है ऐसा जो मेरे कार्य को बढ़ा सके? दासता तोड़नी है, तोड़नी है शृंखला. दुख पर विजय पानी है, उसमें मुस्कराकर..."

. . . और चंदनबाला उसी पथ पर चल रही है. . परंतु मैं? अपनी समस्या को अभी तक सुलझा नहीं पाया हूं. . . . □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरमुंड शिकारी

फणि मजूमदार

अद्भुत जीवट के धनी प्रख्यात फिल्मकार फणि मजूमदार ने बोर्नियो के इबान कबीले के लोगों की जिंदगी पर अंग्रेजी में एक फिल्म बनायी है 'लांग हाउस.' इस फिल्म के निर्माण के दौरान हुए खट्टे-मीठे और रोमांचक अनुभवों पर आधारित पुस्तक का नाम है 'बोर्नियो के नरमुंड शिकारी.' प्रस्तुत है बोर्नियोवासियों के आत्मा और देवी-देवता संबंधी विश्वासों का खुलासा करता इसी पुस्तक का एक महत्वपूर्ण अंश--

उस दिन धूप फैली हुई थी. मैंने देखा कि पेड़ के तने की सीढ़ी उस दिन की तरह रपटीली नहीं थी, जिस दिन हम यहां आये. पेड़ के तने की सीढ़ी के पास हाथ के सहारे के लिए एक डंडा भी ठोंक दिया गया था. हम नहाने के लिए नीचे नदी पर आये. खाना हम अपने साथ ही ले गये थे, जिसे हमने नाव पर ही खा लिया.

वहां से लौट आने पर सरदार हमें गैलरी में ले गया, जहां सभी प्रकार के इबान व्यंजनों की प्लेटें सजी हुई थीं. इन प्लेटों के पास पांच-छः लड़कियां, बच्चे तथा कुछ स्त्रियां खड़े थे. मुझे डर लगा कि सौजन्यवश इन सभी व्यंजनों में से अगर थोड़ा बहुत चखना पड़ा तो इससे मेरी तबीयत जरूर खराब हो जायेगी.

बाद में मुझे पता चला कि चटाई पर सजाये सभी व्यंजन, मनुष्यों के भोजन के लिए नहीं थे. वे तो अच्छी और बुरी आत्माओं के लिए रखे गये थे. बोर्नियो के बहुत से जंगली आदमियों ने अभी भी अपने पूर्वजों की अनगिनत पीढ़ियों से चले आ रहे विश्वासों को कायम रखा है. ये लोग कुछ श्रेष्ठ देवताओं में भरोसा रखते हैं. इनमें से तीन देवता मुख्य हैं—पहला मनुष्य का सर्जक, दूसरा खेती-बाड़ी का रक्षक और तीसरा युद्ध का निर्णायक. इन अलौकिक शक्तियों के श्रेष्ठक्रम में आत्माएं सबसे नीचे हैं. उनका विश्वास था कि जंगलों और नदियों, पर्वतों और धान के खेतों पर छोटे देवताओं का शासन था. ये देवता प्राणियों के व्यवहार के माध्यम से अपनी इच्छाएं प्रकट करते थे. इनके खास माध्यम थे—हरे रंग के मकड़खौना पक्षी, चमकीले, बैंगनी, काले सौमित ट्रोगोन और मंडराते हुए बड़े-बड़े बाज. घर बनाने, खेती के लिए जमीन तैयार करने, शादी तय करने या सफर करने जैसे किसी भी जरूरी काम के लिए, पहले इबान लोग इन प्राणियों की चेष्टाओं का अध्ययन करते थे. अगर पक्षी कोई खास प्रकार का व्यवहार करता तो सगुन अच्छे होते हैं, अन्यथा नहीं. इस आधार पर ये लोग अपनी जिंदगी का व्यवहार तय करते हैं.

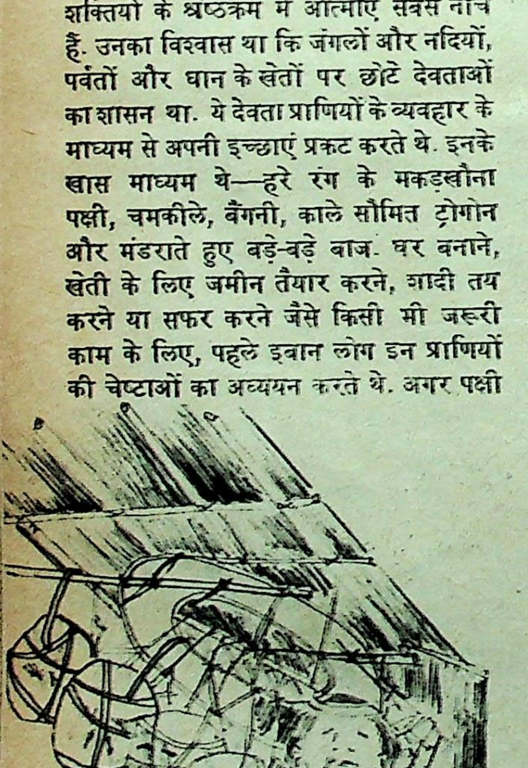

एक और प्राणी, जिसके माध्यम से आत्माएं बोलती हैं—काकड़ (बारकिंग डियर) कहा जाता है. काकड़ उन अदृश्य शक्तियों का प्रतीक है, जो मनुष्यों का भाग्य निश्चित करती हैं. कभी-कभी ये आत्माएं ओझा को सपने में आकर सूचनाएं देती हैं. इन ओझाओं का दावा है कि दूसरी दुनिया के साथ उनका सीधा संपर्क है. हर मचानघर में एक ओझा जरूर होता है.

पेगन्स लोगों की सारी उम्र बुरी आत्माओं को खुश रखने और अच्छी आत्माओं से मैत्री रखने में बीत जाती है. इसके लिए वे पुराने समय से चले आये सामाजिक आचरण के अनुसार धार्मिक निषेधों और प्रायश्चितों का पालन करते रहते हैं. इनमें से एक काम था—देवताओं और राक्षसों को समय-समय पर भोजन और शराब देना. एक अजीब रस्म यह भी थी कि उनके घर आये विशिष्ट मेहमान के हाथों आत्माओं को भोजन खिलाया जाये. कहा जाता है कि अच्छी और बुरी आत्माओं की अदृश्य भीड़ इस सत्कार से खुश हो जाती है. ऐसे अवसरों पर दिये गये भोजन में कई स्वादिष्ट पदार्थ होते हैं. भोजन की तैयारी के साथ-साथ एक विधिवत् समारोह भी होता है, जिसे 'बेदारा' कहा जाता है.

सबसे पहले पेंघुलू कुलेह ने मुझे अपना हाथ आगे बढ़ाने को कहा. मैंने हाथ आगे बढ़ाया. उसने मेरी कलाई पर तांबे का एक कंगन बांधा. यह कंगन मित्रता का प्रारंभिक संकेत था.

चटाई पर मेरे सामने बीसेक तश्तरियां चार कतारों में रखी हुई थीं. प्रत्येक तश्तरी में स्थानीय निवासियों का खाद्य पदार्थ रखा हुआ था. एक लड़की ने मेरे सामने एक बड़ी प्लेट रखी. इस बड़ी प्लेट में मुझे प्रत्येक तश्तरी में से लेकर थोड़ा-थोड़ा व्यंजनों का नमूना रखना था. प्लेट काफी बड़ी थी, परंतु जल्दी ही उसमें रखी जा रही थोड़ी-थोड़ी चीजों के कारण छोटी पड़ गयी. मैंने सभी तश्तरियों में से थोड़ा-थोड़ा लिया और बड़ी प्लेट में इकट्ठा किया. पेंघुलू कुलेह और स्त्रियां मेरे काम को बड़े शौक से देख रहे थे. इन पदार्थों के रखने में बीच-बीच में ये लोग भी मेरी मदद करते, ताकि सारा सामान गिरकर बिखर न जाये.

जब प्रत्येक तश्तरी में से थोड़ा-थोड़ा ले लिया गया तो एक लड़की ने अंडों से भरी एक तश्तरी मेरे सामने रखी. उसने मुझे खाद्य पदार्थ की बड़ी प्लेटवाली सजावट पर चार अंडे सीधे खड़े रखने के लिए कहा. इस तरह वह महल किसी पागल की ऊटपटांग अनोखी रचना की तरह लग रहा था. आखिर में एक लड़की ने घर की बनी टुआक शराब का एक भरा हुआ प्याला मुझे दिया, जिसको मैंने उन चार अंडों के बीच खाद्य पदार्थ की चोटी पर सजा दिया.

इतने में एक मुर्गे को उल्टा पकड़े हुए एक ओझा आया. कुलेह के आदेशानुसार मैंने मुर्गे को खाने की सजी प्लेट पर उल्टा घुमाया. ऐसा करते हुए मैं मचानघर के निवासियों के प्रति आशीर्वचन बुदबुदाने लगा. उस वक्त मुर्गा जिस तरह शांत था, उसकी प्रशंसा करनी चाहिए, परंतु उसका भविष्य अंधकारमय था, क्योंकि उसकी बलि दी जाने वाली थी. मैंने उस मुर्गे को वापस ओझा को दे दिया. उसने उसे दूर ले जाकर काट डाला और कुछ क्षणों बाद उसकी पूंछ के कुछ पंखों के साथ वापस लौट आया. चूंकि उन पंखों को मुर्गे के खून में डुबोया गया था, इसलिए उन्हें विशिष्ट पवित्रता प्राप्त हो गयी थी.

इसके बाद मुझे अदृश्य मेहमानों यानी आत्माओं को वह भोजन अर्पित करने को कहा गया. हमारे पीछे की खुली गैलरी में जमीन पर एक बांस का खंभा लगाया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. उसके ऊपरी हिस्से को छः खपच्चियों में बांटा गया, जो लकड़ी के किसी हाथ की फैली हुई अंगुलियों की तरह लग रहा था. फिर, जैसा मुझे बताया गया, मैंने आत्माओं के भोग के लिए वह प्लेट बांस की एक खपच्ची पर रख दी, ताकि वे आत्माएं उसका आनंद ले सकें.

शाम होते-होते सभी निवासी अपने दैनिक कार्यों से घर लौटने लगे. गैलरी में धीरे-धीरे भीड़ होने लगी. आदमी या तो इधर-उधर टहल रहे थे या बैठकर बातें कर रहे थे. गैलरी में आदमियों के अलावा और भी प्राणी भीड़ बढ़ा रहे थे, मसलन कुत्ते, जो एक दूसरे को सूंघते हुए सूं-सूं करते हुए इधर-उधर भाग-दौड़ मचा रहे थे. इबान लोग हिरण तथा जंगली सूअरों का शिकार करने के लिए संकर जातीय कुत्ते पालते हैं. ये कुत्ते भी वहीं ठहरे हुए थे और इनके शरीर से पिस्सू चिपके हुए थे. चूजे तेजी से इधर-उधर भागते, बड़ी सावधानी से अपने मालिकों के पांवों के बीच से निकल जाते, परंतु जब कभी वे ठीक से भाग नहीं पाते और उनकी पूंछ किसी के पांव तले दब जाती तो कूं-कूं करने लगते. पेंघुलू कुलेह के कमरे के दरवाजे के दोनों तरफ दो सुंदर ताजे मुर्गे खूंटी से बंधे हुए थे. मुर्गे लड़ाने का खेल यद्यपि गैरकानूनी है, फिर भी नदी के ऊपरी हिस्से के लोगों में बहुत ही लोकप्रिय है. मुर्गे खूबसूरत और रंगीन थे, ऐसे अभिमान से सिर उठाये खड़े थे, मानो उन्हें इस बात का एहसास हो कि वे पालतू प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ हैं.

रात हुई और गैलरी में बत्ती जला दी गयी. धीरे-धीरे गैलरी में सारा गांव इकट्ठा हो गया. इसके बाद लिंगा और नागि नामक दो युवा लड़कियां समारोह की पोशाक पहने वहां आयीं. लिंगा मेरे सामने विनम्र मुद्रा में घुटने टेककर बैठ गयी. टूआक शराब से भरा एक मग्गा उसने मेरी तरफ बढ़ाया और फिर एक लंबा आख्यान गीत गाने लगी, जिसमें अनगिनत पद थे. मचानघर की युवतियों को, विशिष्ट मेहमानों के पेंटुस नामक संगीतमय स्वागत के लिए ऐसे आख्यान तैयार करने की शिक्षा दी जाती है. हर लड़की गाते वक्त एक पद इसमें और जोड़ देती है. प्राचीन लोकगीतों की तरह यह भी एक गीत ही था. इसकी कथा माननीय मेहमान के व्यक्तित्व के आधार पर थी.

लिंगा जब हाथ में शराब का प्याला लिये गा रही थी तो पेंघुलू कुलेह मेरी ओर देखते हुए मुस्करा रहा था. गीत खत्म होने पर लिंगा ने प्याला मेरी तरफ बढ़ाया. मैंने चुपचाप पेंघुलू की ओर देखा और अंगुलियों से प्याला छूकर कहा, "निरूप." लिंगा ने प्याला अपने होंठों से लगाया और जैसा कि मुझे बताया गया, मैंने एक हाथ उसके सिर के पीछे रखा और दूसरे हाथ से प्याले को उसके होंठों से लगाये रखा, जब तक कि उसने वह शराब का प्याला खाली न कर दिया. लिंगा ने मेरी तरफ आश्चर्य से देखा, क्योंकि मेरा तनाव खत्म हो गया था और उधर पेंघुलू जोर से ठहाका लगाकर हंस रहा था.

फिर नागि ने चिन साहब के लिए गीत गाया और लिंगा मेरे और नजदीक आ गयी. समारोह के अंत तक लिंगा को मेरी देखभाल का काम सौंपा गया था. न तो वह मेरी भाषा जानती थी और न मैं उसकी भाषा.

चिन साहब को कोई परेशानी नहीं हुई. गीत के बाद नागि द्वारा दिया गया प्याला वे पी गये और बिल्कुल अलग ही लगने लगे. इबान लोगों द्वारा बनायी गयी यह शराब बहुत ही तेज होती है. जिसको इसकी आदत न हो, वह एक प्याला भी सहन नहीं कर सकता.

इसके बाद सरदार ने मचानघर के निवासियों से मेरा परिचय एक ऐसे आदमी के रूप में करवाया, जो उनकी जिंदगी को करीब से देखने आया था. उसने हमारी दी हुई भेंट भी उन्हें बतायी. सरदार ने उन्हें यह हिदायत दी कि मचानघर के मेहमान के नाते वे मुझे पूरा स्नेह और आदर प्रदान करें.

फिर सरदार ने कुछ नौजवानों को भेंट बांटने के लिए कहा. बूढ़े लोगों को शराब दी गयी. बच्चों को मीठे पेय पदार्थ और मिठाई तथा बिस्कुट दिये गये. यह सारी प्रक्रिया इतनी सहजता से हो रही थी कि मानो इसका उन्होंने कई दिनों तक अभ्यास किया हो. मैं बच्चों का बर्ताव देखकर हैरान था. बच्चे अपना हिस्सा पाने को बिल्कुल शोर नहीं मचाते, बल्कि इसके बदले जब पासवाले बच्चों को चीजें दी जातीं तो चुपचाप खड़े रहते और जब अपना हिस्सा मिल जाता तो खुश होकर मुस्करा देते.

इसके बाद दो चारणों ने घंटे बजाने शुरू किये. एक स्थानीय निवासी ने ढोल पर थापें दीं. बाहर के अंधेरे को पार करता हुआ एक युवक उजाले में आया, उसने धनेश पक्षी के पंखों से बना एक वारकोट पहन रखा था. उसके सिर पर फैजेंट पक्षी के पंखों की कलंगी वाली टोपी थी. उसने कमर पर पारंग बांधी हुई थी. उसने म्यान को जमीन पर रख दिया, फिर नृत्य की शुरुआती मुद्रा में ताल देने से पहले थोड़ा हिचकिचाया और उसके बाद वह पुतले की तरह खड़ा हो गया. फिर कुछ देर तक वह हिचकिचाता रहा और फिर इबान नृत्य की शुरुआत में अचानक चीखकर और उछलकर नृत्य की शुरुआत की. हमेशा की तरह ही इस नृत्य की कथावस्तु थी—नरमुंड शिकार. युवक ने अपने शिकार का पता लगा लिया था. भयंकर लड़ाई होती है और फिर वह दुश्मन का गला काट देता है. सिर को लेकर खुशी से नाचता रहता है. इसके बाद जो नृत्य हुआ, वह नरमुंड को मचानघर तक लाने की रस्म के रूप में था. वह नरमुंड हर घर के दरवाजे के सामने बेंत की टोकरी में टंगे बहुत से विजय चिह्नों में से ही एक था, परंतु नृत्य करनेवालों ने ऐसा दर्शाया कि यह नरमुंड घर में लटकाने के लिए तैयार नहीं किया गया है. तीन स्त्रियां एक पंक्ति में होकर धीमे ताल पर नाचने लगीं. उनके चेहरे पर अंत्येष्टि के भाव थे. एक छोटा घेरा बनाकर वे मायाविनियों की तरह आगा-पीछा करने लगीं. उनमें से एक ने नरमुंड को केले के पत्ते से बांधकर पकड़ा था. फिर चार व्यक्ति आये, वे सभी ओझा थे. वे मंत्र पढ़ते हुए उन स्त्रियों के घेरे के आस-पास घूमने लगे. उसके बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि नरमुंड लटकाने लायक हो चुका है, क्योंकि नाच धीरे-धीरे मातम के साथ शोकपूर्ण रूप से धीमा होता गया और नाचनेवाले बिखर गये.

—प्रस्तुति : नी. सि.

आशुलिपि में प्राप्त वर्णन

▣ रॉबर्ट ग्रेव्ज

सामूहिक पर्वों पर किये जाने वाले प्रहसन-अनुष्ठानों के आशुलिपि में प्राप्त वर्णनों को 'मिथक' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है. बहुधा इनको ही चित्रों के रूप में मंदिरों की दीवारों, फूलदानों, कटोरों, आइनों, बक्सों, कवचों और चित्र यवनिकाओं पर उतारा गया.

प्राचीन योरोप में देवता नहीं थे. एक देवी थी, जिसे अनादि, अपरिवर्तनशील और सर्वव्यापी माना जाता था और पितृत्व की अवधारणा का धर्म प्रणाली में समावेश नहीं था. वह प्रेमी चुनती थी, केवल सुख के लिए, न कि अपने बच्चों को पिता देने के लिए. पुरुष मातृदेवी से भय खाते थे, उसकी आराधना करते थे और उसकी आज्ञा का पालन करते थे. जिस अग्निकुंड की गुहा या घर में वह देखभाल करती थी, वह उसका सर्वप्रथम समाज केंद्र था और मातृत्व उनका गहनतम रहस्य. इसी कारण यूनानी जब सामूहिक रूप से बलि देते, तो पहली भेंट सदा अग्निकुंड की रक्षिका को दी जाती थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ महाभारत का दूसरा युद्ध ॥

जोगेंद्र पाल

'सारिका' के इस रजत जयंती वर्ष में जनवरी, प्रथम अंक से प्रारंभ इस स्तंभ में हम गत चौबीस वर्षों में 'सारिका' में प्रकाशित प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ कहानी का पुन: प्रकाशन कर रहे हैं. इसके साथ ही कहानी पर एक वरिष्ठ रचनाकार की टिप्पणी भी आमंत्रित करते हैं. इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है उर्दू के प्रख्यात कथाकार जोगेंद्र पाल की 'सारिका' के नवंबर, १९७५ अंक में प्रकाशित यह कहानी——

पहला अध्याय

द्रौपदी ने महाभारत के पाठ से निपटकर अपने दोनों हाथ माथे पर बांध लिये और बड़ा सहृदयता से प्रार्थना करने लगी, "ऐ भगवान, ऐसे लाज रखना जैसे माता द्रौपदी की रखी थी."

"तुम्हारा तो धंधा ही जिस्म बेचना है, फिर लाज कैसी?"

उसने मुझे उत्तर दिया, "अगर आबरू बनी रहे तो जिस्म बेचने से क्या होता है? मेरी तो यही प्रार्थना है कि परदे में मेरा धंधा चलता रहे और आबरू से रोटी मिलती रहे."

दूसरा अध्याय

पाप रात्रि के पश्चात दूसरे दिन जब द्रौपदी की सजल आंखें खुलतीं तो यों लगता जैसे रात्रि के पिछले पहर में यह स्त्री हंस-हंसकर सो गयी थी और सपने में निरंतर रोती रही थी..... और रो-रोकर उसकी सारी थकन दूर हो गयी थी.

"क्या तुम्हें रोकर आराम मिलता है?"

"जब मैं रोती हूं तो मेरा बाबुल मेरे सिरहने आ खड़ा होता है. मेरा खलंडरा भाई भी दीवारों से निकलकर मेरे सिर पर हाथ रख देता है और यह सुखदायक यादें रुई के गालों की तरह मेरे गर्मागर्म आंसुओं से भर जाती हैं और मेरे दिल के जख्म धोने लगती हैं."

"फिर तुम अपने आप से छिपकर क्यों रोती हो?"

"इसलिए कि कहीं मुझे अपने ग्राहकों पर बाप-भाई का गुमान न होने लगे."

तीसरा अध्याय

"द्रौपदी!"

"कहो"

"मेरी एक बात मानोगी?"

"कहो."

"यह धंधा छोड़ दो."

"क्यों?"

"जब किसी की मैली नजर तुम्हारे गोरे-गोरे रूप पड़ती है तो मैं आपे से बाहर हो जाता हूं."

"रूप गोरा उसी समय लगता है, जब नजर मैली हो. भगवान कृष्ण ने कहा है कि....." और उसे याद आया कि वह तो महाभारत पढ़ने के लिए बैठी थी. फिर अपनी बात अधूरी छोड़कर उसने मेरी ओर से मुंह मोड़ लिया.

चौथा अध्याय

महाभारत द्रौपदी की प्रिय धार्मिक पुस्तक थी.

"जीवन एक युद्ध है." वह मुझे समझा रही थी, "अगले वक्तों में लोग तलवारों से लड़ा करते थे, पर आजकल दुश्मन के खून से तलवार नहीं रंगी जाती है. इन दिनों दुश्मन की तबाही के लिए सबसे अच्छा हथियार मुस्कराहट है."

मुस्करा-मुस्कराकर उसने मुझे पछाड़ दिया.

"और उसका कारण यह है कि आजकल सब एक-दूसरे के दुश्मन हैं. सभी लोग दुश्मन हों तो आदमी या तो बम गिराकर सारी दुनिया को एकदम खत्म कर देता है या फिर हंसी-हंसी में एक-एक करके सबको समाप्त करता है. उसके स्वर में एकदम दार्शनिक संकल्प का तनाव आ गया "और जब तक सारे संसार का निशान नहीं मिट जायेगा, हम इसी प्रकार अपने भाइयों और दोस्तों को फुसला-फुसलाकर तबाह करते रहेंगे, नहीं?" वह अपने को ठीक करने के लिए जरा रुकी, "हमारा कोई भाई और दोस्त नहीं. भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि तेरा कोई भाई नहीं, कोई चचा नहीं, कोई मित्र नहीं. कोई नहीं. कोई किसी का नहीं..... कोई किसी का नहीं.....!" लेकिन उसके विचार का भाव सहसा एक ढलान की ओर मुड़ गया और उसकी आवाज तेज हो गयी, "भगवान कृष्ण महान हैं, वह मेरे स्वामी हैं. एक बार वे सोये पड़े थे कि अर्जुन और दुर्योधन, युद्ध में उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए आये. अर्जुन उनकी पलंग की पायंती पर बैठ गये और दुर्योधन सिरहाने. जब भगवान की आंख खुली तो अर्जुन से कहने लगे. पहले मैंने तुझे देखा है. बताओ, मेरी सारी सेना चाहते हो या केवल मुझे? दुर्योधन घबरा गया कि कहीं अर्जुन सेना न मांग बैठे, किंतु अर्जुन ने निस्संकोच कहा, "भगवान केवल आपको."

श्रद्धा से द्रौपदी की आवाज मानों गंगा में गोते खा-खाकर अपने पाप धो रही थी.

"महाभारत के उस अध्याय पर पहुंचकर मेरा मन भी सदा अर्जुन के साथ-साथ बोल उठता है——भगवान केवल आपको, मुझे आपकी सारी सेना नहीं चाहिए. आप मुझे केवल अपना आप दे दीजिए.

मैं सोचने लगा कि द्रौपदी भी दुर्योधन की तरह भगवान कृष्ण के सिरहाने बैठी होगी, इसीलिए उसके भाग्य में मर्दों की सारी सेना लिखी गयी. अगर उसे एक भगवान मिल जाता तो वह भी किसी सुहागिनी की तरह जीवन का रण जीत लेती. आज शाम को अपने धंधे पर बाहर निकलने की बजाय वह भगवान कृष्ण की आरती उतारती रहती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचवा अध्याय

दूसरे दिन भी सुबह को द्रौपदी भगवान कृष्ण की आरती उतार रही थी. उसका धुला हुआ गोल, सफेद चेहरा चांदी की बेदाग थाल की तरह चमक रहा था और आंखें घी से भरे हुए दो चिरागों की तरह जल रही थीं. कई दिन से मैं द्रौपदी के बारे में बहुत कुछ सोचने लगा था.

शायद . . . शायद. . . मैं अपना सिर झटक देता—नहीं. . . यह भला कैसे हो सकता है? मुझे उससे मुहब्बत नहीं, मुहब्बत तो कुछ और ही होती है.

आज सुबह काम पर जाने की बजाय मैंने अपना मुंह उसके घर की ओर मोड़ दिया और रास्ते में अपने-आपको समझाता रहा, यह मोहब्बत नहीं, मेरे दिल-दिमाग की एक बेचैन आदत है और बस. . .

वह आरती उतारती रही और भगवान को गा-गाकर बुलाती रही—तुम स्वामी, मैं अबला. . .!

यह आवाज मानो पाप-पुण्य से मुंह छिपाकर अपना गला घोंट लेना चाहती हो.

"द्रौपदी."

वह मेरी और केंद्रित न हुई—तुम स्वामी, मैं अबला. . .

आरती खत्म करके वह मेरी ओर देखने लगी, "आज तुम काम पर नहीं गये?"

"एक बात कहूं द्रौपदी? मेरा खयाल है कि मैं तुमसे मोहब्बत करता हूं."

"क्या इसीलिए काम पर नहीं गये?"

"द्रौप. . . !"

"नहीं, तुम मुझसे मोहब्बत नहीं करते. अपनी कामना से मोहब्बत करते हो."

"द्रौपदी, आओ हम शादी कर लें."

"बड़े भोले हो. शादी भी हम किसी इंसान से नहीं, अपनी इच्छाओं से करते हैं."

"द्रौपदी?"

"मोहब्बत और शादी की बातें केवल कंवारियों का जी बहलाने के के लिए की जाती हैं. एक रंडी पर ऐसी बातों का क्या असर होगा? तुम भले आदमी हो. मेरे पास चले आते हो, यही काफी है. . . ."

मैं उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा.

"जाओ, मामला इतना गंभीर नहीं. मजे से काम पर जाओ, वहां से सीधे यहां चले आना. आज मैं तुम्हारी दुल्हन के सारे फर्ज पूरे कर दूंगी."

छठा अध्याय

आज की रात!

सारी रात मेरे मस्तिष्क में अनगिनत बत्तियों की रोशनी जगमगाती रही और वातावरण बाजों की आवाजों को अपने सीने पर उछालकर बेहाल हो गया. फिर मैंने अपनी दुल्हन का घूंघट उठाया. मेरा भाग्य जाग उठा, बाछें खिल गयीं, यह द्रौपदी थी. मेरी एक रात की दुल्हन!

"द्रौपदी, तुम मुझसे शादी क्यों नहीं कर लेतीं?"

द्रौपदी मुस्कराने लगी, "मैं तुम्हारी दुल्हन ही तो हूं."

"नहीं, मैं सच्चे मन से कह रहा हूं."

"तुम झूठ बोलते हुए मुझे बहुत भले लगते हो." उसने अपनी रंग-बिरंगी चूड़ियोंवाला हाथ मेरे कंधे पर रख दिया.

"यकीन करो द्रौपदी, मैं तुम्हें जीवनभर के लिए अपनी दुल्हन बनाना चाहता हूं."

"लेकिन दुल्हन तो एक ही रात की होती है मेरे दूल्हे, तुम्हें बच्चों की मां से दिलचस्पी है या दुल्हन से ?"

सातवां अध्याय

"ऐसे लाज रखना ऐ भगवान, जैसे माता द्रौपदी की रखी थी."

"द्रौपदी, द्रौपदी के पांच पति थे."

"हां, पांचों पांडव माता द्रौपदी के पति थे."

"अजीब किस्सा है."

"जब राजमाता कुंती को युधिष्ठिर ने बताया कि वह एक बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुआयामी, सार्थक, सही और महत्वपूर्ण कहानी

जोगेंद्र पाल उर्दू के मशहूर कथाकार हैं. उन्होंने अपनी कहानियों में समसामयिक जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं का साहसिक खुलासा किया है. प्रस्तुत कहानी 'महाभारत का दूसरा युद्ध' भी उनकी कहानियों की उसी प्रखर परंपरा की एक कड़ी है.

मिथक कथाओं का उपयोग किसी भी साहित्यिक विधा में किया जा सकता है, लेकिन वे प्रायः प्राचीन काल की देन ही मानी जाती हैं, जिन पर प्राचीन काल का मनुष्य तो विश्वास करता ही था, आज का मनुष्य भी उनसे अपने को अलगा नहीं पाया है. मिथक शायद जनमानस के विश्वास की प्रतीति ही अधिक होते हैं. वही उनका जनक होता है और वही उनका पुरस्कर्ता, लेकिन आधुनिक रचनाकार भी कभी-कभी मिथकों का उपयोग कर अच्छी रचनाओं का सृजन कर लेते हैं, जैसे कि जोगेंद्र पाल की इस रचना के केंद्र में तो आज की स्त्री है, आज का सर्वग्रासी परिवेश है, लेकिन कहानी के साथ अंडरकरंट के रूप में महाभारत की द्रौपदी की कथा निरंतर प्रवाहित है, जो तुलनात्मक तरीके से भारतीय स्त्री की नियति को उजागर करती है.

द्रौपदी कहती है कि तुम मुझसे मोहब्बत नहीं करते, अपनी कामना से मोहब्बत करते हो. . . .बड़े भोले हो. शादी भी हम किसी इंसान से नहीं, अपनी इच्छाओं से करते हैं. मोहब्बत और शादी की बातें केवल क्वांरियों का जी बहलाने के लिए की जाती हैं. एक रंडी पर ऐसी बातों का क्या असर होगा. तुम भले आदमी हो. मेरे पास चले आते हो, यही काफी है." कथानायक जब द्रौपदी के बच्चे की बात सुनता है तो "तुम्हारा बच्चा भी है !" पूछता है.

"हां, और तुम्हारा भी."

"मेरा. . . मेरा संबंध. . . "

"तुम्हारा नहीं तो किसी और का होगा. न जाने किसका होगा, मेरा तो होगा ही. . प्राचीन भारत की द्रौपदी के केवल पांच पति थे, लेकिन वे पांचों पांडव नेक, बहादुर और सीधे-सादे इंसान थे. फिर द्रौपदी का भगवान भी उसके साथ था, लेकिन मैं अकेली अपनी आबरू से इस महाभारत को कैसे जीत सकती हूं ?" द्रौपदी, आज की द्रौपदी यानी समकालीन भारतीय नारी कल की द्रौपदी की तुलना में और-और कमजोर कर दी गयी है. यदि वह पतिहीन हो गयी, बेघर हो गयी तो फिर सिवा तन बेचकर अपना गुजारा करने के और क्या चारा बचता है.

वार्तालाप की शैली में और बड़ी रचना की तरह अध्यायों में, छोटे-छोटे अध्यायों में बांटकर चुस्त और तेज भाषा में लिखी गयी इस कहानी में सहज पठनीयता है यानी कहानी का कहानीपन, जिसके बिना और सब कुछ तो लिखा जा सकता है, अच्छी कहानी नहीं लिखी जा सकती.

मिथ को भंग किये बिना उसके पात्रों पर समकालीन परिवेश और परिस्थितियां चस्पां कर तो समकालीन रचनाएं लिखी ही जाती हैं, मिथक को भंग कर भी अच्छी रचना लिखी जा सकती है, इसका उदाहरण जोगेंद्र पाल की यह कहानी है.

स्त्री असहाय है, इसलिए तन बेचकर रोटी चलाती है. स्त्री मां भी है, इसलिए अपने बच्चे पर यह बात जाहिर नहीं होने देना चाहती. समाज को और मनुष्य की प्रकृति को वह जानती है, इसलिए शादी का प्रस्ताव ठुकरा देती है और आबरूदार है, इसलिए छिपकर धंधा करती है यानी जिस्म का धंधा करने के बावजूद वह बेआबरू नहीं है. यह है लेखक की बहुआयामी रचनादृष्टि, जिससे यह कहानी बहुआयामी, सार्थक, सही और महत्वपूर्ण कहानी की श्रेणी में आ गयी है. □

अनोखी चीज अपने साथ लाये हैं तो राजमाता ने कहा, 'बेटा, इस चीज को पांचों भाई आपस में बांट लो.' आज्ञाकारी बेटे अपनी मां का हुक्म कैसे टाल देते ? उन्होंने द्रौपदी को आपस में बांट लिया और द्रौपदी भी चुपचाप उनमें बंट गयी."

"और यह उसकी लाज का क्या किस्सा है ?"

"एक बार पांडवों से भूल हो गयी और कृष्णजी ने द्रौपदी की रक्षा की."

"किस तरह ?"

"उसे निरावरण होने से बचा लिया."

आठवां अध्याय

एक बार कई दिन बाद जब मैं द्रौपदी के घर में प्रविष्ट हुआ तो वह बड़ी जर्द, निराश और परेशान नजर आ रही थी.

"क्या बात है ?"

"कल यहां सारा मुहल्ला टूट पड़ा, पुलिस भी आयी."

"हुआ क्या ?"

"वही, जो होना था." उसके होंठ कांप रहे थे.

"आखिर हुआ क्या ?"

"मुहल्लेवालों को पता चल गया है कि मैं पेशा करती हूं. वे यह नहीं समझते कि एक गरीब असहाय स्त्री बेकार कैसे रह सकती है. बेचारी पेशा न करे तो अपने बच्चे को बड़ा कैसे करेगी."

"अपने बच्चे को ?"

"हां, मैं एक बच्चे की मां हूं. वह मसूरी में पढ़ता है. वहीं रहता है. मैं अपना पेट तो काट सकती हूं, मगर उसका क्या करूं ?"

"तुम्हारा बच्चा भी है ?"

"हां. . . और तुम्हारा भी !"

"मेरा?" मैं घबरा गया, "मेरा संबंध तो तुमसे केवल दो साल..."

"तुम्हारा नहीं तो और किसी का होगा. न जाने किसका होगा. मेरा तो है ही. मुझे अपनी रुसवाई की परवाह नहीं, लेकिन मेरे जुगनू का क्या बनेगा ?"

"ऐसी लाज रखना जैसे माता द्रौपदी की रखी थी."

सारी दुनिया कौरवों की तरह द्रौपदी का चीर उतारती रही और वह सिर झुकाये कुरुक्षेत्र की सुर्ख-सुर्ख धरती पर अपने जुगनू का खून सूंघने लगी.

"मैं नहीं चाहती कि मेरा बेटा भी मुझे देख ले, मेरा बेटा. . ." उसका करुणाजनक मौन सारी नस्ल से संबोधन था, मैं नंगी नहीं हूं, मैं नंगी नहीं हूं.

द्रौपदी आशापूर्ण खड़ी थी ताकि उसके असंख्य पतियों में से कोई आगे बढ़कर उसे संभाल ले.

प्राचीन भारत की द्रौपदी के केवल पांच पति थे, लेकिन वे पांचों पांडव नेक, बहादुर, सीधे-सादे इन्सान थे. फिर द्रौपदी का भगवान भी उसके साथ था. ऐसी दशा में स्त्री के लिए अपनी आबरू संभालना मुश्किल नहीं होता.

द्रौपदी ने करुणापूर्ण आंखों से मेरी ओर देखा और पराजित स्वर में बोली, "मैं अकेली अपनी आबरू से इस महाभारत को कैसे जीत सकती हूं ?" □

अनुवाद : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिदूत

वीरेंद्रकुमार जैन

स्त्री न तो किसी पुरुष का धन है, न संपत्ति, न जरखरीद गुलाम. . . वह भी पुरुष के समान एक सजीव मानुषी है. . . अपने स्व. को अपनी तरह जीने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र. . . फिर क्यों सुदूर अतीत से वर्तमान तक पुरुष उसके 'स्व' को स्वीकार नहीं पाया. . .? क्या इसके लिए स्वयं स्त्री दोषी है. . .या समाज. . .?

वीरेंद्रकुमार जैन ने ऐसी ही प्राचीन कथाओं को अपने लेखन का आधार बनाया है जो आज भी प्रासंगिक तो हैं ही हमारी संस्कृति की सोच और समझ में आये ठहराव, परिवर्तन को भी रेखांकित करती हैं. प्रस्तुत उपन्यास, महाबलि हनूमान की मातुश्री अंजना के बहाने आज की अन्याय की शिकार स्त्री की दुर्दशा अपने में समेटे है. . .

नवयुवा कुमार पवनंजय का जी इन दिनों घर में नहीं है. जब-तब महल की छत पर आ खड़े होते हैं और दक्षिण पवन पर चढ़कर नीली क्षितिज-रेखा को लांघ जाना चाहते हैं.

कुमार पवनंजय ने अपने पिता, आदित्यपुर के महाराज प्रह्लाद से कैलास जाने की आज्ञा चाही. पिता प्रसन्न हुए और सपरिवार स्वयं भी चलने का प्रस्ताव किया. कुमार के स्वच्छंद भ्रमण के सपने को ठेस लगी, पर क्या कहकर इनकार करते ? रानी केतुमती, कुमार और समस्त राज परिवार सहित महाराज कैलास वंदना को गये. लौटते हुए राज परिवार ने मानसरोवर के तट पर कुछ दिन वसंत विहार करने का निश्चय किया.

एक दिन सवेरे उठकर क्या देखते हैं कि बहुत दूर मानसरोवर के कछार में एक फेनों-सा उजला महल खड़ा है. अनुमान से जाना कि विद्यानिर्मित महल है, कोई विद्याधर राजा वहां आकर ठहरे हैं.

इधर लहरों पर खेलना ही पवनंजय का प्रिय उद्योग हो गया है. बिना किसी से कहे, अकेले ही तट पर जा पहुंचे. नाव पर आरूढ़ हो बड़ी तेजी से डांड चलाने लगे. . .आती हुई तरंगों को भुजाओं में समेट लेना चाहते हैं, पर जैसे उन पर उनका वश नहीं है.

. . . अब तो कुमार का उत्तरीय भी नहीं दीख पड़ता, नाव भी नहीं दिखाई पड़ती, केवल वे आकाश की ओर उठी हुई भुजाएं हैं, जिनमें अनंत लहरें खेल रही हैं.

एकाएक एक अतिकरुण कोमल 'आह' ने स्तब्ध दिशाओं को गुंजा दिया. कुमार की दृष्टि ऊपर उठी. उस महल की सर्वोच्च अटारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक नीलांबर उड़ता दिखाई दिया और वेग से हिलते हुए दो आकुल हाथ अपनी ओर बुला रहे थे. संध्या की उस शेष गुलाबी आभा में कोई मुखड़ा और उस पर उड़ती हुई लटें. . .

पहर रात जाने तक भी कुमार आज सो नहीं सके हैं. शय्या त्यागकर भ्रमण को चल पड़े. महाराज के डेरे के पास से गुजर रहे थे कि कुछ बातचीत का रव सुनाई पड़ा. पास जाकर सुना शायद पिता कह रहे थे, "उन सामने के महलों में विद्याधरराज महेंद्र ठहरे हैं. दंति-पर्वत की तलहटी में स्थित महेंद्रपुर नगर के वे स्वामी हैं. रानी हृदयवेगा, अरिदम आदि सौ कुमार और कुमारी अंजना साथ है. अंजना अब पूर्ण यौवना हो चली है. महाराज महेंद्र उसके विवाह के लिए चिंतित हैं. जब से उन्हें पता लगा है कि कुमार पवनंजय अभी क्वांरे हैं तभी से वे बहुत अनुरोध-आग्रह कर रहे हैं. वे तो अपनी ओर से निश्चय ही कर चुके हैं. कहते हैं कि विवाह मानसरोवर के तट पर ही होगा."

लक्ष्यहीन कुमार झील के तट पर आतुर पैरों से भटक रहे हैं. लहरों के गंभीर संगीत में अंतर की वह आकुल पुकार अशेष हो उठी है. और चारों ओर संध्या की उस 'आह' को खोज रही है.

कुमार के हृदय का कोई भी रहस्य प्रहस्त से छुपा नहीं है. बालपन से ही वह उनका अभिन्न सहचर है. . . पिछले तीन दिन से कुमार की विकलता को वह देख रहा है. केवल एक बार अवसर पाकर, वह कुमार के मन की टोहभर पा लेना चाहता था, आज सांझ वह प्रसंग आ उपस्थित हुआ.

बिना किसी वितर्क के मौन-मौन ही कुमार प्रहस्त के अनुगामी हुए. थोड़ी ही देर में यान पर चढ़कर, आकाश-मार्ग से प्रहस्त और पवनंजय विद्याधर राज के महल की अटारी पर जा उतरे. एक झरोखे में जहां मानिक-मुक्ताओं की झालरें लटकी थीं, उसी की ओट में दोनों मित्र जा बैठे.

सामने जो दृष्टि पड़ी तो पवनंजय पता पूछने की बात भूल गये. अंतर्मुहूर्त मात्र में मानो दूसरे ही लोक में आ गये हैं. सौंदर्य के किस अज्ञात सरोवर में खिला है यह रूप का कमल !

सखियों से घिरी अंजना जानु मरोड़कर एक हाथ के बल बैठी थी. चंचल हास-परिहास के बाद अभी कुछ ऐसा प्रकरण आ गया है कि अंजना कुछ गंभीर हो गयी है.

वसंतमाला ने बड़े दुलार से अंजना का एक हाथ खींचते हुए कहा, "ओ अंजन, नाम आते ही गायब हो रही है. पा जायेगी तब तो शायद दुर्लभ हो जायेगी. पर कितना सुंदर नाम है. पवनंजय-कुमार पवनंजय. उस दिन मानसरोवर की उन उत्ताल तरंगों पर संतरण करता वह कुमार सचमुच पवनंजय था. बड़े भाग्य हैं तेरे अंजन जो पवनंजय-सा कुमार पा गयी है तू."

वसंतमाला अंजना की सब से प्रियतमा सखी है. अंजना चित्र-लिखी-सी बिल्कुल अवश, मुग्ध बैठी रह गयी. तभी एक दूसरी सखी मिनकेशी ईर्ष्या से मन ही मन जल उठी और बोली, "हेमपुर के युवराज विद्युत प्रभ के सामने पवनंजय क्या चीज है. . . महाराज ने अंजना का विवाह उनके साथ न किया, यह अविचार है. क्षुद्र पवनंजय का आजीवन संग भी व्यर्थ है, और विद्युतप्रभ जैसे पुरुषपुंगव का क्षणभर का संग संपूर्ण जीवन की सार्थकता. . . "

अंजना अब भी इतनी विभोर थी कि जैसे इन कटु-कठोर वचनों को उसने सुना ही नहीं.

. . . पर मणि-मुक्ता की झालरों की ओट के उस झरोखे में ? . . . पुरुष के अहं-दुर्ग की बुनियादें हिल उठीं ! और फिर पवनंजय तो विजेता का गर्व और चुनौती लेकर आये थे. . .पुरुष के गर्व के उस शिखर पर से, मानवी नारी के मौन समर्पण की कथा वे कैसे समझते?

और ऐसा विजेता जब नारी के प्रणय-द्वार पर आकर अनजाने ही अपने 'मैं' को हार बैठा, तब उसकी ऐसी अवज्ञा? मिश्रकेशी ने कुमार पवनंजय के लिए निदारुण अपमान के वचन कहे और अंजना वैसी ही चुप मुसकाती सुनती रही?

कुमार ने प्रहस्त को चलने का इशारा किया और उत्तर के लिए ठहरे बिना ही विमान में जा बैठे. क्रोध से उनका रोम-रोम जल रहा था.

अपने डेरे पर आकर कुमार ने आदित्यपुर जाने की घोषणा कर दी. विवाह की तैयारियों में जुटे दोनों पक्ष के लोग यह सुनकर हैरान रह गये. अंजना ने यह अमंगलकारी समाचार सुना तो वह निढाल हो गयी. पर किसी तरह समझा-बुझाकर प्रहस्त ने कुमार को रोक लिया और मानसरोवर के तट पर ही अंजना-पवनंजय का विवाह हुआ.

राज परिवार में बिजली की तरह खबर फैल गयी—'देव पवनंजय ने नवपरिणीता युवराज्ञी अंजना का परित्याग कर दिया !'

और दिन चढ़ते-न-चढ़ते संपूर्ण आदित्यपुर नगर इस संवाद को पाकर स्तब्ध हो गया. यह कोई उड़ती हुई खबर नहीं थी. यह कुमार द्वारा स्वयं घोषित की गयी घोषणा थी.

महादेवी केतुमती के आंसुओं का तार नहीं टूट रहा है. महाराज प्रह्लाद राज-मंत्रियों के साथ सवेरे से मंत्रणा-गृह में बंद हैं. महाराज ने सवेरे ही स्वयं महामंत्री सौमित्रदेव को भेजा था कि जाकर वे पवनंजय को लिवा लायें. पर महामंत्री निराश लौटे, कुमार महल में नहीं थे.

छतवाले उसी शयन-कक्ष में जिसमें रात-भर सुहाग शय्या पर बैठी वह पति-परमेश्वर की प्रतीक्षा करती रही थी, बीच के बिल्लौरी सिंहासन की दायीं पीठिका के सहारे अंजना अधलेटी है. पीछे वसंत है. अंजना के माथे पर हलके से हाथ फेरती हुई वसंत बोली, "अंजन, तेरे हृदय के अमृत तक नहीं पहुंच सका वह अभागा पुरुष! इसी से तो झुंझलाहट की एक ठोकर शून्य में मारकर वह चला गया है ! . . ."

अबोध बालपन से ही कुमार में एक जिजीविषा जाग उठी थी. वह विजेता होगा! वय विकास के साथ यह उत्कंठा एक महत्वाकांक्षा का रूप लेती गयी. ज्ञान-दर्शन ने सृष्टि की विराटता का वातायन खोल दिया. युवा कुमार की विजयाकांक्षा सीमा से पार हो चली. मन ही मन वह सोचता—वह निखिलेश्वर होगा—वह तीर्थंकर होगा !

अंजना ने पाया, अंतर के क्षितिज पर एक नवीन बोध का प्रभात फूट रहा है. ममत्व के इस नीड़ में अब वह प्रश्रय नहीं खोज सकेगी. मोह की वह रात्रि अब तिरोहित हो गयी है. नवीन प्रकाश के इस अनंत में उड़ने को अब वह स्वतंत्र है. प्रेम ममत्व नहीं है. दुख और वेदना की यह मोहिनी ममत्व की प्रसूता है. . .

मृगवन से संध्या का सामायिक कर अंजना अपने महल को लौटी. ऊपर आकर उसने पाया, उसके कक्ष में महादेवी केतुमती बैठी हैं. राजमाता गंभीर और चुप हैं, जब से वह इस महल में राज-वधू बनकर आयी है, इतने वर्ष निकल गये हैं, महादेवी यहां कभी नहीं आयीं. यहां जो ज्वाला निर्धूम जल रही है, उसे देखने की शक्ति शायद राजमाता की नहीं थी. पर आज. . . ?

गंभीर स्वर में महादेवी ने स्तब्धता भंग की. "देखती हूं बेटी, तुम्हारा चित्त महल में नहीं है. कुल के परिजनों से नाता-स्नेह नहीं रहा ? . . . .पर राजकुल की मर्यादा लोप हो गयी है! लोक में अपवाद हो रहा है. तब आना हुआ . . .

"मृग-वन के सीमांत पर तुम सामायिक करने जाती थीं, सुना, तो सोचा कोई बात नहीं है. . . पर भील कन्याएं तुम्हारी सहचरी हो गयीं ! यहां की प्रतिहारियों और सखियों का संग तुम्हें असह्य हो गया ! फिर तो गोप-बस्तियों, कृषक-ग्रामों और राज-सेवकों की वसतिकाओं में भी तुम्हारा स्वच्छंद विचरण शुरू हो गया. सुनकर विश्वास नहीं हुआ. सब पीती ही गयी हूं. पर आज समस्त आदित्यपुर नगर में राज-वधू के स्वैर-विहार पर चर्चाएं हो रही हैं ! और इस वेष में. . . .? अपने लिए न सही, पर इस घर की लाज तुम्हें निभानी थी. . . तुम्हारे दुख से मेरा दुख अलग नहीं है, पर कहे बिना रहा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच पुरुषों की कामिनियां

▣ दुर्गा भागवत

द्रौपदी के पांच पति थे. इस विषय में अनेक अध्येताओं ने किसी न किसी प्रदेश अथवा जाति में प्रचलित बहुपतित्व की प्रथा का उल्लेख कर उसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है. मुझे उन व्याख्याओं की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती. द्रौपदी का इस अवस्था का जो उल्लेख मात्र संयोगवश महाभारत में आ गया है, उसमें मुझे एक रहस्य दृष्टिगोचर होता है. कहना न होगा कि वह रहस्य भी व्यास ने इंगित भर किया है और बात समाप्त कर दी है. कुंती और द्रौपदी सास-बहू हैं. अर्थात् समान वंश के संवर्धन का उत्तरदायित्व उठाये हुए हैं. कुंती अपने वरदान के बल पर देवताओं को कामपूर्ति के लिए बुला सकी थी. परंपरा में एक सूक्ति चलती है : 'द्रौपदी पांच पुरुषों के लिए काम्य सिद्ध हुई और कुंती भी.' इस सूक्ति ने, अनजाने, दोनों के मानसिक व दैहिक साधर्म्य का उल्लेख कर दिया है. दोनों के हृदयों की गढ़न इस विषय में एक समान थी. कुंती की नियोजक संतानों के वंश का पालन-पोषण द्रौपदी जैसी एक नारी करती है—यह मात्र संयोग नहीं है, यह एक अनुक्त संकेत है, जिसे व्यास ने इस प्रकार प्रयुक्त किया है कि सामान्तः समझ में नहीं आ सकता; मुझे तो यही लगता है. क्योंकि इस धागे को जरा और ताना होता तो भी कुंती और द्रौपदी के व्यक्तित्व का समग्र सौंदर्य तथा औचित्य विनष्ट हो जाता. इसीलिए व्यास ने कुंती के इर्द-गिर्द सतत दुख के चक्र को चलाया है और दिखाया है कि द्रौपदी इंद्राणी का अंश है. इंद्र अनेक हैं—इंद्राणी एक है—यह पुरातन संकेत है; द्रौपदी के संदर्भ में व्यास ने कैसी चतुरता से उसका प्रयोग किया है ! पांडव कुंती के बेटे थे इसी कारण उन्हें द्रौपदी के साथ ऐसा समान संबंध स्थापित करना काम्य जान पड़ा, संभव प्रतीत हुआ—यह भी एक सत्य ही है. □

जाता. क्या यह भूल गयी हो अंजना कि तुम परित्यक्ता हो? पदच्युता हो ? किस के गर्व पर तुम्हारे ये स्वच्छंद क्रीड़ा और विहार ? जो चाहो करो, पर कुल की मर्यादा नहीं लोपी जा सकेगी. . . !"

अंजना अचल बैठी थी, पर भीतर उसके भूचाल था. उत्तर देने की चेतना उसमें नहीं थी. . .

विजयार्ध के पार्वत्य प्रवेश-तोरण पर युद्ध-प्रस्थान के दुंदुभि-घोष गूंज रहे हैं. कुमार ने इस अप्रत्याशित युद्ध-घोषणा का कारण पूछा. मालूम हुआ कि पाताल-द्वीप के राक्षस-वंशीय राजा रावण ने अपने दैवाधिष्ठित रत्नों के गर्व से मत्त होकर वरुण-द्वीप के राजा वरुण पर आक्रमण किया है. युद्ध बहुत भीषण हो उठा है. आदित्यपुर वर्षों से पातालाधिपति की मैत्री के सूत्र में बंधा है. रावण का राजदूत संदेश-पत्र लेकर आया है, उसी युद्ध में जाने के लिए आज आदित्यपुर के सीमांतर पर सैन्य सज रहा है. . . स्वयं महाराज जा रहे हैं. कुमार सुनकर आतुर हो गये.

अगले ही क्षण कुमार महाराज के सम्मुख थे. "आज्ञा दीजिए देव, रणांगण में जाने को सेवा में उपस्थित हूं. . . मेरे होते आप रणांगण में जायें? वीरत्व के भाल पर कालिख लग जायेगी. आज्ञा दीजिए!"

"समूचे विश्व की जय-लक्ष्मी का वरण करो बेटा !" पादस्पर्श के लिए झुके पवनंजय के सिर पर हाथ रख पिता ने कहा और बूढ़ी आंखों के पानी में अनुमति साकार हो गयी.

योगायोग-सैन्य ने मानसरोवर के तट पर जाकर ही पहला विश्राम किया. पवनंजय अकेले ही घूमने निकल गये. तट के करीब एक अकेली चकवी की छटपटाहट ने जैसे सोये हुए कुमार को जगा दिया. कुमार ने अपने दिल का हाल, अपने दिल की टीस, दिमाग का नासूर सब कुछ अपने मित्र प्रहस्त के सामने कह डाला. प्रहस्त स्तंभित रह गया सुनकर—अहं की इस जरा-सी फांस में इतना बड़ा अनर्थ घट गया.

". . . पवन, युद्ध को पीठ देकर क्षत्रिय को लौटना संभव नहीं है. . ."

"पर इस क्षण ये प्राण मेरे हाथ में नहीं हैं. प्रहस्त . . . !"

"तो एक ही रास्ता है, पवन, अभी-अभी आकाश-मार्ग से चलकर चुपचाप रत्नकूट प्रासाद की छत पर जा उतरना होगा. गुप्त रूप से वहां रात बिताकर दिन उगने के पहले ही यहां लौट आना होगा . . ."

जाने कब अंजना ने आकर कुमार के पैरों को अपनी भुजाओं में थाम लिया. पवनंजय का रोयां-रोयां अनंत अनुताप के आंसुओं से भर आया. पैरों में पड़ी उस विपुल केशराशि में अस्तित्व विसर्जित हो गया. बोले, "जन्म-जन्म अपराधी को . . . और अपराधी न बनाओ! . . . कई जन्म धारण करके भी, इस पाप का प्रायश्चित शायद ही कर सकूं. ऐसा निदारुण पापी, यदि हिम्मत करके शरण आ गया है तो क्या उस पर दया न कर सकोगी . . . ?"

एकाएक अंजना पैर छोड़ उठ खड़ी हुई और बिना सिर उठाये ही एक हाथ की हथेली से पवनंजय के बोलते होंठों को दबा दिया.

अंजना के दोनों हाथों को अपनी हथेलियों से अपने हृदय पर दाब कर, एक सांस से पवनंजय उस अभागी रात की कथा सुना गये . . .

"अपना ही प्यार जब शत्रु बन बैठा, तो वह मेरे ही कर्म का दोष था. मैं अपने ही सुख में ऐसी बेसुध हो रही थी कि अपने ही सामने होने वाले तुम्हारे ऐसे घोर अपमान का भान तक मुझे नहीं रहा . . . आज भाग्य जागा कि तुम आये, तुमने परदा उठा दिया!"

राज-द्वार पर दूसरे पहर का मंगल-वाद्य बज उठा!

अंगड़ाई भरते हुए, सहज इष्ट-देव का नामोच्चार करते पवनंजय उठ बैठे. सामने था वही मुसकराता हुआ सती का अनिंद्य उज्ज्वल मुख.

"दिन उगने को है—जाने की तैयारी करो, अब देर नहीं है."

स्नेह के उन्मेष में अंजना की चिबुक पकड़कर बोले पवनंजय, "जाने को कहोगी तुम्हीं . . . ?"

"अपनी विवशता जानती हूं न . . . हां, मेरी एक बात मानोगे . . . मेरी शपथ खाकर जाओ कि अनीति और अन्याय के पक्ष में—मद और मान के पक्ष में तुम्हारा शस्त्र नहीं उठेगा! क्षत्रिय का रक्षा-व्रत विजय के गौरव और राज-सिंहासन से बड़ी चीज है!"

पवनंजय की शिरा-शिरा एक तेजस्वी वीर्य से ओतप्रोत हो उठी. कंधों पर पड़े अंजना के दोनों हाथों को हाथ में लेकर चूम लिया और बोले, "मुझे शपथ है इन हाथों की, और इन हाथों का आशीर्वाद ही सदा मेरी रक्षा भी करेगा . . ."

उल्लसित हो पवनंजय उठ बैठे और प्रयाण की तैयारी करने लगे. पति के एक हाथ को धीरे से अपने हाथ में लेकर अंजना बोली, "सुनो, मेरी विवशता की कथा भी सुनते जाओ . . . दुनिया की आंखों की ओट तुम कब मेरे पास आये और कब चले गये, यह सब तो कोई नहीं जानता और न ही जानेगा. तब पीछे से किसी दिन कुछ हुआ तो . . . परित्यक्ता अंजना पर कौन विश्वास करेगा?"

पवनंजय के भीतर असीम उल्लास का वेग था. तुरत भुजा पर से वलय और उंगली से एक मुद्रिका निकालकर अंजना के हाथों में देते हुए बोले, "मुझे लौटने में क्या देर लगने वाली है? फिर भी अपने मन के विश्वास के लिए चाहे तो यह रख ले."

वलय और मुद्रिका हाथ में लेकर फिर अंजना ने पैर छू लिए और उठकर बोली, "निश्चित होकर जाओ, मन में कोई खटका मत रखना . . ."

पौ फटते-फटते यान दृष्टि से ओझल हो चला. अंजना और वसंत छत पर खड़ी एकटक देखती रहीं.

पलक मारते दिन बीतने लगे. कोई समाचार आदित्यपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नहीं आया. अभी कुछ दिन पहले केवल इतना ही सुना था कि युद्ध बहुत भयंकर हो गया है . . . सुलझने के कोई चिह्न अभी नहीं दीखते.

. . . अंजना के शरीर में गर्भ के चिह्न प्रकट हो चले . . . कानोंकान बात सारे अंतपुर में फैल गयी . . . राज परिवार में दबे-छुपे चर्चाएं होने लगीं. महादेवी ने सुना और सुनकर दोनों कानों में उंगलियां दे लीं.

अगले दिन सवेरे ही रानी रत्नकूट प्रासाद पर जा पहुंची . . .

"राक्षसी, कलंकिनी . . . ओ पापिन . . . दूर हट . . . दूर हट . . ."

वसंत ने राजमाता के पैर पकड़ लिये. उन्हें शपथें दिला-दिलाकर उसने उस रात की कथा कह सुनायी. प्रमाण-स्वरूप अंजना के हाथ में से वलय और मुद्रिका निकालकर दिखाये. परिणाम और भी उलटा हुआ.

"छिः कुटिनी, तू ही माया न रचेगी तो और कौन रचेगा? जाओ, इसी क्षण जाओ, निकलो मेरे महल से! . . ."

फिर झपटती हुई राजमाता बाहर निकलीं. सारथी को बुलाकर आज्ञा दी, "सुनो अक्रूर, महेंद्रपुर की सीमा पर इन दोनों को छोड़कर शीघ्र आओ, और मुझे आकर सूचित करो!"

महेंद्रपुर के सीमा-स्तंभ के पास आकर रथ रुका और उन्हें वहीं छोड़ वापस चला गया. दोनों सखियां पास ही के वन में बने एक भिक्षुणी आवास में जा पहुंचीं. फिर अंजना को वहीं छोड़ वसंत राजमहल गयी.

वसंत से सब वृतांत सुन महाराज पर जैसे वज्र टूट पड़ा. "आह अंजना, दोनों कुलों को डुबा दिया तूने! . . . दूर हट निर्लज्जे, सामने से जा. तुम दोनों जाकर कहीं डूब मरो! जा निर्लज्जे, परे हट . . . अनर्थ न हो जाये . . . क्षत्रिय का शस्त्र स्त्रीघात का अपराधी न बन जाये . . . नहीं तो तुम दोनों को . . . ओफ् . . . !"

चिंतातुर और क्षुब्ध हृदय से भागती हुई वसंत सीधी भिक्षुणी-आवास को लौट आयी.

अंजना के सो जाने पर बड़ी रात तक वसंत की आंखों में नींद नहीं थी . . . अब कहां जाना होगा, क्या करना होगा? क्या है अब भाग्य का विधान? गर्भ के भार से पीड़ित, घायल, चारों ओर से त्यक्ता और अपमानित सोयी है यह भोली लड़की.

सवेरे ब्रह्म मुहूर्त में दोनों बहनें उठीं, नदी तीर पर जाकर शुचि स्नान किया. पास ही पेड़ों तले, नित्य-नियमानुसार सामायिक में प्रवृत्त हुईं. अंजना ने देखा कि पथ की रेखा अंतर में प्रकाशित हो उठी है. दुविधा का कोई कारण नहीं है. वसंत उठने पर बोली, "कहां जाना होगा अब?"

तपाक् से उत्तर आया, "वन की राह पर, जहां सबका अपना राज्य है. जीवन वहां नग्न और निर्बाध है . . . वहीं होगा अपना वास, बहन!"

वसंत ने सोच लिया कि इस लड़की से निस्तार नहीं है . . . और वे वन में जगह-जगह आवास बदलती रहीं रहीं महीनों तक. कंदमूल भोजन और जंगली जानवर साथी थे उनके. एक रोज एक मुनि से भेंट हो गयी. उन्होंने कहा, "कल्याणी, शोक न करो. महेंद्रपुर की राजकुमारी अंजना लोक की सतियों में शिरोमणि है. और इसके गर्भ का जीवन पापी नहीं, वह अप्रतिम पुण्य का स्वामी लोक का शलाका-पुरुष होगा."

"जीजी . . ."

गुफा में से वसंत बाहर दौड़ी आयी. अंजना की सारी देह और चेहरा एक प्रखर वेदना से तपाये सोने-सा चमक रहा था. वसंत तुरंत समझकर सावधान हो गयी.

. . . पर्वत के शृंग पर स्वर्ण के समुद्र में से सूर्य का लाल बिंब झांक उठा. ठीक उसी क्षण अंजना ने पुत्र प्रसव किया. उजाले से सारी गुहा झलमला उठी. . . . अंजना ने पुत्र का मुख देखा. निमिष भर—एकटक वह देखती ही रह गयी—आह, वही सौंदर्य!

. . . दोपहर ढल रही थी कि अचानक आकाश की ओर वसंत की निगाह खिंची. प्रभा के पुंज-सा एक विमान नीचे की ओर आ रहा है. वसंत अनेक भय और आशंकाओं से भर उठी. . . 'वैरी है या आत्मीय?'

ऊपर विमान के आरोही विद्याधर के मन में भी यही प्रश्न था—'असाधारण योगायोग है. वैरी या आत्मीय?' इसी से उसका विमान अटका है और वह नीचे उतरने को बाध्य हुआ है.

थोड़ी ही देर में विमान नीचे उतरा. विद्याधर और विद्याधरी अचानक गुफा के द्वार पर जा पहुंचे. वसंत से उसका, अंजना और बच्चे का परिचय पाते ही विद्याधर अपने को संभाल न सका . . . "हाय बेटी अंजना . . . तेरे ऐसे भाग्य . . . ? यह क्या अनर्थ घट गया?" विद्याधर ने अपना परिचय दिया. उसने बताया कि वह राजा चित्रभानु और रानी सुंदमालिनी का पुत्र प्रतिसूर्य है. हनुरुहद्वीप का वह राजा है और अंजना उसकी भांजी होती है . . .

हनुरुहद्वीप में ग्यारह दिन तक अंजना के पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया. और यहां जन्मोत्सव होने के उपलक्ष्य में बालक का नाम रखा गया—हनुमान!

राजांगन में प्रवेश करते ही विजयी पवनंजय ने महावत को कुछ संकेत कर दिया. उनका समस्त मन-प्राण अंतर के एक अथाह शून्य में गोते लगा रहा है.

रत्नकूट प्रासाद में आकर पवनंजय ने देखा विशाल द्वार के कांसे के कपाट बंद हैं, उनकी बड़ी-बड़ी अर्गलाओं में ताले पड़े हुए हैं . . . उन्मत्त की तरह झपटते हुए कुमार माता के महल की ओर चल पड़े . . .

"मां . . . लक्ष्मी कहां है? नहीं लगायेगी वह मुझे जय तिलक . . . ? उसे जल्दी बुलाओ मां . . . मैं तुम्हें अभी सब बातें बता दूंगा . . . लज्जावश शायद वह तुम से कुछ न कह सकी हो . . . देर न करो मां . . ."

रानी बेसुध-सी हो पुत्र की ओर बढ़ी और उसे अपनी दोनों बांहों से छाती में भरकर रो उठी. पवनंजय मां के आलिंगन में मूर्छित हो गये. हृदय पर पहाड़ रखकर प्रहस्त ने उस अपराधिनी पुण्य-रात्रि का वृत्त सुना दिया. सुनकर महाराज क्षणभर को स्तंभित से रह गये!

अचानक पवनंजय को चेत आया . . . "ओह मां, उसे बुलाओ मां . . . तुम नहीं जानती उस सौभाग्य-रात्रि की बात . . ."

". . . सुन चुकी हूं बेटा, सब सुनकर भी जीवित हूं मैं हत्यारी . . . अनर्थ घट गया मेरे लाल . . . छाती में लात मारकर मैंने लक्ष्मी को ठेल दिया है. मैंने सती पर कलंक लगाकर उसे घर से निर्वासित कर दिया है . . . मुझे क्षमा कर दे बेटा . . ."

कुमार यकायक गरज उठे, "उठो प्रहस्त, उठो, देर हुई तो ब्रह्मांण विदीर्ण हो जायेगा. . . . तुरत वाहन प्रस्तुत करो, समय नहीं है . . ."

महेंद्रपुर से यह मालूम होने पर कि पांच महीने पहले अंजना यहां आयी थी मगर पिता ने मुंह देखने से इनकार कर दिया था, फिर कहां चली गयी, मालूम नहीं . . . पवनंजय स्तब्ध रह गये . . . और फिर प्रहस्त को भी विदा कर अकेले ही अंजना की खोज में निकल पड़े . . . महीनों भटकते रहे . . . जंगलों में . . .

. . . एक वासंती प्रभात के नये आलोक में, एक चिर-परिचित स्पर्श से सिहरकर उसने आंखें खोलीं . . . "पवनंजय . . . !"

परिचित कंठ! विद्युत के एक झटके के साथ पवनंजय को स्पष्ट दीखा, सामने पिता खड़े हैं. उनकी बगल में खड़े हैं राजा महेंद्र और प्रहस्त. उधर एक ओर दो यान खड़े हैं. फिर मुड़कर उठानेवाले की ओर देखा. उस अपरिचित सौम्य-चेहरे को वे ताकते रह गये, पर पहचान न सके.

प्रतिसूर्य हंसकर स्वयं ही अश्रु गद्गद् कंठ से बोले, "चौंको नहीं बेटा, सचमुच तुम मुझे नहीं जानते. मैं हूं अंजनी का मामा प्रतिसूर्य—हनुरुहद्वीप का राजा. अंजना और तुम्हारा आयुष्मान पुत्र हनुमान मेरे घर सकुशल हैं. जब से तुम्हारे गृह-त्याग का वृत्त सुना है, अंजना ने अन्न-जल त्याग दिया है. संज्ञाहीन और विकल होकर दिन-रात वह तुम्हारे नाम की रट लगाये है. तुरंत चलो बेटा, एक क्षण भी देर हो गयी तो वह जन्म-दुखियारी तुम्हारा मुंह देखे बिना ही प्राण त्याग देगी . . ."

विह्वल हो पवनंजय प्रतिसूर्य से लिपट, फूट-फूटकर रोने लगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथक क्या है

मिथक क्या हैं, हमारे जीवन से उनका क्या संबंध है, वह कितने उपयोगी या अनुपयोगी हैं? रचनाकार, आलोचक और दार्शनिक उन्हें किस रूप में परिभाषित करते हैं? आदि प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर—

आदिम मनुष्य की भाषा

▣ डॉ. बच्चन सिंह

अंग्रेजी शब्द 'मिथ' को ही हिंदी में 'मिथक' कहा जाता है. मिथक के अतिरिक्त इस शब्द के लिए दंतकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा और पुराख्यान शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, पर अब 'मिथक' शब्द सर्वमान्य हो गया है. 'मिथ' यूनानी 'माइथोस' से निकला है. 'माइथोस' का अर्थ है अतर्क्य आख्यान. 'माइथोस' का विलोम है 'लागोस' यानी तार्किक संलाप. मिथक में तर्क की कोई संगति नहीं होती. इसमें व्यक्त भावनाओं, विचारों और घटनाओं के संबंध-सूत्र अत्यधिक उलझे हुए, तर्केतर और गड्डमड्ड होते हैं. मनोविज्ञान, नृतत्वशास्त्र और प्रतीकों के माध्यम से इसके उलझे हुए सूत्रों को सुलझाने का प्रयास किया गया है.

मिथक आदिम मनुष्य की भाषा है, जिसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को अलौकिक कथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता था. यह आदिम यथार्थ के प्रति सामूहिक अचेतन मन का सहजस्फूर्त विवात्मक सृजन है. सूर्य का उगना, चंद्रमा की शीतलता, बादलों की उमड़-घुमड़, बिजली की चमक, फसलों का उगना आदि उसकी दृष्टि से विस्मयात्मक, रोमांचकारी और रहस्यात्मक व्यापार थे. इन्हीं व्यापारों के इर्द-गिर्द मिथक-चक्र घूमा करता था.

मनोवैज्ञानिकों में फ्रायड और युंग ने अपने-अपने ढंग से मिथक को अर्थ देने का प्रयास किया है. दोनों की दृष्टि में यह अवचेतन मन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है. फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का मूलाधार अवदमित यौन भावनाएं हैं. मिथक भी आदिम मनुष्य की दमित यौन भावनाओं का प्रतीकमूलक व्यक्तीकरण है. युंग मानस के तीन स्तरों का उल्लेख करता है—चेतन, वैयक्तिक अवचेतन और सामूहिक अवचेतन. सामूहिक अवचेतन को प्रजातीय भी कहता है. वैयक्तिक अवचेतन सतह पर रहता है. शैलीविज्ञान की शब्दावली में यह 'सरफेस स्ट्रक्चर' है. सामूहिक अवचेतन अत्यंत गंभीर और व्यापक होता है. इसे 'डीप स्ट्रक्चर' कहा जा सकता है. सामूहिक अवचेतन में देश-कालातीत संस्कार समाहित रहता है. इसे वह आदिम बिंब भी कहता है. वह कहीं न कहीं आज भी हमारे मन में दुबका हुआ है और कल भी निःशेष नहीं होगा. प्रजातीय अवचेतन का आदिम बिंब मिथक है.

समाजशास्त्री और नृतत्वशास्त्रवेत्ता मिथक का जो विश्लेषण करते हैं, वह मनोवैज्ञानिकों से भिन्न है. फ्रांसीसी समाजशास्त्री दुर्कहीम के मतानुसार मिथक का संबंध प्रकृति से नहीं, समाज से है. उसके बुनियादी अभ्युद्देश्य प्रक्षेपित सामाजिक जीवन के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं. मलिनोव्स्की का कहना है कि मिथक न तो प्रकृति के प्रति चमत्कारिक प्रतिक्रिया है और न विगत का आलेख.

उसका प्रयोजन सामाजिक व्यवस्था का सरंक्षण और संचालन है. उसके अध्ययन को प्रकार्यवादी अध्ययन कहा जाता है, जो मूलतः मानवतावादी है.

प्रसिद्ध नृतत्वशास्त्रवेत्ता लेवी स्त्रोस मिथक को विशुद्ध मानसिक रूपात्मक क्रिया कहता है. न तो सामाजिकता और ऐतिहासिकता से उसका कोई संबंध है और न मानवीयता से. वह आदिम संस्कृतियों की संरचना का तुलनात्मक अध्ययन करता है.

('हिंदी आलोचना के बीज शब्द' से)

सृष्टि के साथ मनुष्य के संबंध की व्याख्या का प्रयास

▣ डॉ. नगेंद्र

पुराणकथा, धर्मगाथा यानी मिथक, कोई ऐसी कथा, जो विचारणा एवं आलोचना शक्ति से सर्वथा शून्य आदिम चेतना की स्वयं स्फूर्त उद्भावना हो और जिसमें प्रकृति की शक्तियों का देहधारी या अर्द्धदैहिक रूपों में प्रतिधान किया गया हो, जो अतिप्राकृतिक एवं अति मानवीय कार्य संपन्न करते हों.

मिथक और लीजेंड में एक स्पष्ट भेद यह है कि नियमतः लीजेंड का विषय प्रकृति की शक्ति नहीं, मनुष्य होता है.

माइथॉलॉजी शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द माइथोस से हुई है, जिसका प्रयोग किसी भी प्रकार की कथा के लिए किया जाता है. लोक कथाओं और परीकथाओं के लिए भी यही शब्द प्रयुक्त होता था, किंतु शीघ्र ही इस शब्द को एक विशिष्ट अर्थ दे दिया गया. प्लेटो ने इस शब्द का प्रयोग प्रायः उसी अर्थ में किया है, जिसमें आज हम करते हैं. धर्मगाथा और अन्य कथाओं का संबंध देवी-देवताओं तथा सृष्टि के उद्भव से होता है. स्पेंसर के अनुसार इसमें किसी देवी-देवता अथवा परा‌प्राकृतिक शक्ति का विवरण रहता है, इसमें आदिम मन परिलक्षित रहता है, इसकी धार्मिक महत्ता होती है. इसकी सर्जना या तो सृष्टि के साथ मनुष्य के संबंध की व्याख्या के लिए अथवा सामाजिक संस्थाओं तथा प्रथाओं आदि की व्याख्या के लिए की जा सकती है.

('मानविकी पारिभाषिक कोशः साहित्य खंड' से)

नैतिक उपदेशों का माध्यम

▣ डॉ. नरवणे

मिथक यानी कल्पित कथा, पुराण कथा. दार्शनिक विवेचन, जो बौद्धिक समीक्षा, तर्क और अनुमान पर आधारित है. इसलिए कल्पित घटनाओं या पौराणिक कथाओं की सहायता उसमें नहीं ली जाती. लेकिन कभी-कभी नैतिक आदर्शों को अधिक प्रभावशाली और रोचक रूप से समझाने के लिए दर्शन में कल्पित कथाओं का सहारा लिया जाता है. इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण प्लेटो के ग्रंथ 'रिपब्लिक' में वर्णित 'गुहा की कथा' है. इसमें गुहा में जकड़े हुए बंदी अज्ञान के प्रतिनिधि हैं और गुहा के बाहर का सूर्य प्रकाश ज्ञानतत्व है. आधुनिक काल में नीत्शे ने भी ऐसी कल्पित कथाओं द्वारा दार्शनिक विचार व्यक्त किये हैं. धार्मिक ग्रंथों में संग्रहीत पुराण कथाओं से मध्य युग के ईसाई दार्शनिकों को प्रेरणा मिली और उन्होंने इनमें से कुछ कथाओं को नैतिक उपदेशों का माध्यम बनाया.

पिछले कुछ वर्षों में पुराणों के अध्ययन का एक और पक्ष तेजी से विकसित हुआ है, वह है—नृशास्त्रात्मक और मनोवैज्ञानिक पक्ष दर्शन के लिए भी अपरोक्ष रूप से इसका महत्व है.

नृशास्त्र आदि मानव की मूल विचार प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर रहे हैं और मनोवैज्ञानिक मानव के अचेतन मन में निहित शक्तियों, इच्छाओं, विकृतियों और ग्रंथियों के अन्वेषण में जुटे हैं. दोनों को पौराणिक साहित्य से मूल्यवान सामग्री प्राप्त हुई है.

('मानविकी पारिभाषिक कोशः दर्शन खंड' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

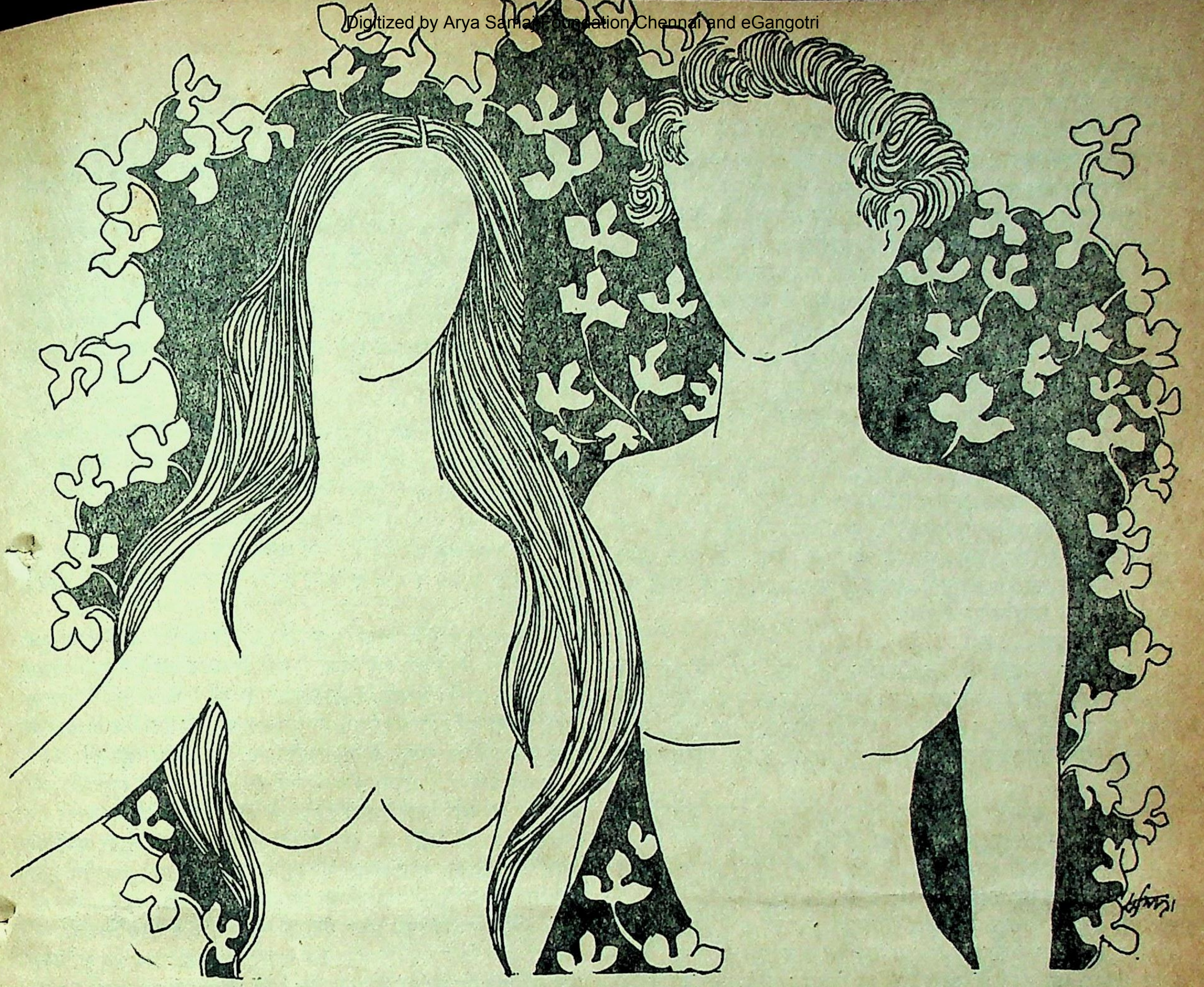

स्वर्ग से बहिष्कृत

आंद्रेज अपिट्ज

निर्वासन और अकेलेपन का दंड पाये आदम और ईव को स्वर्ग से दूर रहकर भी आखिर वह कौन-सी खुशी मिल गयी, जिसे पाकर वे फूले नहीं समा रहे थे? स्वर्ग खोकर भी धरती को पूरी तरह पा लेने की कोशिश और जीवन को पूरेपन में जीने की ललक का एहसास कराती सोवियत संघ के एक महत्वपूर्ण कथाकार की मार्मिक रचना—

लोहे के विशालकाय फाटक झन्नाटे के साथ सख्ती से बंद हो गये और उनकी झनझनाहट हवा में गूंजती रही, जेहोवा के क्रुद्ध गर्जन की प्रतिध्वनि की तरह.

दोनों पापी वहां जड़ से खड़े रहे, जहां जेहोवा के क्रुद्ध अभिशाप ने उन्हें तिरस्कृत करके ठेल दिया था.

रात का काला-भूरा अंधेरा उनके चारों ओर घिर आया. तेज और सनसनाती आंधियां उनके सिरों पर से गुजरने लगीं. ऊपर आसमान पर काले बादल खौफनाक अदृश्य पक्षियों के फैले हुए डैनों की तरह तैर रहे थे.

आदम और ईव स्वर्ग के बंद दरवाजों के बाहर खड़े थे. स्वर्ग की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाबी रोशनी की तुलना में पृथ्वी के घनघोर अंधेरे ने उन्हें अंधा कर दिया था. शीतल मंद बयार के आदी उनके नंगे शरीर तीखी हवाओं से छिले जा रहे थे. स्वर्ग की चिरंतन शांति के बाद अब उन्हें उमड़ते हुए काले बादल ऐसे खूंखार पक्षियों की तरह लग रहे थे, जो किसी भी क्षण झपट्टा मारकर उन पर अपनी चोंचों से हमला कर देंगे.

एक दूसरे का हाथ थामे आदम और ईव सटे खड़े थे. तेज हवाओं ने ईव के घने, काले और लंबे खुले बालों को छितरा दिया था, जो उसके घुटनों तक झूल रहे थे. एक काले गाउन की तरह उन दोनों की नग्नता को ढंकते हुए आदम ने अपना मुंह ईव के मुंह के पास ले जाकर स्नेह से पूछा, "क्या बात है? तुम इतनी परेशान क्यों हो?"

आदम ने ईव के शरीर का कंपन महसूस किया, पर इसे क्या कहें, वह नहीं जानता था, न ही अपने मन में उभरते हुए भय को ही वह कोई शब्द दे सका था. उनके लिए ये भाव पूरी तरह अपरिचित थे.

ईव उसके और करीब आ गयी.

"मुझे कसकर थाम लो. अपनी बांहें मेरी कमर में डाल लो. मुझे अपने कलेजे में भींचकर अपनी सांसों की गर्माहट से मुझे सुकून दो."

आदम ने ईव को अपनी बांहों में बांध लिया तो ईव ने अपने लंबे घने बालों को उठाकर एक मखमली चादर की तरह चारों ओर लपेट लिया. और अपनी देह की पूरी ऊंचाई में आदम की देह की गर्मी को महसूसती बड़ी मासूमियत से हंसी.

"आओ चलें . . . वहां . . ."

वह कहना चाहती थी, 'आओ और आगे चलें' पर उसे पता नहीं था, कैसे वह अपने को व्यक्त करे. स्वर्ग में पास और दूर में कोई अंतर नहीं जाना था उन्होंने, और न ही वे कहीं गये थे. दिन और युग उनके ऊपर से उनके जाने बिना चुपचाप खिसकते गये थे और वे एक चिरंतनता में लिपटे हुए थे.

अब उनके सामने सीरियाई रेगिस्तान का काला गाढ़ा अंधेरा एक पिंगल गलीचे की तरह बिछा हुआ था. कोमल बालू के विस्तार में डूब गये सूरज की हलकी गरमी अभी भी शेष थी और बालू की पर्तें उनके पांवों के नीचे धसक रही थीं.

रह-रह कर वे ठहर जाते और रेगिस्तानी हवा की सीटियों तथा पांवों के नीचे धसकते बालू की खस्-खस् आवाज को कान लगा कर सुनते. चारों ओर सन्नाटा था. स्वर्ग के पशु-पक्षियों के चिरंतन मर्मर स्वर की तुलना में सन्नाटे की उदास और खौफनाक आवाज उनके कानों में असीम उदासी और अकेलापन उड़ेल रही थी, पर उदासी और अकेलेपन से उनकी कोई पहचान न थी.

अब वे दोनों बालू का विस्तार पार करके पथरीली जमीन पर आ गये थे, जहां पत्थरों के ऊबड़-खाबड़ और नुकीले हिस्से उन कोमल तलवों में चुभकर उन्हें कष्ट दे रहे थे. धीरे-धीरे थकान उन के तलवों से उठकर पैरों से होती हुई समूची देह में फैल गयी. उन्हें इतना चलने का अभ्यास न था. ईव ने आदम की बांह छूकर कहा, "मैं बैठना चाहती हूं." पर आदम ने अंधेरे में ही कुछ ऐसा देखा था, जिस तक पहुंचने के लिए वह उत्सुक हो उठा था.

"देखो, सामने नीला-नीला दिख रहा है, वह क्या है? चलो, चल कर देखते हैं."

यह एक नदी थी. वही नदी, जो यहां से बहकर अदन के बाग में जाती थी, जहां यह वृक्षों को फलों से लादती थी और पशुओं की प्यास बुझाती थी.

वे दोनों एक चट्टान पर बैठ गये, जिस पर बालू का एक मोटा गलीचा बिछा हुआ था. वे नीली जलराशि को निहारने लगे.

लंबी और बीहड़ दूरी पैदल तय करने की मेहनत के बाद बैठकर सुस्ताना कितना भला लग रहा था. ईव ने अपना सिर आदम के चौड़े कंधों पर टिका दिया. एक हाथ चट्टान पर टिकाये दूसरे से आदम ने ईव की स्वस्थ देह को घेर कर अपने में समेट लिया. यहां नदी-घाटी में हवा स्निग्ध थी और नरम बालू पत्थरों की दरारों को पूरता हुआ मुलायम गलीचे की तरह उनके पांवों के नीचे बिछा हुआ था. पानी की सतह से बहुत ऊपर कहीं से एक मद्धिम मर-मर स्वर आ रहा था. चट्टानी नदी-तट की किसी दरार में से टूटी बांसुरी के बजने की-सी आवाज आ रही थी. उनके चारों ओर फैली निस्तब्धता और विस्तार जैसे अनंत लग रहे थे.

तभी कोई गरम भीगी चीज आदम की गर्दन पर चू पड़ी. पहले उसने सोचा, यह एक मधुमक्खी है, जो अक्सर स्वर्ग में उसके कंधे या सिर पर सुस्ताने को बैठ जाती थी, पर एक के बाद दूसरी बूंदें टपकती रहीं और उसके कंधों से टरक कर बांहों पर बहने लगीं. उसने देखने के लिए सिर घुमाया. मधुमक्खियां कहीं नहीं थीं. ये बूंदें ईव की आंखों से बह रही थीं.

"क्या बात है?"

ईव ने उंगलियों के पोरों से अपनी आंखों को छुआ. पलकें भींग रही थीं और पानी के बड़े-बड़े गरम कतरे बरौनियों पर लटक रहे थे. एक टपकता तो उसकी जगह दूसरा लटक आता.

"पता नहीं, इनमें से कुछ चू रहा है. पहले ऐसा कभी नहीं हुआ."

यह क्या वर्षा की बूंदें हैं? पर आकाश में तो बादल का एक भी टुकड़ा नहीं. आदम ने गौर से देखने के लिए ईव का सिर अपनी गोद में रख लिया.

आदम के मन में आया, वह इन बूंदों को पी ले. उसने सिर झुका उन बूंदों पर अपने होंठ रख दिये. वे गर्म थीं और उनमें नमकीन स्वाद था. स्वर्ग में उसने गर्म पानी के सोते पृथ्वी के गर्भ से फूटते देखे थे, जिनका पानी इतना गर्म होता था कि पीना मुश्किल था. तो क्या ईव के अंदर भी उस आग का एक टुकड़ा है, जो पृथ्वी के गर्भ में भभक रही है?

वह धीरे-धीरे अपनी गोद में पड़े ईव के सिर को सहलाने और झुलाने लगा और उसके बालों को अपने और ईव की देह के चारों ओर लपेट लिया. धीरे-धीरे ईव की सांसें मद्धम और गहरी होती गयीं और नींद उतर आयी. खुशकिस्मत थी वह औरत कि इतने अजीबोगरीब खयालों को अपने सिर में भरे भी वह सो पा रही थी.

एकाएक आदम को लगा, नदी की सतह और ज्यादा चिकनी, और ज्यादा साफ दिख रही है. अगर वह अपनी आंखें ऊपर करता तो देखता कि यह आकाश की परछाईं थी, जो साफ होता जा रहा था.

आदम मुग्ध-सा कुछ देर देखता रहा. फिर उसने ईव को जगाया.

"जाओ, उन्हें अंजुली में उठाकर देखो जरा."

ईव नदी के पास गयी. उसने पहले तो उन नीले सितारों को उंगलियों से पकड़ने की कोशिश की, जैसे कोई जमीन पर रेंगते हुए कीड़े को पकड़ता है. फिर नाकाम होकर वह उन्हें अंजुरी में उठाने लगी जैसे कोई पानी में से नन्हीं सुनहरी मछली को उठाता है, पर पानी उसकी उंगलियों में से बह गया और उसकी अंजुरी खाली रह गयी. नाराज होकर उसने पानी को अपनी हथेलियों से छपछपाया जैसे वह उसकी धोखेबाजी की सजा उसे दे रही हो.

"मुझे कुछ नहीं मिल रहा."

"क्या वे तुमसे दूर भाग जाते हैं?"

"पता नहीं, कभी तो वे सतह पर तिरते लगते हैं तो कभी नीचे डूब जाते हैं. आओ, कोशिश करो."

पर आदम बेहद थका हुआ था. वह इत्ती-सी चीज के लिए उठना नहीं चाहता था. ईव आकर उसकी बगल में बैठ गयी. और तब एकाएक उन दोनों की निगाहें ऊपर उठीं तो वही सितारे उन्हें आकाश में दिखे.

उन्होंने पहले भी उन्हें देखा था, पर स्वर्ग में वे चांद और सूरज के साथ-साथ दिखते थे. वे सितारे थे, जो स्वर्ग में बहुत फीके और उदास लगते थे. उनमें चमक एकदम नहीं होती थी. यहां वे झिलमिल करते हुए अद्भुत चमकदार और आकर्षक लग रहे थे, जैसे देवताओं की असंख्य नीली आंखें उस पापी जोड़े पर टिकी हुई हों.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय, जब वे मुग्ध भाव से आकाश की ओर देख रहे थे, एक पीली-सुनहरी धारी नदी के पार की पर्वत शृंखला के ऊपर जगमगायी. धीरे-धीरे यह धारी एक आधे-गोले में तब्दील हुई, फिर हलकी नीली सोने की थाली की तरह पहाड़ की चोटियों के ऊपर उठी. इसने सरल रेखा में फैले दिगंत को एक चमचमाते चाप में बदल दिया, जिसमें से एक सुनहरा पुल नदी पर पसरता हुआ उनके पांवों तक फैल आया. जैसे-जैसे सुनहरी थाली आसमान में ऊपर, और ऊपर उठती गयी, वैसे-वैसे उसकी चमक मद्धम पड़ती गयी और उस पर ऐसे परिवर्तन आये, जिनके कारण वह एक आदमी के चेहरे जैसा दीखने लगा.

ईव अचानक आदम के ऊपर जा पड़ी और अपना चेहरा उसके सीने में धंसा दिया.

"जेहोवा." उसके होंठों से एक कातर चीख निकलकर नदी की सतह पर तैरती दूर पहाड़ों में प्रतिध्वनित हो उठी, "जेहोवा... जेहोवा.. जेहोवा..." उसकी प्रतिध्वनियां गूंजती रहीं और फिर डूब गयीं.

इस चीख से क्रुद्ध होकर आदम अपनी युवा शक्ति और पराक्रम के पूरे गौरव में पुरुषोचित अपमानबोध से तिलमिलाकर उठ खड़ा हुआ.

"नहीं." वह चीखा.

"नहीं... नहीं... नहीं." उसका दर्पभरा स्वर पहाड़ों से प्रतिध्वनित होकर दूर तक जाकर अनंत में खो गया.

आदम ने ईव का चेहरा उस प्रकाश-पुंज की ओर उठाने का प्रयास किया, "देखो, उसकी तरफ देखो, यह जेहोवा नहीं है. न उनकी तरह इसके चेहरे पर दाढ़ी है और न गुस्से से लाल आंखें हैं इसकी और न बिजली की कड़क जैसी आवाज है इसकी. देखो, यह चंद्रमा है, सिर्फ स्वर्ग की अपेक्षा कहीं ज्यादा चमकदार और बड़ा, जैसे यहां के सितारे स्वर्ग के सितारों की अपेक्षा कहीं ज्यादा बड़े-बड़े और चमकदार हैं. देखो, कितना सुंदर है यहां का चंद्रमा!"

जितनी दूर दृष्टि जा सकती थी बालू-तट का विस्तार और चट्टानी इलाके सुनहरी रोशनी में नहा रहे थे.

वे अपने आस-पास की दुनिया के विस्तार को आंखों से पीते खड़े थे, उस दुनिया को, जिसके धूप-छांव से उनका पहले कोई परिचय न था. स्वर्ग के अपरिवर्तनशील सौंदर्य की तुलना में यह दुनिया उन्हें कहीं ज्यादा आकर्षक लग रही थी, यह दुनिया नित नये रूप धर रही थी. उनके हृदय हिलोरें ले रहे थे और नाच रहे थे और आसमान में तिरते पीले चांद तक उड़कर सामने की पहाड़ियों की तलहटी में पंछियों की तरह उतरते और नदी के पानियों पर बिछे सुनहरे पथ पर किलकारी मारते बच्चों की तरह दौड़ लगाते.

दूर तक चलने और नये अनुभवों के झटकों ने आदम को बहुत थका दिया था. उसका सिर ईव की गोद में उसके लंबे बालों के गलीचे पर लुढ़क गया. आदम के सो जाने पर ईव को लगा, वह बहुत अकेली हो गयी है.

आहिस्ता से उसने आदम का सिर उठाकर नीचे बालू पर रख दिया और नदी का किनारा पकड़े स्वर्ग की ओर चल पड़ी. थोड़ी दूर तक वह पंजों के बल चलती पीछे घूमकर देखती गयी कि कहीं आदम जाग न गया हो, पर जब बालू पर सोते आदम की शक्ल पीले बालुओं के बीच अदृश्य हो गयी तो उसने दौड़ना शुरू किया. नुकीले पत्थरों से उसके तलवे घायल हो गये. उसके घने लंबे बाल तेजी से भाग में बाधा पहुंचा रहे थे, इसलिए उसने उन्हें लपेटकर रस्सी की तरह बट लिया और हाथों से उठा लिया.

चंद्रमा डूब रहा था और उषा आसमान से उतर रही थी, जब वह स्वर्ग के बंद फाटक के सामने पहुंची. चारदीवारी इतनी ऊंची थी कि वह किसी तरह उसके पार नहीं जा सकती थी और न कहीं कोई दरार इतनी चौड़ी थी कि वह उसमें धंसकर स्वर्ग के अहाते में पहुंच सकती. हताश होकर वह दीवार की ऊंचाई को ताकती रह गयी, जो पीले आसमान में धंसी-सी लग रही थी. एक अभूतपूर्व रिक्तता और अकेलापन उसके कलेजे को चीरने लगे. एक ओर स्वर्ग के लिए उसके भीतर एक गहरी चाह उमड़ रही थी तो दूसरी ओर आदम को अकेला छोड़कर चले आने की यातना उसे तड़पा रही थी.

ईव के पांवों के पास नदी का पानी लहरा रहा था. अचानक उसकी निगाह नीचे गयी तो उसने देखा, रुपहले पंखोंवाली दो नन्हीं लाल मछलियां उस स्वच्छ पानी में तैरती हुई स्वर्ग की ओर से इस दुनिया में आ रही थीं. अच्छा तो ये भी!

ईव सोच में पड़ गयी. ये चिड़ियां और मछलियां उस स्वर्ग को छोड़कर जा रही थीं, जिसमें दुबारा प्रवेश पाने को लालायित होकर वह आयी थी. एक बार फिर उन ऊंचे प्राचीरों के भीतर की उस दुनिया के बारे में वह सोचने लगी, जहां अनंत प्राचुर्य था, असीम शांति थी और चिरंतन सुख था. उस स्वर्ग में आदम के बिना जीने की कल्पना से वह कांप उठी. उसके कलेजे में एक गहरी टीस उठी. इस तरह का तीखा दर्द उसे पहले कभी महसूस नहीं हुआ था. टीस अब बर्दाश्त के बाहर हो गयी तो अनायास ईव के मुंह से एक चीख निकल गयी.

चिड़ियों का जोड़ा दूर होता हुआ अदृश्य हो गया था. मछलियां भी लहरों के गर्भ में समा गयी थीं. ईव का समूचा अस्तित्व एक अजानी चाह और लालसा से जलने लगा. अपने साथी, अपने पुरुष के लिए इस तरह की तीखी मर्मांतक लालसा का अनुभव स्वर्ग में उसे कभी नहीं हुआ था.

मेरी जाति-मेरा वंश : एक मिथक

■ हरिवंशराय बच्चन

उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अमोढ़ा नामक ग्राम में पांडेय उपजाति का एक बड़ा ही तपोनिष्ठ और तेजस्वी ब्राह्मण रहता था. उसके एक कन्या थी, जो अत्यंत रूपवती थी और जिसके सौंदर्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी. उन्हीं दिनों अमोढ़ा से कुछ मील के फासले पर डोमिन दुर्ग नामक एक स्थान था, जिसका राजा उग्रसेन, जाति का डोम था. डोम राजा ने जब ब्राह्मण-कन्या के अनिंद्य रूप-सौंदर्य की चर्चा सुनी, तब उसने ब्राह्मण के पास यह संदेश भेजा कि वह अपनी बेटी का ब्याह उसके साथ कर दे. ब्राह्मण के सामने बड़ा धर्म-संकट उपस्थित हो गया. परिणाम की परवाह किये बिना ब्राह्मण ने राजा के प्रस्ताव को ठुकरा दिया. इस पर डोम राजा ने दल-बल के साथ अमोढ़ा पर चढ़ाई कर ब्राह्मण के पूरे परिवार को पकड़कर बंदी बना लिया.

बंदीगृह में ब्राह्मण-कन्या को एक तरकीब सूझी. उसने डोम राजा को कहला भेजा कि मैं अपने माता-पिता को कष्ट-मुक्त देखने के लिए तुम्हारे साथ विवाह करने को तैयार हूं, मगर विवाह से पूर्व मैं अयोध्या की तीर्थ-यात्रा कर आने की आज्ञा चाहूंगी. राजा इस पर सहमत हो गया.

उन दिनों अयोध्या अवध प्रांत की राजधानी थी, जिसके सूबेदार राय जगत सिंह थे. जगत सिंह श्रीवास्तव कायस्थ थे. बड़े ही धर्मात्मा, नीति-कुशल, न्याय-परायण और पराक्रमी. अयोध्या पहुंचकर ब्राह्मण-कन्या राय साहब के समक्ष उपस्थित हुई. अपने पूर्वजों के मूल-स्थान की देवी-स्वरूपा उस कुमारी कन्या का परित्राण करने की राय साहब ने प्रतिज्ञा की और सेना सजाकर डोमिन दुर्ग पर चढ़ाई कर डोम राजा का सफाया कर दिया.

राय साहब के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए उस निर्धन और असहाय ब्राह्मण के पास कुछ भी नहीं था. उसने अचानक अपने यज्ञोपवीत की ओर देखा और उसे उतारकर राय साहब के कंधे पर डाल दिया, बोला, "इसके द्वारा मैं अपना 'पांडेय' आस्पद आपको प्रदान करता हूं और आपको ब्राह्मण बनाकर अपनी ब्राह्मण-कन्या आपको समर्पित करता हूं." □

—प्रस्तुति : शांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादि काल से वह आदम की पतुकी थी, पर उसके भीतर की औरत पहली बार अब जागी थी. इस अपूर्व तथा विचित्र उत्तेजना में दूसरी भावनाएं और विचार लुप्त हो गये थे. उसने अपने गले से निकलती एक गहरी चीख को पूरी ताकत से दबाया और बाहें फैलाये वह वापस आदम की ओर दौड़ पड़ी.

नुकीले पत्थरों ने उसके तलवों को लहूलुहान कर दिया था, पर उसे कोई दर्द नहीं महसूस हो रहा था. मूसलाधार वृष्टि के बाद किनारे तोड़ कर बहती नदी की तरह लालसा उसके भीतर उमड़ी पड़ रही थी. उसकी नसों में रक्त का प्रवाह तेज होकर दौड़ता हुआ उसकी कनपटियों से टकरा रहा था. अचानक लालसा और चाह के इस आवेग की जगह एक भय ने उसके भीतर प्रवेश किया. क्या होगा अगर वापस जाकर वह आदम को न पाये? क्या होगा अगर वह नदी पर फैले चांदनी के पुल पर से होता हुआ ईव की तलाश में उस पार की उपत्यकाओं में भटक रहा हो? अगर वह इस रेगिस्तान में अकेली रह गयी तो क्या होगा?

ईव ने अपनी पीठ पर उगते सूरज को नहीं देखा और न स्वर्ग से भागते चिड़ियों के एक झुंड की तरफ उसकी निगाह गयी. हताशा और परिताप से भरी एक मर्मांतक चीख उसके मुंह से निकलकर नदी की चिकनी सतह पर फिसलती हुई हवा में बिखर गयी.

आदम ने ईव की चीख सुन ली थी. ईव ने देखा, आदम की सुंदर युवा बलिष्ठ आकृति सुबह के कुहासे को चीरकर निकली और सुनहली नरम धूप से नहा गयी. आदम उसे कभी इतना सुंदर, इतना पौरुषदीप्त नहीं लगा था. वह अपनी कायरता, अपनी अविश्वसनीयता और अपनी धोखेबाजी के बारे में आदम से क्या कहेगी, कैसे कहेगी?

मगर आदम का ध्यान इधर नहीं था. वह उस दुनिया की प्रातःकालीन भव्यता में पूरी तरह से डूबा हुआ था. लगता था, अंगूर की डालियों पर पककर सीझते रस की मादकता का नशा उस पर छाया हुआ है. सुबह के आसमान में चमचमाते हुए सूरज की चमक जैसे उसकी आंखों में भी दिप रही थी. अप्रतिहत वेग से बहती हुई लहरों का वेग जैसे उसकी शिराओं में बहते हुए रक्त में समा गया था. ईव की देह पर घूमती उसकी उंगलियों के अपरूप स्पर्श में जैसे पृथ्वी पर लहराती और नदी को छूकर आती पुरवा हवा की छुअन समाई हुई थी.

ईव ने इसके पहले कभी आदम को ऐसा नहीं पाया था. वह अपनी नजरें आदम के चेहरे पर से हटा नहीं पा रही थी और उसने अपने को आदम की मजबूत बांहों की गिरफ्त में ढीला छोड़ दिया था. अब वे केवल एक साथ एक ही पाप करने के बंधन से नहीं बंधे थे, बल्कि उनके हृदय एक ऐसी नयी अनुभूति की आवेगमयी लहरों पर सवार हो गये थे, जो इन्हें किन्हीं अजान दिशाओं की ओर लिये जा रही थीं.

एक दूसरे के हाथ पकड़े वे नदी में अपने धूलभरे घायल पांवों से उतरे. पानी से बाहर आये तो कहीं से उड़ता चिड़ियों का एक जोड़ा निर्भय होकर पर मारता उनकी ओर आया. एक चिड़िया आदम के कंधे पर बैठ गयी और अपनी चमकदार गोल आंखों से एक पल आदम की आंखों में झांककर पंख फड़फड़ाया और हवा में चक्कर काटती हुई इस पत्थर से उस पत्थर पर फुदकने लगी. दूसरी चिड़िया ईव के कंधे पर जा बैठी. उसने ईव के बालों पर अपनी चोंच रगड़कर साफ की, पंजों से अपने डैने खुजलाये और अपने नर के पीछे उड़ चली.

आनंद से रोमांचित होते हुए आदम ने ईव का हाथ थाम लिया और बोला, "चलो, हम इनका पीछा करें."

चिड़ियों का पीछा करते वे एक पहाड़ की तलहटी में पहुंच गये. नदी में से उठती हुई पीली ढलानें चौड़े पत्तों वाली लताओं से ढंकी हुई थीं. चट्टानी जमीन की दरारों में अपनी जड़ें पिरोये झाड़ियां और वृक्ष आकाश में अपना गर्वीला मस्तक ताने खड़े थे.

संतुष्ट होकर ईव ने एक निर्झर के किनारे लेटकर जी भर के पानी पिया और निढाल होकर पड़ गयी. आदम आया तो ईव ने अपनी अंजुरी में भरकर उसे भी पानी पिलाया. उस पानी में पकी बेरियों के रस की मिठास भी घुली हुई थी.

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद शक्ति और उत्साह से भरे सूरज की तरह चमकते वे दोनों पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गये.

नीचे नदी का पानी झलमला रहा था, जिसमें सूरज की परछाईं एक छोटी सोने की नाव की तरह तैर रही थी. पीछे सीरियाई रेगिस्तान दूर तक पसरा हुआ था, जिसके अंतिम सिरे पर क्षितिज के पास एक बहुत पतली धारी-सी दिख रही थी. सामने एक ऊंचा-नीचा पथरीला मैदान था, जिसकी निचाटता को बीच-बीच में उगी झाड़ियों और वृक्षों की हरियाली सहनीय बना रही थी. इस मैदान के पार गगनचुंबी नीले पहाड़ थे, जिनकी चोटियों पर बर्फ की सफेदी फैली हुई थी. इस सफेदी के बीच लंबी दरारों और खोहों की काली पट्टियां इसे और भी आकर्षक बना रही थीं. उन चोटियों से बहकर आती धीमी हवाएं अपने साथ सफेद बादलों के फाहे उड़ाकर आदम और ईव की तरफ ला रही थीं.

इस सुख की नवीनता और प्रत्याशा से रोमांचित, जो उनके दिल की गहराइयों से उमड़ रही थी, वे एक दूसरे को अपनी बांहों में लिपटाये खड़े रहे, ईव को अपने को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे. और जब आदम बोला तो ईव को लगा, वह उसके ही मनोभाव व्यक्त कर रहा है, क्योंकि उनके विचार और अनुभूतियां एक थीं.

"देखो, यही वह दुनिया है, जिसे हमने पहले कभी नहीं देखा था, पर जिसे हम स्वर्ग की दीवारों के पीछे अपने सपनों में देखते थे.

"हमने पाप किया है और हमें स्वर्ग से बाहर कर दिया गया है.

"पर क्या हम दुख मनाएंगे और वापस जाकर स्वर्ग के फाटक खोलने के लिए मनुहार करेंगे कि फिर स्वर्ग में प्रविष्ट हो सकें? ऐसा करना बेकार होगा. जेहोवा का शाप हजार साल तक नहीं मिटेगा और हमारा जीवन छोटा-सा है.

"फिर भी उन दीवारों के पीछे बिताये हजार वर्ष इन मुक्त विस्तारों में बिताये एक दिन से ज्यादा सुखद नहीं हैं.

"हम अंधेरे और उजाले, भय-निराशा और साहस-आशा, पीड़ा और राहत, मधुरता और ठंडे पानी, थकान और आराम का फर्क नहीं समझते थे. हम नहीं जानते थे कि प्यार क्या है या संदेह, लालसा और आतंक, हानि या दुख और प्राप्ति का सुख क्या है . . . हम खाली बर्तनों की तरह थे, अब जिनमें सात समुद्रों का पानी तेजी से भर रहा है.

"हमें निर्वासन का दंड दिया गया है. जेहोवा ने हमें अकेलेपन के अभिशाप से दंडित करना चाहा था, पर अपने इर्द-गिर्द आंखें फिराओ तो तुम देखोगी कि हवाओं ने कितने तरह के बीज इस कुंआरी धरती की कोख में बो दिये हैं और पहाड़ों की ढलानें हरियाली से लदी हुई हैं. जल्दी ही स्वर्ग के बाहर की इस दुनिया में बहार आयेगी.

"एक दिन इसी तरह स्वर्ग वीरान हो जायेगा और जेहोवा सड़ती-सूखती झाड़ियों और घुनाते वृक्षों के बीच निपट अकेले रह जायेंगे. और तब स्वर्ग में उनकी प्रार्थना करने वाला कोई न होगा.

"पर हम इस अनंत विस्तार में घूमते रहेंगे. हम उन नीले पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर सुदूर प्रांतरों को देखेंगे. और हमारी आकांक्षाएं, इस पृथ्वी को अपने पांवों से नाप लेने की हमारी स्पर्द्धाएं बढ़ती जायेंगी, रातों में हम चांदनी के पुल पर से गुजरकर नदी के दूसरे किनारे पर चले जायेंगे, दिन में हम सूरज की परछाईं में नदी की धार की विपरीत दिशा में चलेंगे. इस प्रकार हम हमेशा आगे और आगे बढ़ते जायेंगे.

"हमें भूख-प्यास लगेगी और हम थकेंगे तो क्या हुआ? हम अब जानते हैं कि हम अपनी भूख-प्यास मिटा सकते हैं, आराम करके थकान से राहत पा सकते हैं. अब हमें जेहोवा की सब कुछ देखती आंखों का डर नहीं सतायेगा. न उनके क्रोध से हमें डरना होगा. हम खुद अपनी परेशानियों पर काबू पायेंगे, खुद अपनी दिशा तय करेंगे. हमने स्वर्ग खो दिया है तो क्या! हम पृथ्वी को पाने की पूरी कोशिश करेंगे." □

अनुवाद : डॉ. माहेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भगीरथ और

हीरामणि शर्मा

राजा महीपत शाह, गढ़वाल के शासक, उनके दो सेनापति-भड़ लोदी और माधोसिंह. माधोसिंह का गांव श्री नगर से काफी दूर एक सुरम्य घाटी में बसा हुआ था. चारों ओर विपुल प्राकृतिक संपदा, लंबे-चौड़े खेत, किंतु माधोसिंह के समय में गांव में पानी का नितांत अभाव था.

माधोसिंह अपने नियत समय पर दरबार में उपस्थित होते थे, महा अमात्य सदैव दरबार में देर से पहुंचते, जिससे शासन की कार्रवाई सदैव विलंब से शुरू होती. महाराज इस बात से बहुत दुखी थे. उन्होंने अनेक बार महा अमात्य का ध्यान इस ओर दिलाया, किंतु वे अपनी आदत से बाज न आये. एक दिन भरे दरबार में महाराज ने महा अमात्य को बुरी तरह फटकारा और कहा कि माधोसिंह का गांव दूर है, किंतु वह सदैव समय से पहले दरबार में उपस्थित रहते हैं और तुम्हारा गांव श्रीनगर में ही है, फिर भी तुम देर से आते हो, ऐसा क्यों? इस पर महा अमात्य ने उत्तर दिया, ''महाराज, माधोसिंह का गांव दूर अवश्य है, किंतु उसका खाना-पीना मोटा है. इसके गांव में कोदों, सांवां, ज्वार और बाजरा के सिवा कोई अन्न नहीं होता. फिर कोदों के आटे का हलवा बनाते, उसे निगलते और सरपट आते कितनी देर लगती है, जबकि मेरे गांव में अलकनंदा की कृपा से धन-धान्य, फल-सब्जी की भरमार है, ऐसे में नहाते-धोते, खाते-पीते देर हो ही जाती है.''

दरबार से चोट खाया माधोसिंह थकाहारा घर पहुंचा. उसकी भाभी उसी समय जंगल से घास लेकर घर पहुंची थी. माधोसिंह ने भाभी से कहा, ''मुझे बहुत भुख लगी हैं कोई बासी-तिवासी चून-की ही रोटी हो तो मुझे तुरंत दे दो.''

''अभी लायी.'' कहकर भाभी अंदर चली गयी. चून की रोटी बनाने और नमक पीसने में थोड़ा समय लग गया तो माधोसिंह क्रोध में आगबबूला हो उठा. जैसे ही भाभी ने उसके सामने रोटी रखी, उसने रोटी-नमक फेंक दिया और चिल्लाकर कहा, ''इतनी देर तक क्या कर रही थीं?''

भाभी ने बहुत धीरे से कहा, ''देवरजी, मैं नीचे खेतों में गयी थी, जहां हरी-भरी सब्जियां लहलहा रही हैं. इतनी देर मैं यह फैसला नहीं कर पा रही थी कि कौन-सी सब्जी तोड़कर लाऊं! भिंडी, करेला, गोभी, लौकी, मिर्च क्या-क्या बनाऊं.'' माधोसिंह ने एक और चोट खायी.

चोट पर चोट खाया हुआ माधो रात को सुख की नींद न सो सका. रात भर तरह-तरह की कल्पनाएं करता रहा और योजनाएं बनाता रहा और पौ-फटने से पहले माधोसिंह पानी की तलाश में निकल पड़ा. सामने के पहाड़ की चोटी पर चढ़कर उसने देखा कि दूसरी ओर एक नदी बह रही है. उसने उस्से कूल निकालने का निश्चय किया, किंतु सामने के बड़े-बड़े पहाड़ों को काटकर उनसे किस तरह पानी निकाला जाये, वह समझ नहीं पा रहा था. उसने इंजीनियर की भांति सब तरह से पहाड़ को परखा लेकिन कुछ समझ में नहीं आया.

संध्या समय किंकर्तव्यविमूढ़ माधो गांव लौट आया. उसे बहुत निराशा हुई. फिर भी उसने गांव के बड़े-बूढ़ों की सलाह लेना जरूरी समझा. गांव के चौक में बुजुर्ग-युवा सभी जमा हुए. माधो ने अपनी योजना उनके सामने रखी. सुनकर सभी माधो का उपहास करने लगे.

दूसरे दिन सुबह माधो गैती, फावड़ा, कुल्हाड़ी और दरांती आदि सामान लेकर फिर पहाड़ पर चढ़ गया. क्या करे, क्या न करे, एक चट्टान के ऊपर बैठकर वह सोच रहा था कि एकाएक उसकी नजर एक चूहे पर पड़ी. चूहा बार-बार बिल में घुसता और बाहर आ जाता. बिल के पास उसने मिट्टी का ढेर लगा रखा था. माधोसिंह खुशी से नाच उठा. उसने सोचा कि चूहा बिना गैती-फावड़े कैं बिल बना सकता है. तो क्या मैं पहाड़ काटकर सुरंग नहीं बना सकता!

उसने एक चट्टान के नीचे बारूद लगायी. उसके फटते ही चट्टान टुकड़े हो गयी. फिर बारूद के बाद बारूद लगाते हुए माधो ने नदी के सामने पड़नेवाले पहाड़ को टूक-टूक कर दिया. गांववाले हवा में उड़ते पत्थरों की धांय-धांय की आवाज सुनते रहे. उनका दिल दहेल गया, माधो के आत्मविश्वास और प्रबल इच्छा-शक्ति ने उनके मन में सहयोग की भावना भर दी. देखते ही देखते गांव के बड़े-बूढ़े, युवक-बच्चे सभी गैती-फावड़ा लेकर चल पड़े.

अगले दिन से सैकड़ों लोग माधो के पीछे हो लिये. दनादन पहाड़ टूटता रहा और कूल निकलती गयी. थोड़े ही समय में गांववालों के श्रमदान से कई मील लंबी कूल तैयार हो गयी. अब कूल को गांव की सरहद में प्रवेश करना था, परंतु वहां पर फिर एक और बाधा सामने आयी. एक और चट्टान सामने खड़ी मिली, उसने रास्ता रोक दिया. गांव के सभी लोगों ने निश्चय किया कि कल प्रातः सबसे पहले इसी चट्टान को काटने का काम करेंगे.

गांव की सरहद में चिर प्रतीक्षित स्वप्न-सदृश कूल पहुंचे तो भला किसके मन में उत्साह न होगा. गांव के सभी लोग पहाड़ के कटान और कूल को देखने को उत्सुक थे. माधोसिंह का इकलौता बेटा भला क्यों पीछे रहता. हम उम्र बच्चों का नेतृत्व करता हुआ वीर पिता का वह बहादुर बेटा भी सरहद पर पहुंच गया.

माधो ने अपने इष्ट का सुमिरन किया और सभी लोगों से चारों ओर से चट्टान पर प्रहार करने को कहा. चोट पर चोट पड़ी. निरंतर चोट लगने से चट्टान चरमरा गयी. पत्थर के टुकड़े-टुकड़े हो गये. अब माधो ने चट्टान के बीच में बारूद लगाना ठीक समझा. उसने सभी से दूर चले जाने को कहा. बारूद के फटते ही चट्टान के टुकड़े-टुकड़े हवा में उड़ते दिखाई दिये, परंतु हाय दैव, उनमें से एक टुकड़ा माधो के बेटे को लगा और वह वहीं ढेर हो गया. वातावरण शोकाकुल हो उठा. चारों ओर उदासी छा गयी. माधो सन्न रह गया, परंतु थोड़ी देर में उसकी चेतना जागी. उसका वीरत्व उसे ललकारने लगा. माधो ने सभी से काम करने का अनुरोध किया. उसने कहा कि हर शुभ कार्य में बलि की आवश्यकता होती है और आज इसी शुभकार्य के लिए मेरे पुत्र की बलि हुई है, यह तो हर्ष की बात है. यह मेरा सौभाग्य है कि मां काली ने मेरे पुत्र की बलि ली. देखो, अब हमारा काम सफल होगा. यह सुनकर सभी माधो की ओर देखने लगे. वीर कभी अपने पथ से विचलित नहीं होते. गढ़वाल का यह सपूत भी अपने रास्ते से नहीं हटा और फिर सारे काम स्वयं होते चले गये और अंततः कूल ने गांव में प्रवेश किया. □

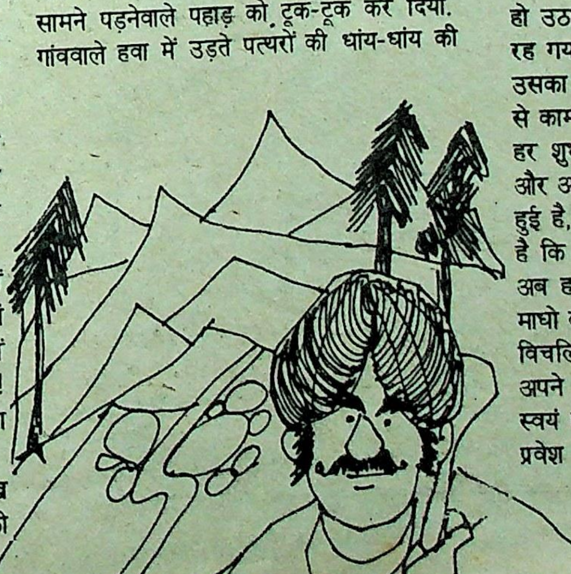

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुकड़ा-टुकड़ा औरत

उमाकांत मालवीय

औरत के टुकड़ा-टुकड़ा होकर जीने की बेबसी के पीछे आखिर सच क्या है? भारतीय मिथकों केप्रसंग में स्व. उमाकांत मालवीय का यह आलेख जहां इस संदर्भ में गंभीरता से विचार करता है वहीं प्रम्लोचा को लेकर फिर से विचार करने की जरूरत पर भी बल देता है....

दासों प्रचेताओं (ब्रहमा के मानस पुत्र) ने जल में समाधिस्थ होकर उग्र कठिन तपस्या प्रारंभ की. प्रजापति प्रचेतागण तपस्या में इस कदर तल्लीन हो गये कि लगभग दस हजार वर्षों तक उन्हें प्रजापालन का ध्यान ही नहीं रहा. फलतः सारी धरती, सारा आकाश वृक्षों से भर गया. आज वन महोत्सव होते हैं. वृक्षारोपण सप्ताह मनाये जाते हैं. और वांछित वृक्ष नहीं मिलते. कहां उन दिनों वृक्ष को बढ़ोत्तरी एक समस्या बन गयी. वृक्षों की अधिकता से अनेकानेक प्रजानष्ट हो गयी. दस हजार वर्ष उपरांत प्रचेतागण जब जल से बाहर आये तो उन्हें वस्तुस्थिति जानकर बड़ा क्षोभ हुआ. उन्होंने अपने दशमुख से भयंकर अग्नि और वायु बाण छोड़े. एक-एक वृक्ष नष्ट होने लगे. वृक्षों में हा-हा कार मच गया. चारों ओर त्राहिमाम्-त्राहिमाम् का स्वर, प्रचेताओं वृक्ष-मेघ रोको.

यह वृक्ष-प्रलय देखकर वृक्षों के अधिपति सोम अर्थात् चंद्रमा, जो औषधि के देतवा भी हैं. प्रजापति प्रचेताओं के निकट जाकर बोले, "हे महानुभावों. अपना क्रोध शांत कीजिये. भवितव्यता को जानकर इन्हीं दिनों के लिए मैंने वृक्षों की इस कन्या मारिषा का अपनी अमृतमयी किरणों से पालन पोषण किया है. इसे मैं आप लोगों को समर्पित कर रहा हूं. इस आप भार्यारूप में ग्रहण करें और अब, जो वृक्ष बच रहे हैं, उन पर कृपा करें.

कभी डाक्टर भगवत शरण उपाध्याय से प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल ने कहा था, "भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है, प्रकृति का अधिक से अधिक मानवीकरण. यहां जड़ पर्वत हिमालय एक वत्सल पिता है. उसकी एक पत्नी है मैना. उसकी एक कन्या है. उसका एक जामाता है. यहां गंगा जो वस्तुतः एक नदी है. एक ममतामयी वत्सल मां भी है. यहां तुलसी जो महज एक पौधा है, मंगलदायिनी कल्याण प्रदा मां है. पीपल वासुदेव है."

सर जगीश चंद्र बोस ने पौधों को प्राणवंत बतलाया है. वे दुखते हैं प्रसन्न होते हैं. हमें भी याद है, बचपन में हमें मना किया जाता था अंखुवाते बिरवे को उंगली मत दिखलाओ, "इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं जे तर्जनी देख मुरझाहीं." सूर्यास्त के उपरांत हमें तुलसी अथवा किसी भी पौधे को छूने की मनाही होती थी. 'पौधे इस समय सो रहे हैं. इन्हें छेड़ो मत' इधर अखबारों में यह भी पढ़ने को मिला है कि पौधों पर कर्णप्रिय संगीत का अथवा अवसाद उत्पादक संगीत का प्रभाव पड़ता है. सुखद संगीत सुनकर वे जल्दी फूलते-फलते हैं. 'फलहि-फलहि न बेत जदपि सुधा बरसें जलद' की बात मैं नहीं करूंगा. गुप्त काल में तो सुंदरियों के चर्चित सुंदर चरणों के हौले-हौले आघात से अशोक फूलते थे. हां, तो मारिषा वृक्षों की मानवी भी अखंड यौवना, रूप श्री संपन्ना.

"सोम, हम आपकी सौम्य वाणी से संतुष्ट हुए. इस कन्या का इतिहास जानने की हमारी इच्छा है. इस रूपसी का कुल-गोत्र क्या है? यह हमें बतलाने की कृपा करें." प्रचेताओं ने निवेदन किया. सोम ने मारिषा की कथा शुरू की, जो इस प्रकार थी:

प्राचीन काल में वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ एक मुनीश्वर थे, महर्षि कुंडु. उन्होंने गोमती नदी के तट पर घोर तपस्या की. इंद्र को भय हुआ. कहीं इंद्रासान न छिन जाये. इंद्र को इंद्रासन छिनने का भय बराबर सताया करता था. तपस्या चाहे किसी उद्‌दश्य से की जाये. उसे अपने सिंहासन की ही चिंता सताने लगती थी. यही है सनातन किस्सा कुर्सी का. कदाचित इसीलिए स्व. पं. माखन लाल चतुर्वेदी एक भारतीय आत्मा ने यह घोषित किया था. इंद्रासन को चुनौती दी जा सकती है. वृहस्पति के मृगासन को नहीं. इसीलिए मैंने अपने लिए वृहस्पति का मृगासन ही चुना है. हां, तो महर्षि कंडु को तपोभ्रष्ट करने के लिए देवराज इंद्र ने प्रम्लोचा नाम की एक अत्यंत रूपवती अप्सरा भेजी. अप्सरा प्रम्लोचा ने ही वरुण के पुत्र महात्मा पुष्कर की तपस्या भ्रष्ट की थी. महात्मा पुष्कर से उसे मालिनी नाम की एक अत्यंत सुंदर कन्या जनमी. मालिनी को प्रम्लोचा ने महात्मा रूचि को समर्पित कर दिया था. इन्हीं रूचि और मालिनी के संयोग से. 'रौच्य' नाम के मनु का जन्म हुआ था. उस मंजुहासिनी प्रम्लोचा ने महर्षि कंडु को विचलित कर दिया. उसके रूप का जादू चल गया. उसके साथ मुनीश्वर कंडु ने सौ से भी अधिक वर्षों तक मंदराचल की एक कंदरा विहार किया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन दियांगना प्रम्लोचा ने महर्षि कंडु से कहा, "मुनिवर, काफी समय हो गया, मुझे आपके साथ रहते. आमोद-प्रमोदमय समय बीता. अब प्रसन्नतापूर्वक मुझे अनुमति दें, मैं स्वर्ग जाऊं. अब मैं जाऊं? प्रम्लोचा से विछोह की कल्पना मात्र से मुनिवर विकल हो गये, "सुश्रोणि (अच्छी कमर वाली), अभी ठहरो, अभी तो मन नहीं भरा." प्रम्लोचा ने मुनि का प्यार भरा आग्रह स्वीकार कर लिया. अखंड अर्ध्वरेता ऋषि कंडु के साथ उसने भी अभूतपूर्व रति सुख प्राप्त किया था.

सौ से और अधिक वर्ष फिर बीते. एक दिन प्रम्लोचा ने पुनः आग्रह किया; ऋषि प्रवर प्रसन्नतापूर्वक मुझे अनुमति दें अब मैं जाऊं? "प्रम्लोचा थी. ऋषि का साहचर्य उसे स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर लग रहा था. प्रम्लोचा के स्वर में संभावित विछोह दुर रहा था. परंतु वह बेचारी करे भी तो क्या करे? इंद्र का बार-बार बुलावा आ रहा था. इंद्र का उद्देश्य भी तो संपन्न हो चुका था. अब उसे भी प्रम्लोचाहीन स्वर्ग अच्छा नहीं लग रहा था.

प्रम्लोचा से जाने की बात सुनकर ऋषि श्रेष्ठ कंडु फिर विकल हो गये. उन्होंने विकल होकर पुनः आग्रह किया, "भद्रे, अभी ठहरो, अभी तो आयी ही हो और अभी ही जाने की बात भी कर रही हो?" प्रम्लोचा, फिर रुक गयी. उसने अपना प्रस्थान स्थगित कर दिया. वह अजब संशय में थी. उसके लिए यह एक अद्भुत धर्मसंकट था, एक ओर देवराज इंद्र का आदेशात्मक बुलावा, जिसकी अवहेलना संभव न थी, दूसरी ओर समस्त लौकिक सुख से ऊपर प्रियतम का प्यार भरा आग्रह रुकने का.

दो सौ से अधिक और वर्ष बीते, इतना और समय बीतने पर एक दिन फिर प्रम्लोचा ने आग्रह किया," ऋषि श्रेष्ठ, मुझे आपसे जो मिल रहा है, वह अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं है. मैं निहाल हूं. मुझे स्वर्ग में भी यह देह सुख नहीं मिला. मेरे सौंदर्य ने अपनी सार्थकता इतनी कहीं भी अनुभव नहीं की तथापि मैं विवश हूं. देवराज सहस्त्राक्ष इंद्र बारंबार मुझे स्वर्ग लौटने का संदेश भिजवा रहे हैं. मैं आपको अप्रसन्न नहीं करना चाहती, प्रसन्नतापूर्वक मुझे अनुमति दें, मैं चली जाऊं मुझे आशंका है कि मेरे यहां अब और टिकने से स्वार्थी देवता, मेरे और आपके विरुद्ध षड्यंत्र कर सकते हैं. पुरुरवा और उर्वशी के विरुद्ध उन्होंने यही तो किया था."

"यहां क्या तुम्हें कोई कष्ट है? तुम बार-बार मुझे छोड़कर जाने की बात क्यों कर रही हो? सुमध्यमे, अभी और ठहरो, अभी मेरा मन भरा नहीं है." अधीर ऋषि कंडु ने अपना आग्रह बार-बार दोहराया. उनके आग्रह को देखकर, यद्यपि यह बात बड़ी हलकी होगी तथापि वही प्रसंग याद आता है. किसी फिल्म में हिंदी फिल्मों के सदाबहार नायक देवानंद को गाते हुए दिखलाया गया है.

नायिका जाने को है, तब नायक आग्रह करता है... "अभी न जाओ छोड़कर कि दिल अभी भरा नहीं."

एक बार फिर प्रम्लोचा, प्रियतम ऋषि कंडु के आग्रह के सामने अथवा अपने भीतर की चाह के हाथों लाचार हो जाती है. वह अपना प्रस्थान स्थगित कर देती है.

एक दिन की बात है. सूर्यास्त हो रहा था. गोधूलि बेला में ऋषि कंदरा से बाहर निकले. उत्कंठिता प्रम्लोचा ने पूछा," ऋषि प्रवर, कहां जा रहे हैं?

"देख रही हो साधु संध्या हो रही है, संध्योपासन का समय हो गया है. उसी हेतु जा रहा हूं"

महर्षि कंडु की बात सुनकर प्रम्लोचा हंसी," इतने वर्षों में क्या पहली बार सूर्यास्त हो रहा है? क्या आज पहली बार आपको संध्योपासन की सुधि आयी है?

"क्या कहती हो, अभी आज प्रातः ही तो तुम आयी हो और आज गोधूलि बेला में मैं संध्योपासन के लिए जा रहा हूं." कोलिविसुध महर्षि कंडु ने कहा.

"ब्रहमन्. नौ सौ वर्ष सात महीने तीन दिन बीत चुके हैं. इस अवधि में सैकड़ों बार सूर्योदय और सूर्यास्त हुए है." प्रम्लोचा की हंसी रुक नहीं रही थी.

"मुझे भरमाओ मत आज ही आज तो तुम मिली हो, ताजगी में अभी तक खिली हो, मैं विसुध नहीं हो सकता." मुनिवर कंडु ने कहा

"नहीं-नहीं महर्षि, सुख आनंद की स्फीति में काल के व्यतीत होने को आपका आभास ही कुंठित हो गया था." प्रम्लोचा के स्वर में गंभीरता के साथ मुनि के कुपित हो जाने की संभावना का भय था.

महर्षि को काटो तो खून नहीं. फिर संयत होकर ऋषि ने कहा, "घबराओ मत प्रिये, शक्र शचीपति इंद्र अपनी योजना में सफल हो गया तो क्या, मैं तपोभ्रष्ट हो भी गया तो क्या, मेरी तपस्या निष्फल नहीं गयी, तुम-सी प्रिया प्राप्त कर वह सफल हो गयी. भीरू, मैं तुम्हें शाप नहीं दूंगा किसी के साथ सात कदम भी चल लो तो उसके साथ सप्तपदी का सुकुमार रेशमी बंधन हो जाता है. तुम तो मेरे साथ हजार वर्ष रही. इसे मैं इंद्र की कृपा मानता हूं. तुम्हें शाप देकर कृतघ्नता का पातक मैं कभी नहीं लेना चाहूंगा. अब तुम जा सकती हो. तुमने मुझे दिव्य देहानंद दिया है, मैं तुम्हारा आभारी हूं. मैं तपस्या अर्जित कर लूंगा."

महर्षि के आश्वासन के बावजूद प्रम्लोचा घबरायी हुई थी. महर्षि के साथ बीते आनंद की याद में उसे रोमांच हो आया था. वह श्वेदश्लथ हो चली थी. उसके भीतर महर्षि द्वारा स्थापित गर्भ पसीना-पसीना होकर बाहर निकल चला. वह तरुओं के अरुणाभ पत्तों पर अपना पसीना पोंछती हुई आकाशमार्ग से स्वर्ग चली गयी.

पसीने से प्राप्त प्रम्लोचा के गर्भ को वृक्षों ने सहेज लिया. वृक्षों ने और सोम ने मिलकर उस गर्भ का पालन-पोषण किया. कालांतर में उस गर्भ से मारिषा नाम की एक अत्यंत रूपवती कन्या का जन्म हुआ. हनुमान के पसीने को मछली ने पान कर लिया था, फलतः उससे मकरध्वज का जन्म हुआ, हनुमान और मकरध्वज की भेंट हनुमान द्वारा अहिरावण वध के पूर्व होती है. यह मारिषा भी स्वेदजा अर्थात् पसीने से जनमी संतान थी.

दस प्रजापति प्रचेताओं के प्रयास से एक पुत्र जनमा, जिसे संसार ने प्रजापति दक्ष के नाम से जाना-पहचाना समझ में नहीं आता. इन्हीं की कन्या थी सती, जो भगवान शंकर को ब्याही गयी थीं. इन्हीं दक्षप्रजापति की सत्ताइस कन्याएं चंद्रमा को ब्याही गयी थीं. इन्हीं दक्ष प्रजापति की तरह कन्याएं. महर्षि कश्यप को ब्याही गयी थीं. दस प्रजापति प्रचेताओं की भार्या मारिषा की नियति को देखकर चार राजर्षियों द्वारा भोगी गयी, ययाति कन्या माधवी, पांच पतियों की भोग्या पांडव प्रिया द्रौपदी की शिकायत मद्दिम पड़ जाती है. दक्षा की बेटी सती, जो भगवान शिव को ब्याही गयी थी, पातिव्रत का पर्याया बन गयी थी. दक्ष के यहां यज्ञ में पति की निंदा सुनने से यज्ञ-अग्नि में भस्म हो जाना जिसने बेहतर समझा, उस सती के पिता दक्ष दस पिताओं के सहकारी प्रयास का उत्पादन फल थे. कैसी बिडंबना है यह? एक प्रार्थना पर वरदान था या अभिशाप?

एक राजकुमारी थी वह. विवाह के तुरंत बाद ही विधवा हो गयी, उसने भगवान विष्णु की आराधना की. पतिविहीनता नारी का जीवन कितना निरर्थक होता है, न वह फूली. भगवान विष्णु प्रकट हुए. उन्होंने वरदान दिया, "राजकुमारी आगामी जन्म में एक ही जन्म में एक ही देह को तुझे दस पति प्राप्त होगें, जिनसे तू ऐसे प्रजापति पुत्र को जन्म देगी, जिससे संसार में सृष्टि कार्य संपन्न होंगे." वही विधवा राजकुमारी अथवा रानी, मारिषा के रूप में जनमी और दस प्रजापति प्रचेताओं की पत्नी बनी.

अप्सरा तो भोगती है, संतान को जन्म देती है. परंतु उसके पालन-पोषण से उसको कभी सरोकार नहीं रहता. सुना है, कोयल भी अपने अंडे कभी स्वयं नहीं सेती. उसके अंडे कौवे सेते हैं. अप्सरा जानती है कि वह संतान को पोषण देगी तो स्वर्ग का बाजार कौन चलायेगा? ऋषियों की तपस्या कौन भ्रष्ट करेगा? यह एक बडा काम है, इससे अप्सरा को फुर्सत कहां है, जो वह बच्चे पाले. उर्वशी के वशिष्ठ, अगस्त्य, कृपाचार्य अथवा कृपी हों मेनका की शकुंतला हो अथवा प्रम्द्वरा. घृताची के सूत हों अथवा द्रोण, सभी का उनकी अप्सरा जननियों ने नहीं, वरन औरों ने पोषण किया है, फिर प्रम्लोचा अपवाद कैसे बनती. उसकी बेटी मालिनी और मारिषा को भी औरों ने पाला-पोसा, जवान किया और दस पतियों के बीच मारिषा के दस टुकड़े कर दिये गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूमो कलीसिया

लैंगस्टन ह्यूज़

ईसा की मौत के करीब दो हजार साल बाद पादरी विलियम जोंस को भी सलीब पर टंगने की सूझी. पर हाय री किस्मत, उनके विश्वस्त हिक्स ने उनकी हालत यह कर दी कि वे बीच में ही आधुनिक ईसा बनने का सपना छोड़कर जान की भीख मांगने लगे. प्रस्तुत है अश्वेत अमरीकी लेखक लैंगस्टन ह्यूज की व्यंग्यकथा.

पादरी विलियम जोंस उन प्रचारकों में से थे जो जानते हैं कि आत्मा को कैसे आनंदित किया जाता है और रूह को कैसे सन्मार्ग पर लाया जाता है. अक्सर तो वह पुलपिट पर से बहुत धीमे बोलना शुरू करते. लोग सोचते कि उनका प्रवचन बस यूं ही रहेगा. लेकिन जब वह बोलकर चुकते तो आराधना-भवन की दीवारें फट-सी पड़तीं, दरवाजे भड़भड़ाकर खुल जाते. महान प्रचारक थे विलियम जोंस. लेकिन, वह संतुष्ट नहीं थे. वह और भी महान होना चाहते थे. और यही महत्वाकांक्षा उनके पतन का कारण बनी.

पादरी रेवरेंड जोंस लगभग एक साल से सेंट लुईस के पिछवाड़े वाली गलीयों के एक छोटे गिरजाघर में कलीसिया की सेवा कर रहे थे. यह उन अश्वेत गिरजाघरों में था जो सप्ताह की हर रात खुले रहते हैं. वहां हर रात प्रार्थना होती, सिस्टरें झांझ बजाती, भजन गाती और आनंदित होती हैं और पादरी प्रवचन करते हैं.

पादरी जोंस हमेशा अपना प्रवचन 'उसके हाथ में' से शुरू करते, जो

उनका कथ्य-गीत था. और इसी गीत के साथ वह अपना प्रवचन समाप्त भी करते थे. दरअसल, इस गीत की लय ही कुछ ऐसी थी कि एक बार यह जोर पर आ जाता तो लोग अपने हाथ-पांव चलाये बिना नहीं रह पाते थे.

उसके हाथ में !
उसके हाथ में !
...यीशु के हाथ में !

गीत चलता और पादरी जोंस जोरों से बोलते, "आओ ! सारे आओ ! आओ, मेरी भेड़ों ! यीशु के लिए दो !" और गरीब धोबिनें, बड़े मोटे रसोइये और लंबे पतले ट्रक ड्राइवर, सब आते और हर शाम दो बार पादरी जोंस के लिए चंदा डालते. इन क्षणों में पादरी जोंस गुहारते "झूमो कलीसिया, झूमो !"

लेकिन, यह उनकी महत्वाकांक्षा की इति नहीं थी. वह एक बड़ा आदमी बनना चाहते थे. वह सेंट लुईस में बंधना नहीं चाहते थे. आकांक्षा हॉलीवुड तक का धमाका करने की थी.

पादरी जोंस अपने समय के नामधारी पादरियों की कार्य प्रणाली का ध्यान करते और सोचते, "मुझे भी अपने दिनों और वक्त में अखबारों की सुर्खियों में छाना है. यह कस्बा बहुत छोटा है मेरे लिए ! मैं चाहता हूं कि सारी दुनिया मेरा नाम सुने !"

पादरी जोंस प्रचारक तो ठीक-ठाक थे ही, देखने-भालने में भी ठीक-ठाक थे. वह खूब जोर से रो-कराह सकते थे. वह सिस्टरों को इस तरह से भाव-विह्वल करने में माहिर थे. जैसा कि कस्बे के इस हिस्से में कोई अश्वेत पादरी आज तक नहीं कर पाया था. इतना ही नहीं अपनी जवानी के दिनों में, जब वो पापी हुआ करते थे, उन्होंने बदनाम बस्तियों में हल्की-फुल्की धक्का-मुक्की भी की थी. इसीलिए वे जानते थे कि मादा स्वभाव को कैसे प्रभावित किया जा सकता है.

सेंट लुईस में अपने प्रवास के इन दिनों में पादरी जोंस लगातार एक ऐसी मादा भेड़ की तलाश में लगे रहे थे जिसे वह अपने निजी झुंड में शरण दे सकते. अपने गिरजाघरों की तमाम सिस्टरों में से आखिरकार उन्होंने सिस्टर मैगी ब्रैडफोर्ड को चुना. यह बात नहीं कि सिस्टर मैगी खूबसूरत थी. बिल्कुल नहीं. लेकिन सिस्टर मैगी खयी-पीयी, सांवली, अच्छे स्वभाव की, मोटी और संपन्न थीं. उसके पास चार बड़े-बड़े मकान थे जो उसने किराये पर उठा रखे थे और उससे उसे अच्छी खासी आमदनी थी.

पादरी जोंस ने अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का राजदार सिस्टर ब्रैडफोर्ड को एक सुबह उस समय बनाया जब उन्होंने जागने पर उसे अपनी बगल में पाया.

उन्होंने कहा, "मैगी, मैं फैलना चाहता हूं. मैं एक बहुत बड़ा आदमी बनना चाहता हूं."

दोनों लेटे-लेटे सोचते-विचारते रहे. आखिरकार सिस्टर मैगी बोलीं, "बिल जोंस, एक बात तुम्हें मालूम है, जो मैंने बचपन में देखी थी और आज तक नहीं भूली हूं? मिसीसिपी में एक प्रचारक हुआ करता था. वह एक दिन मरा, दफन हुआ और फिर जी उठा. मैं इस बात को आज तक नहीं भूल पायी हूं. और न ही वहां का और कोई व्यक्ति भूल सका है. यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविस्मरणीय है. तुम ऐसा ही कुछ क्यों नहीं करते?''

''उसने ऐसा कैसे किया, सिस्टर मैगी?''

''उसने किसी को भी नहीं बताया है कि उसने यह किया कैसे, ब्रदर बिल. उसने बस इतना ही बताया कि यह परमेश्वर का अनुग्रह था.''

''हो सकता है. हो सकता है'' पादरी जोंस ने कहा.

वह कुछ देर और लेटे हुए सोचते रहे. फिर वह बोले, ''लेकिन प्यारी, मैं इससे भी कुछ बेहतर करूंगा. मैं अपने-आपको सलीब पर ठुकवाऊंगा !''

अब क्योंकि, पादरी जोंस की इस योजना को मलीभूत होने के लिए एक और साथी की आवश्यकता थी, इसलिए इन्होंने इस काम के लिए ब्रदर हिक्स को चुना जो उनके आने से भी पहले गिरजाघर का एक प्रमुख स्तंभ था.

यह अपने आपमें एक दुर्भाग्यपूर्ण बात थी कि जोंस को इस बात का कोई इल्म नहीं था कि हिक्स (जिसे लोग बुलडॉग कहते थे) पहले ... सिस्टर ब्रैडफोर्ड ने तो पादरी जोंस को कभी अपने भूतपूर्व प्रेमियों के विषय में बताया नहीं था. तो बेचारे जोंस को कैसे पता होता कि उनमें से कुछ अब भी सिस्टर मैगी पर दिल रखते थे और मन ही मन उनसे जलते थे?

पादरी जोंस ने हिक्स को अपनी सलीब पर मरने और फिर जी उठने की योजना के विषय में बताते हुए उससे कहा, '' हिक्स ! इस चमत्कार से मैं दुनिया का महानतम पादरी बन जाऊंगा. इसमें कोई शक नहीं ! जब मैं विश्व-विख्यात हो जाऊंगा, बुलडॉग, और दुनिया भर की सैर करता फिरूंगा, तो मैं तुम्हें अपने प्रमुख सहायक के रूप में अपने साथ ले जाऊंगा. तुम मेरे दाहिने हाथ होगे, और सिस्टर मैगी मेरा बायां हाथ होगी. आमीन !''

ब्रदर हिक्स ने योजना से सहमति प्रकट की. पादरी जोंस ने हिक्स से कहा, ''यह जरूर सफलीभूत होगी, यदि तुम अपनी जुबान पर ताला रखो और जैसा मैं कहता हूं, करते जाओ—ठीक जैसे मैं कहता हूं. मैं तुम पर भरोसा करता हूं, कि इस लिए सुनो ! तुम जानते हो और मैं जानता हूं कि मैं सचमुच नहीं मरने जा रहा ! न ही मैं सचमुच कीलियां ठुकवाऊंगा. इसीलिए मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत है. मैं चाहता हूं तुम मेरे लिए एक बहुत बड़ी सलीब तैयार करवाओ, वेदी से भी ऊंची—इतनी ऊंची कि मुझे इस पर अपने आप को कीलियों से ठुकवाने के लिए सीढ़ी से चढ़ना पड़े, और तुम्हें मेरे कीलियां ठोकने के लिए. सलीब जितनी अधिक ऊंची हो उतना अच्छा, जिससे कि पट्टे न दिखायी पड़ें—क्योंकि मैं पट्टों से बांधा जाऊंगा, सुन रहे हो. रोशनी गुलाबी रंग की होगी जिससे पट्टे न दिखायी पड़े. फिर, तुम आओगे और कील ठोकने का काम करोगे...और कोई नहीं, बस तुम मेरे हाथ-पांव की उंगलियों के बीच में कीलें ठोकोगे, उनमें होकर नहीं—बीच में —और बहुत गहरे मत ठोकना. कीलों के सिरे बाहर निकले रहने चाहिए. समझ गये न ?''

''समझ गया, ब्रदर! 'बुलडॉग हिक्स ने कहा

''फिर तुम और मैं गिरजाघर में पूरी रात और दिन अगली रात तक रहेंगे जब कि लोग मुझे जी उठता देखने के लिए नीचे उतार सकते हो. लेकिन जब तक मैं सलीब पर रहूंगा, मैं मरे होने का नाटक करूंगा, खास तौर से जब अखबार वाले आयेंगे. सोमवार की रात को —हल्लेलूया ! मैं जी उठूंगा और चंदा लूंगा.''

''आमीन !'' ब्रदर हिक्स ने कहा.

जब पादरी जोंस ने अखबारों रेडियो और मौलिक रूप से यह ऐलान करवा दिया कि वह सलीब पर चढ़कर मरेंगे, मरे रहेंगे, और जी उठेंगे. उस रात गिरजाघर के निकट नहीं पहुंचा जा सकता था. पूरे सेंट लुईस पूर्वी सेंट लुईस और लगभग हर स्थान से अश्वेत इस चमत्कार के प्रत्यक्षदर्शी होने की गरज से वहां आये.

गिरजाघर खचाखच भरा हुआ था. एक भी सीट खाली नहीं थी. दुखी सिस्टरों की आंखों से आंसू बह रहे थे, जबकि अभी पादरी जोंस उस सलीब पर पहुंचे भी नहीं थे जो कि नयी लकड़ी की बनी पुलपिट के पीछे खड़ी थी. गुलाबी रोशनी में, सिस्टर ब्रैडफोर्ड के बनाये कागज के फूलों से सजी सलीब बहुत सुंदर लग रही थी. पादरी जोंस ने उस रात एक सशक्त प्रवचन दिया. लगता था दीवारें गिर पड़ेंगी. प्रवचन की समाप्ति पर पादरी जोंस ने गंभीर घोषणा की.

''कलीसिया के लोगों ! आज रात, जैसा कि मैं संसार को बता चुका हूं, मैं मरने जा रहा हूं. मैं इस सलीब पर ठुकने जा रहा हूं और सांस छोड़ दूंगा. लेकिन कल, सोमवार की रात, इक्कीस अगस्त को, बारह बजे, मैं फिर जी उठूंगा. आमीन ! चौबीस घंटे सलीब पर रहने के बाद, हल्ले-लूया. और पूरा सेंट लुईस उद्धार पा सकता है—यदि वे मात्र मुझे आकर देखें. अब, इससे पहले कि मैं सीढ़ी से सलीब पर चढ़ूं, आइये हम अंतिम बार 'उसके हाथ में' गायें...क्यों मैं तुमसे कहता हूं कि मैं वहीं हूं. गाने के साथ-साथ, हर व्यक्ति चंदे की मेज पर आये और मेरे सिधारने से पहले इस गिरजाघर की मदद करें. दिल खोलकर दीजिये.''

पियानों ने धुन छेड़ी, झांझ बजीं, हाथों में तालियां पीटीं. पादरी जोंस और उनके बच्चे गाने लगे:

उसके हाथ में !
उसके हाथ में !
...यीशु के हाथ में !

''आइये हम प्रार्थना करें.'' और जब हर पीठ प्रार्थना में झुकी, पादरी जोंस-सीढ़ी पर चढ़कर सलीब पर पहुंच गये. उनके पीछे ब्रदर हिक्स हथौड़ा और कीलें चढ़ा. सिस्टर ब्रैडफोर्ड दहाड़ें मारकर चीखी. गिरजाघर में उपस्थित भीड़ भावावेश में आंदोलित हो उठी.

पादरी जोंस अपने आपको प्रसिद्ध करने वाले थे—यह हो रहा था. और सब कुछ ठीक-ठाक हो गया होता अगर, ब्रदर हिक्स चाहता... दोमुंहा बदमाश ! न जाने कैसे उस रात शैतान बुलडॉग हिक्स के अंदर घुस गया और उस पर पूरा अधिकार जमा लिया.

हुआ यह कि हिक्स सिस्टर मैगी ब्रैडफोर्ड के बारे में सोचने लगा, और इस बारे में कि कैसे पादरी जोंस मैगी का सबसे घनिष्ठ प्रेमी बन बैठा था. यह सोचते ही वह पागल हो गया. ईर्ष्या का पुराना हरा सांप उसके मन पर लोटने लगा—ठीक प्रार्थना सभा में, ठीक सलीब की सीढ़ियों पर, अनुष्ठानों के चरम बिंदु पर. हे प्रभु, दया करो !

हिक्स अपने पीछे एक हाथ में हथौड़ा और दूसरे हाथ में ढेर सारी कीलें लेकर चढ़ा. वह पादरी जोंस को उस सलीब पर ठोंकने जा रहा था. हिक्स ने सोचा, 'जब मैं उसे ठोकने ही जा रहा हूं, तो क्यों न सचमुच में ठोक ही दूं? यह नीच मिसीसिवी से यहां आकर मेरी प्रेमिका को मुझसे छीनकर ले जाना चाहता है.'

पादरी जोंस ने अपनी कमर, कंधों, और टखनों को बांधने के लिए पट्टी का साज-सामान तैयार कर लिया था जो उनको लंबे काले कोट के नीचे छुपा हुआ था. ये पट्टे सलीब के पीछे लगे हुकों में फंसते थे, दर्शकों की नजरों से परे जिससे वह वहां उदास और दुखी दिखते हुए, लटके रह सकते थे, और कीलियां ठुकाने का नाटक कर सकते थे, ब्रदर हिक्स को उनकी हाथ-पांव की उंगलियों के बीच में कीलें लगानी थीं. हल्लेलूया ! झूमो, कलीसिया, झूमो ! उत्तेजना तीव्र थी. सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा. फिर बारी आयी कीलें ठोकने की. पादरी जोंस ने अपने जूते-मोजे उतार लिए और नंगे पांव अपनी रुदन करती कलिसिया को अलविदा कहा. जब वह सलीब से टिक गये और उन्होंने ब्रदर हिक्स से उन्हें वहां जड़ने को कहा, तो भीड़ सिसकियां भरने लगी. लेकिन जब हिक्स ने पादरी जोंस के पांव की उंगलियों में पहली कील ठोंकी, तो लोग पछाड़े खाने लगे. सिस्टर ब्रैडफोर्ड सबसे अव्वल थी.

हिक्स ने वह पहली कील बायें पांव के अंगूठे और उसके पास की उंगली के बीच रखी और हथौड़ा चलाने लगा. पांव पट्टे से कसकर बंधा हुआ था. इसलिए पादरी जोंस उसे हिला भी नहीं सकते थे. कील का सिरा जैसे-जैसे अंगूठे के पास आता गया, हिक्स उतने ही जोरों से चोट करने लगा. आखिरकार हथौड़ा पादरी जोंस के पांव पर पड़ा, उनके अंगूठे पर धाड़!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ईश्वर का मिथक॥

बर्ट्रेंड रसेल

विज्ञान के आने से पहले दुनिया में भगवान ही सर्व शक्तिमान था. सर्वथा अनुकूल परिस्थितियों में भी आदमी कुछ करने में असमर्थ नहीं था. बल्कि यदि वह ईश्वर को नाराज कर देता तो सारी परिस्थितियां ही उसके विपरीत हो जातीं. यह सब भूचाल, बीमारियों, अकाल और युद्ध में पराजय के रूप में सामने आता था. चूंकि इस प्रकार की घटनाएं होती ही रहती थीं, इसलिए यह मान लिया जाता था कि ये सब ईश्वर की नाराजगी के कारण हो रही हैं. पृथ्वी के राजाओं के सादृश्य से लोग मान लेते थे कि ईश्वर को नाराज करने का सबसे बड़ा कारण है, अविनयी होना. यदि आप अपनी जीवन नैया को बिना किसी विपत्ति के खेना चाहते हैं तो आपको विनम्र होना होगा. आपको महसूस करना होगा कि आप असहाय हैं और इस बात को ईश्वर के सम्मुख हमेशा प्रकट करते रहना होगा. पर जिस ईश्वर के आगे आप इतने दीन बन रहे हैं, उसकी कल्पना आदमी जैसी ही की गयी है. इसीलिए पूरा ब्रहमाण्ड घर की ही तरह मानवीय और आरामदेह है. यदि आप एक बड़े परिवार में सबसे छोटे हैं तो कई बार यह आपके लिए कष्टकर भी होता है पर कभी अजनबी या अबोधगम्य नहीं होता.

वैज्ञानिक जगत में सब कुछ बदल गया है. चीजें आपकी इच्छा के अनुकूल प्रार्थना या विनम्रता के कारण नहीं होतीं बल्कि प्राकृतिक नियमों की जानकारी के कारण होती हैं. इस तरीके से आप जो शक्ति ग्रहण करते हैं वह पहले मानी गयी प्रार्थना की शक्ति से काफी बड़ी तथा विश्वसनीय होती है क्योंकि यह आप कभी नहीं जान सकते कि आपकी प्रार्थना को स्वर्ग में स्वीकार कर लिया गया है या नहीं. इसके अतिरिक्त प्रार्थना की शक्ति की कुछ सीमाएं भी थीं. अधिक मांगना नास्तिक होने की निशानी है. पर विज्ञान की शक्ति की कोई ज्ञात सीमा नहीं है. कहा जाता है कि विश्वास तो पर्वतों को भी हटा सकता है. पर इस पर कोई विश्वास नहीं करता. आज यदि हम कहते हैं कि परमाणु बम पर्वतों को हटा सकता है तो सभी विश्वास कर लेंगे.

यह भी सच है कि यदि हम ईश्वरीय व्यवस्था की कल्पना खत्म कर दें तो हमें काफी असुविधा का सामना करना पड़ेगा. सूरज ठंडा हो सकता है या एक धमाके के साथ खत्म हो सकता है, पृथ्वी का वातावरण खत्म हो सकता है और वह रहने के लिए अयोग्य हो सकती है. जिंदगी बहुत कम समय की, छोटी सी आवागमनशील शै हैं जो किसी असुरक्षित कोने में रखी है. यह कोई ऐसी चीज नहीं है कि यदि व्यक्तिगत रूप से आप इससे जुड़े हुए नहीं हैं तो आप इसका कुछ भी कर लें. पर किसी वैज्ञानिक दृष्टि वाले मनुष्य के लिए यह सब सोचना कोई अर्थ नहीं रखता. आदमी अपनी तकनीकों में उचित सुधार करके रेगिस्तान को उपजाऊ बना सकता है, उत्तरी ध्रुव की सारी बर्फ को पिघला सकता है, और एक-दूसरे की हत्या भी कर सकता है. हमारे कुछ काम लाभ-पहुंचायेंगे, कुछ हानि. पर ये सभी काम आदमी की ताकत को जरूर प्रदर्शित करेंगे. और इस प्रकार इस ईश्वर विहीन धरती पर हम ही ईश्वर बन जायेंगे. □

"आह-ओह." वह दबी सांस में कराहे, "हौले-हौले, भाई!"

"दया करो,"गिरजाघर में उपस्थित ब्रदर और सिस्टर चिल्लाये, "हमारे पादरी पर दया करो."

एक बार फिर हथौड़ा उनके अंगूठे पर पड़ा. लेकिन उनकी चकित और दुखित 'उफ ..' का अति मानवीय स्वर चीखती कलीसिया के शोर-शराबे में खोकर रह गया.

"बुलडॉग, मैं कहता हूं, हौले-हौले," पादरी जोंस फुसकारे, "यह सचमुच की नहीं है."

ब्रदर हिक्स रुका. उसके चेहरे पर एक गंभीर मुस्कान थी. फिर उसने अपना ध्यान दाहिने अंगूठे पर केंद्रित कर दिया. वहां उसने उंगलियों के बीच दूसरी कील रखी और ठोंकने लगा. एक बार फिर, जब कील लकड़ी में धंसी तो, उसने हथौड़ा अंगूठे तक आ जाने पर भी रुकने का कोई संकेत नहीं दिया. वह पादरी जोंस के नंगे नाखूनों पर तब तक प्रहार करता ही गया जब तक कि वह दर्द से चिल्लाने नहीं लगे. वह अपनी रोंगटे खड़े कर देने वाली चीख को रोक नहीं पाये. पसीने की बूंदें उनके माथे पर छलछला आयीं और उनकी कमीज पर टपकने लगीं.

गनीमत थी कि गिरजाघर के अंदर भारी शोर था, नहीं तो दर्शकों को बड़ा विचित्र संवाद सुनने को मिलता.

"हे भगवान, हिक्स, क्या कर रहे हो तुम?" पादरी जोंस सीढ़ियों पर चढ़े हिक्स को घूरते हुए चिल्लाये.

"मैं तुम्हें सलीब पर जड़ रहा हूं, जोंस ! और मैं सचमुच जड़ रहा हूं."

"आ-ऊ-ऊ-!तुमको पता नहीं क्या, मुझे चोट लग रही है? मैंने तुमसे कहा था कि इतने जोर से मत ठोंकना."

लेकिन हिक्स पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा.

"किसके लिए कह रहे थे तुम, कौन तुम्हारा दाहिना हाथ होगा, जब तुम यहां से उतरकर अपनी सैर शुरू करोगे?" हिक्स ने पूछा.

"तुम, ब्रदर." पसीना चुचुआते पादरी जोंस ने कहा.

"और किसके लिए कहा था तुमने, कौन तुम्हारा बायां हाथ होगा?"

"सिस्टर मैगी ब्रैडफोर्ड." पादरी जोंस सलीब पर से कराहते हुए बोले.

"नहीं, वह नहीं होगी."कहते हुए ब्रदर हिक्स ने पादरी जोंस के अंगूठे पर एक जोरदार प्रहार किया.

"प्रभु, मुझे बचाओ !" पीड़ित पादरी जोंस चिल्लाये. रोती हुई कलीसिया ने उनकी चीख को दबा दिया.

ब्रदर बुलडॉग हिक्स दो और सीढ़ियां ऊपर चढ़कर हाथ में कीलें ठोंकने की तैयारी करने लगा. उसका शैतान चेहरा पादरी जोंस के ठीक सामने था. वह फुसकारा. "मैं तुम दुष्ट पादरियों को सबक सिखाऊंगा, जो सेंट लुईस आकर सोचते हैं कि वे सब जिस भी लड़की पर उनका मन आये, उसे लेकर टहल सकते हैं. मैं तुम्हें सबक सिखाऊंगा कि तुम मेरी पसंद की लड़कियों को अछूता छोड़ दो. लो यह रही कील."

ब्रदर हिक्स ने एक बड़ी कील पादरी जोंस की ठीक हथेली पर रखी. वह इसे ठोकने ही वाला था कि भयभीत पादरी जोंस चीख पड़े. उन्होंने पट्टों को तोड़ना चाहा. लेकिन वे बहुत मजबूत थे. काश वह एक पांव भी छुड़ाकर ब्रदर बुलडॉग हिक्स के एक लात जमा पाते.

हिक्स ने ठोकने के लिए हथौड़ा उठाया ही था कि पादरी जोंस दोबारा चीखे. इस बार उनकी चीख इतनी तेज थी कि उसे पूर्वी सेंट लुईस तक सुना जा सकता था. यह भीड़ की चीख-पुकार के ऊपर बम की तरह फटी—और इसने अपना असर दिखाया. अचानक कलीसिया शांत हो गयी. सब लोग इस बात को समझ गये कि यह किसी मरने की चीख थी.

सिस्टर ब्रैडफोर्ड ने महसूस किया कि कहीं कुछ गलत हो गया है, इस लिए वह गीत गुनगुनाने लगीं जो उसके प्रिय पादरी ने उससे कीलें ठुकने के बाद गाने के लिए कहा था.

लेकिन उसके इस गाने में किसी ने भी उसका साथ नहीं दिया. हर किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

को उस सब में रुचि थी जो उसके सामने घटित हो रहा था, इस तरह से सिस्टर ब्रैडफोर्ड का स्वर दबकर रह गया.

इस बीच, ब्रदर हिक्स ने फिर हथौड़ा उठाया, लेकिन पादरी जोंस ने ठीक उसके मुंह पर-थूक दिया. उन्होंने न केवल थूका, बल्कि अपने सहयोगी को एक ऐसा अपशब्द कहा जो किसी इंसान या जानवर पर शोभा नहीं देता, फिर उनकी एक और चीख उभरी और वह असह्य वेदना में पुकारे, "सिस्टर मैगी, ब्रैडफोर्ड, मुझे यहां से उतारो ! मैं कहता हूं, आकर... मुझे... यहां से... उतारो !"

ब्रदर हिक्स संतोष के साथ पादरी जोंस को ताकता सीढ़ी पर खड़ा था, उसका हथौड़ा अब भी उठा हुआ था. हांफते हुए पादरी जोंस ने उसे धमकी दी कि अगर उसने एक भी कील ठोकी तो वह उसे जान से मार देंगे.

"मुझे बस, यहां से छूट जाने दो, फिर मैं तुमसे आदमी की तरह लड़ूंगा," आंधी में पेड़ के समान इधर-उधर हिलते-डुलते पादरी जोंस ने कहा.

"तो फिर, उतर जाओ," हिक्स सीढ़ी पर से जोर से चिल्लाया, "उतर जाओ, जोंस, पानी का बहना जितना निश्चित है, मैं तुम्हें दिखा दूंगा—औरतबाज, निकृष्ट, नीच, जालसाज ! मैं तुम्हें खाली हाथों से ही पाट डालूंगा !"

"प्रभु दया करो."कलीसिया चिल्लायी.

सलीब से अपने को छुड़ाने की कोशिश में पादरी जोंस की एक धमनी कट-सी गयी. उन्होंने याचनापूर्ण स्वर में कहा, "सिस्टर मैगी, आकर मुझे उतारो !" उनके चेहरे पर पसीना टपक रहा था.

लेकिन सिस्टर ब्रैडफोर्ड पशोपेश में थी. वास्तव में, वह भयाक्रांत थी. सिस्टर ब्रैडफोर्ड का सिर चकरा रहा था.

"पादरी जोंस, आपको मतलब है आप वास्तव में नीचे आना चाहते हैं?" वह अपने स्थान से क्षीण स्वर में बोली.

"हां," पादरी जोंस ने कहा," क्या तुम सुन नहीं सकती? मैं तुम्हें बीस बार कह चुका हूं कि मुझे नीचे उतारो."

उसी क्षण, ब्रदर हिक्स ने पांव के नाखूनों पर एक बार फिर हथौड़ा ठोक दिये. इस बार सलीब से जो कुछ कहा गया वह किसी के सुनने योग्य नहीं था. पलक झपकते ही, सिस्टर ब्रैडफोर्ड जोंस की बगल में आ गयी. अंत में उसे महसूस हुआ कि शैतान हिक्स के अंदर घुस गया होगा. (जैसा कि वह उन दिनों आ जाता था जब उसकी उससे पटती थी), वह अपने पादरी की सहायता के लिए पहुंच गयी. उसने सीढ़ी को नीचे से पकड़ा, और हिक्स को पुलपिट पर पटक दिया.

"तुम मेरे पादरी को सलीब पर नहीं चढ़ा सकते," वह चिल्लायी, "सचमुच में नहीं, "जोश में भरकर, वह उन पट्टों को काटने लगी. जिनसे पादरी जोंस बंधे हुए थे. जल्दी ही बेचारे जोंस फर्श पर फिसल आये. उनके पांव हथौड़ों की चोटों से इतने दुख रहे थे कि वह बिना मदद के खड़े भी नहीं हो सकते थे.

"मुझे हिक्स से निपट लेने दो," पादरी जोंस बस इतना ही बोल पाये, "वह जानता था कि मैं कीलें इतनी नजदीक नहीं चाहता था." गिरजाघर में व्याप्त घोर नीरवता में हर व्यक्ति ने उन्हें उकराते सुना, "प्रभु, मुझे हिक्स से निपटने दो." सिस्टर मैगी की सुरक्षात्मक बाहों में घिसटते हुए वह कहते गये.

"पीछे हटो, बुलडॉग," सिस्टर मैगी ने हिक्स से कहा," और अपने पादरी को निकलने दो. वह जैसे ही इस योग्य हो जायेंगे, वह तुम्हें सीधा कर देंगे—लेकिन अभी, वह मेरे हाथ में हैं. पीछे हटो, मैं कहती हूं, और उन्हें निकलने दो."

हिक्स पीछे हट गया. भीड़ में फुसफुसाहट हुई. पादरी जोंस ने बाहर की ओर गमन किया. इस तरह से समाप्त हुआ पादरी विलियम जोंस का महत्वाकांक्षी कार्य जीवन. उन्होंने फिर कभी सेंट लुईस में पादरीगिरी नहीं की. न ही वह हिक्स से भिड़े. वह बस वहां से फूट लिये. ◻

अनुवाद : मौज़ेज़ माइकेल

16 लाख उपभोक्ताओं को लाभ

दिल्ली प्रशासन द्वारा शुरू किये गये "चलते-फिरते बाजार" की योजना से पिछले दो वर्षों के अन्दर 16 लाख से भी अधिक उपभोक्ताओं को लाभ पहुंचा है। इस योजना के अन्तर्गत उपभोक्ताओं को उनके घर के निकट दिन-प्रतिदिन उपयोग में आने वाली आवश्यक वस्तुएं उचित दर पर उपलब्ध कराई जाती हैं।

यह योजना अक्तूबर 1983 में शुरू हुई थी और इसके अन्तर्गत अब तक 4 करोड़ 15 लाख रुपये से अधिक मूल्य की बिक्री की जा चुकी है।

यह योजना बहुत ही सफलतापूर्वक चल रही है। इससे आम लोगों को और विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को काफी लाभ पहुंचा है.

इस योजना की मुख्य विशेषतायें हैं:—

- 34 वाहनों, जिनमें 23 दिल्ली राज्य आपूर्ति निगम के तथा 11 दिल्ली उपभोक्ता सहकारी भण्डार के हैं, द्वारा प्रतिदिन आवश्यक वस्तुओं की बिक्री।
- शहर के विभिन्न भागों में 99 वितरण स्थान।
- चीनी, चाय, दालें, कापियां, सब्जियां, सरसों और नारियल का तेल तथा आयातित तेल, कन्ट्रोल का कपड़ा, साबुन, मसाले, आलू तथा प्याज आदि आवश्यक वस्तुओं की बिक्री।
- चाय, चीनी तथा दालें जैसी वस्तुएं एक किलो की सीलबंद प्लास्टिक थैलियों में तथा वनस्पति तेल पोलीथीन की एक किलो की विशेष थैलियों में उपलब्ध।

दिल्ली प्रशासन उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प है

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली द्वारा प्रचारित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरब्बास

पार लागर क्विस्त

बरब्बस ईसाई मिथक कथाओं का एक पात्र है. वह डाकू था और जब उसे सूली पर चढ़ाने की सजा दी गयी तो ईसा मसीह ने उसके स्थान पर खुद सूली पर चढ़ना स्वीकार कर लिया. बरब्बस को छोड़ दिया गया. प्रस्तुत है उसी बरब्बस की मुक्त होने के बाद की मानसिक स्थितियों एवं त्रासदियों की दास्तान.

अपने उपन्यास 'बरब्बस' के लिए इस स्वीडी लेखक को 1951 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था.

सब जानते हैं कि वे तीनों वहां सूलियों पर किस प्रकार लटकाये गये थे और जो उन्हें घेरे खड़े थे--वे कौन-कौन थे. उनकी मां मेरी और मेटेलीन, वेरोनिका, साइमन जो सूली ढोकर ले गया था और जोसेफ जो उनसे वहां लिपटा हुआ था. लेकिन पर्वतीय ढाल पर कुछ नीचे-एक तरफ को एक व्यक्ति और खड़ा था जिसकी दृष्टि बीच की सूली पर लटके मरणासन्न व्यक्ति पर गड़ी हुई थी. इस पूरी घटना को आदि से अंत तक देखने वाले उस व्यक्ति का नाम बरब्बस था.

वह गवर्नर के निवास-स्थान से लेकर यहां तक आने वाली भीड़ के पीछे-पीछे बल्कि उससे कुछ दूर रहते हुए आया था. जब क्लांत दंडित बंदी अपनी सूली के बोझ के कारण उसके नीचे दबकर गिर गया था तब वह सूली से पीछे दूरी पर ही रुक गया था और उसने सचेत भाव से अपने आपको सूली के पास आने से रोका था. लेकिन यह क्या हुआ, यकायक सारी पहाड़ी पर अंधेरा छा गया. ऐसा लगा जैसे सूर्य ज्योतिहीन हो गया है. घना अंधेरा हो गया. इसी अंधेरे में से उस व्यक्ति की आवाज आयी, "ओ मेरे ईश्वर, मेरे ईश्वर, तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया है?"

बरब्बस स्वयं भयभीत हो गया था. जब धीरे-धीरे प्रकाश पुनः लौट आया जैसे वह उषाकाल में आता है तो उसका भी साहस बंधा.

क्रमशः. पहले जैसा ही वातावरण पुनः हो गया.

डेविस सिंहद्वार से नगर में प्रविष्ट होने के बाद जब बरब्बस सड़क पर कुछ आगे बढ़ गया तो उसे एक तरूणी मिली. उसने देखा युवती के कपड़े फटे हुए थे और वह नंगे पैर थी. उसके पैर के पंजे चौड़े और गंदे थे. चलते-चलते उन्हें एक दरवाजा मिला जिसके अंदर का भाग ऐसा लगता था जैसे कोई अंधेरा गड्ढा हो. उस स्थान से लोगों को जोर से बातें करने की आवाज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रही थी. वे अभी उस स्थान से कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि उन्हें पुकारती हुई एक मोटी-सी स्त्री दरवाजे के बाहर निकल आयी. उसने जोर से आवाज देकर बरब्बस को अपने पास बुलाया. मोटी स्त्री ने दोनों को पकड़ लिया और दरवाजे के अंदर ले गयी. उनका दो आदमियों तथा तीन स्त्रियों ने जोरों से स्वागत किया. सभी बरब्बस से बातें करने के लिए उत्सुक थे, अतएव सभी एक साथ बोलने लगे. सबने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि वह बंदीगृह से मुक्त हो गया और सबसे बड़े सौभाग्य की बात तो यह है कि उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति सूली पर चढ़ा दिया गया.

इस बीच एक स्त्री ने उस आदमी के बारे में बातचीत करना शुरू कर दिया जिसे बरब्बस के स्थान पर सूली पर चढ़ा दिया गया था. स्त्री ने बताया कि उसने कभी उस व्यक्ति को नहीं देखा लेकिन यह अवश्य सुना था कि उसने हमारे उपासनागृह के गिर कर नष्ट हो जाने तथा पूरे जेरूसलम के भूकंप द्वारा नष्ट हो जाने की भविष्यवाणी की थी. इस पर उस मोटी स्त्री ने पुनः अपनी भुजाएं बरब्बस की गरदन में डाल दीं और कहा कि उसे ठेंगे भर भी उस आदमी के सूली पर चढ़ जाने की परवाह नहीं है.

यह सुनते ही बरब्बस के साथ आयी युवती अकस्मात उठ खड़ी हुई और बरब्बस की ओर भय भरी दृष्टि से देखती हुई एकदम सड़क पर चली गयी. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि इससे उसका अभिप्राय क्या था. बरब्बस भी बड़ा अजीब-सा दिखलायी पड़ने लगा. उसकी दृष्टि कहीं ठहर नहीं पा रही थी. अंधेरा अधिक बढ़ जाने पर वे दोनों आदमी उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा कि यही समय उनके प्रस्थान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है.

दूसरे दिन बरब्बस शहर में निकला तो बहुत से लोगों से मिला. जब वह उपासनागृह के समीप पहुंचा तो मेहराबदार ऊंचे सिंहद्वार के नीचे पहुंच कर बैठ गया और कलात्मक कार्यों को देखने लगा. उसके आने के पहले से ही उस स्थान पर दो-तीन व्यक्ति बैठे थे. वे दीवार की ओर खिसक गये. वे धीरे-धीरे बातें कर रहे थे और उनके चेहरों की मुद्रा से ऐसा लगा कि उन्हें

आगंतुक का उनके समीप ही आकर बैठ जाना पसंद नहीं आया. थोड़ी देर बाद उन लोगों ने लाल दाढ़ी वाले एक आदमी से विदा ली और चले गये. बरब्बस अकेला रह गया था. उसके पास केवल भीमकाय व्यक्ति बैठा रह गया था. उसकी चमकती हुई नीली आंखों से आंसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी. आखिरकार उसने अपना सिर ऊपर उठाया तथा बरब्बस की ओर देखा, ''जिस समय प्रभु ने यातनाएं सही और अपने प्राण विसर्जित किये उस समय मैं उनके साथ न था. और उसके पहले मैंने यह भी कहा था कि मेरा उनसे कोई संबंध नहीं है. मैं नहीं जानता वापस लौटने पर वे मेरे अपराधों को किस प्रकार क्षमा करेंगे. मैं क्या कहूंगा जब वे मुझसे पूछेंगे. मैं महा अभागा पापी हूं. क्या तुम समझते हो मेरे प्रभु मुझे कभी भी क्षमा करेंगे.''

बरब्बस ने उत्तर दिया कि वह अवश्य अपने प्रभु से क्षमा पा जायेगा.

उसी समय आदमियों का एक झुंड वहां से गुजरा. उन्होंने फटे-पुराने कपड़े पहनने वाले व्यक्ति को सम्मानपूर्वक इंगित करके कहा, ''क्या तुम्हें नहीं मालूम कि इसी आदमी के स्थान पर प्रभु को सूली दी गयी?''

बरब्बस ने अपने लबादे को ठीक किया और सड़क पर जिधर वे लोग जा रहे थे उसकी विपरीत दिशा में चल दिया.

वह युवती जो बरब्बस को छोड़कर भाग आयी थी उस दिन सो नहीं सकी. वह सारी रात तारों को देखती रही और सोचती रही कि क्या होने वाला है. बात अकल्पनीय-सी लगती थी. यह सब आखिर कैसे होगा? लेकिन शीघ्र ही स्वर्ग के द्वार खुलेंगे, स्वर्गदूत उतरेंगे और सबको भोजन देंगे. कम से कम जितने गरीब हैं, उन सबका तो पेट भर ही दिया जायेगा. आह! उस समय कैसा सुखद परिवर्तन हो जायेगा. सब कुछ अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व होगा.

इसके बाद बरब्बस जेरूसलम में जितने दिन रहा, वह शहर में केवल एक या दो बार ही गया. एक बार तो ऐसा हुआ कि वह एक ऐसे मकान में पहुंच गया जो तहखाने की तरह था और उसमें वायु और प्रकाश आने के लिए दीवारों में इधर-उधर छेद थे. इसके बाद बरब्बस को दूर से एक आवाज आती सुनायी दी. बरब्बस को ऐसा लगा कि वह इस आवाज को पहचानता है. जब उसने और नीचे झुककर देखा तो वह पहचान गया कि यह वही व्यक्ति है जिसकी लाल दाढ़ी है और जो उसे एक दिन एक उपासनागृह की ड्योढ़ी में मिला था और जिसने रो-रोकर अपनी व्यथा उससे कही थी. जब वह व्यक्ति नीचे उतरकर आया तो कुछ लोग उसे बधाइयां देने को आगे बढ़े. पता नहीं कैसे अकस्मात ही एक साथ सबके सब जोर-जोर से प्रार्थना पढ़ने लगे. उसने प्रकाश की रेखा की सहायता से अपने पास खड़ी होंठ कटी युवती को भी देखा.

जब दमन कार्य आरंभ हुआ तो एक अंधे बुड्ढे आदमी ने जाकर दंडनायक से शिकायत की, '' हम लोगों के बीच रोगी बस्ती में एक औरत आ गयी है जो यह अफवाह फैलती फिरती है कि कोई मुक्तिदूत आने वाला है-- जो सारी पुरानी दुनिया को नष्ट कर देगा और नयी दुनिया बसायेगा. ''दंडनायक ने घोषणा की कि उस औरत को न्यायालय में उपस्थित होने की आज्ञा दी जायगी और उससे कहा जायेगा कि यदि हो सके तो वह अपनी रक्षा करे और जो अभियोग उसके विरुद्ध हैं उनका उत्तर दे.

जब होंठ कटी युवती को सजा सुना दी गयी तब उसे उस स्थान पर ले गये जहां अपराधियों की पत्थर मार-मारकर जान ले ली जाती थी. धर्माधिकारी ने उस युवती को दिये गये दंड का कारण बतलाते हुए कहा कि जिस आदमी ने उस पर अभियोग लगाया है वही उसे सबसे पहला पत्थर मारेगा. बुड्ढे अंधे को सामने लाया गया. लेकिन वह किसी भी तरह सबसे पहले पत्थर मारने को राजी ही न हुआ क्योंकि उसका मत था कि जब उसने उस औरत को देखा ही नहीं तब पत्थर क्यों मारे? एक अधीर व्यक्ति इतना बेचैन हो उठा कि वह नीचे गड्ढे में उतर गया और उसने एक बड़ा-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर उठाकर पूरी शक्ति से होंठ कटी युवती पर दे मारा. उस पत्थर से युवती को बड़ी गहरी चोट आयी और वह गिर पड़ी तथा उसने अत्यंत असहाय भाव से अपने हाथ ऊपर उठा दिये. बरब्बस अब आगे बढ़ आया और उस आदमी के पास दाहिनी ओर निकटतम स्थिति में पहुंच गया. पता नहीं कब अभ्यस्त हाथों ने छुरा पहला पत्थर मारने वाले व्यक्ति की बगल में भोंक दिया. यह सब कुछ इतनी तेजी के साथ हुआ कि कोई कुछ भी देख नहीं पाया. और इसके अलावा वे सब लोग पत्थर मारने में जुटे थे. जब अंधेरा हो गया तब उसके आवरण में बरब्बस पुनः उस स्थान से निकल आया जहां वह छिपा हुआ था. वह सीधा पत्थर के गड्ढे के निकट पहुंचा और उसमें नीचे उतर गया. बरब्बस जब उसे अपनी बांहों में रखे ऊपर चढ़ रहा था तब वह उसके शव का जरा-सा भी बोझ अनुभव नहीं कर रहा था. वह पहले गड्ढे के ऊपर आया और इसके बाद अंधेरे-अंधेरे ही बहुत दूर चला गया.

बरब्बस ने चौरस पत्थर का वह बड़ा-सा टुकड़ा उठाकर होंठ कटी युवती के शव को भी उसके बच्चे के शव के पास ही लिटा दिया. उसने युवती के सभी कटे-फटे अंगों को बड़ी साज-संभाल के साथ करीने से रखा जिससे वह अधिक से अधिक आराम पा सके.

जब बरब्बस स्वजनों के बीच वापस लौटा तो वे बड़ी कठिनाई से उसे पहचान सके. वह बिलकुल बदल गया था. वह सबके साथ अजनबियों सा व्यवहार करता था. जब वे लोग अपनी योजनाएं बतलाते तो वह शायद ही उनकी तरफ कोई ध्यान देता हो. वह स्वयं कभी कोई अपना मत किसी योजना के संबंध में प्रकट न किया करता था. केवल एक ही बार वह अपने पूर्वस्वरूप में वापस लौटा था. वह मौका था जब जेरियो के एक बड़े धर्माधिकारी का खजाना लूटा जा रहा था. उस लूट में उसने पागलों की तरह भाग लेकर उपासनागृह के दोनों रक्षकों को काट डाला था जो खजाने के काफिले के साथ रक्षा के लिए थे. हालांकि उन रक्षकों को मारने की कोई आवश्यकता नहीं थी. वे बेचारे कोई विरोध भी नहीं कर रहे थे. लेकिन इसके अतिरिक्त उसने कभी कोई इच्छा उन लोगों के साथ जाने या कुछ काम करने में नहीं दिखलायी. वे क्या करते हैं या क्या नहीं करते--बरब्बस को इससे बहुत कम दिलचस्पी रह गयी थी.

लेकिन वे अब ऐसे सरदार को लेकर क्या करते--जो कुछ भी नहीं करना चाहता था--अपना काम भी नहीं? नेतृत्व करने की बात तो दूर रही. वह अपनी गुफा के मुंह पर बैठा-बैठा समुद्र की ओर देखा करता था. वे यह सोच-सोच कर परेशान हुए जा रहे थे कि बरब्बस से उनका पिंड किस प्रकार छूटे. इसी बीच उनके कबीले के दो आदमी भी मारे गये. इससे उनका यह विश्वास और बढ गया कि बरब्बस जैसे मनहूस के उनके साथ रहने के कारण ही यह हुआ है. जब बरब्बस गुफा के मुंह पर बैठा-बैठा कुछ सोचा करता था तब गुफा के अंधेरे में उन लोगों की लाल-लाल चमकीली आंखें बरब्बस के विरुद्ध षडयंत्र रचने में लगी रहती थीं. और एक दिन ऐसा हुआ कि बरब्बस यकायक लापता हो गया.

बरब्बस ने अदृश्य हो जाने के बाद अपना शेष जीवन कहां और कैसे बिताया-उसका भाग्य उसे कहां-कहां ले गया--इस बारे में कोई कुछ नहीं जानता. लेकिन यह सत्य है कि लगभग पचास-पचपन वर्ष की अवस्था में वह रोमन गवर्नर के पाफोस स्थित राजमहल में एक दास के रूप में लाया गया. इसके पूर्व उसने कई वर्ष तांबे की एक खान में बंदी की हैसियत से काम किया था.

खानों में सभी गुलामों को दो-दो के जोड़ों में रखा गया था. इन जोड़ों में बहुधा लड़ाई भी हो जाती थी--लेकिन बरब्बस और सहाक में ऐसा कभी नहीं हुआ. उसने एक दिन सहाक को यह बतला दिया कि वह जेरूसलम में रह चुका है. इस पर वह आर्मेनियन बड़ा उत्सुक हो उठा और उसने कई प्रश्न पूछे. वे प्रश्न अधिकांशतः उस धर्मदूत के बारे में थे जिसे सूली पर लटका दिया गया था. सहाक ने उससे यह भी पूछा कि क्या उसने उस आदमी को देखा था. बरब्बस ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया. इसका सहाक पर विचित्र प्रभाव पड़ा. वह एकदम ध्यान मग्न हो गया. कुछ दिन बाद उसने यह भी बतलाया कि उसने प्रभु को पुनः जीवित होते हुए भी देखा था. किस प्रकार उसने एक देवदूत को उतरते देखा जिसके हाथ में एक भाला था और वह लाल लबादा पहने था और उसने अपनी ज्योतित शक्ति द्वारा किस प्रकार प्रभु की कब्र का दरवाजा खोल दिया और वे बाहर निकल गये.

इसके बाद सहाक ने बरब्बस को अपना गुप्त रहस्य भी बतलाया. उसने वह सरकारी पीतल की पट्टी दिखलायी जिस पर एक ओर उसका नाम तथा नंबर आदि पड़ा था और दूसरी ओर कुछ और लकीरें-सी खिंची थीं. सहाक ने बतलाया यह प्रभु का नाम खुदा हुआ है.

बरब्बस ने कंपित स्वर में सहाक से अनुरोध किया कि क्या वह उसके नंबर प्लेट के पीछे भी ईसा का नाम नहीं खोद सकता. उसने यथाशक्ति अपने प्लेट की नकल उस पर अच्छी से अच्छी उतार दी. इसी प्रकार कई वर्ष बीत गये. दिन, हफ्ते और महीने निकलते चले गये. उन्हें रात और दिन का ज्ञान भी न हो पाता यदि उन्हें प्रति दिन संध्या को विश्राम करने के लिए न ले जाते. इसी बीच एक उल्लेख योग्य घटना अवश्य हुई. एक दिन जब वह प्रार्थना कर रहा था तो बरब्बस ने फुसफुसा कर सहाक से कहा, "कोई आ रहा है! सावधान हो जाओ. सहाक ने तत्काल अपना काम शुरू कर दिया. आने वाला व्यक्ति दूसरा ओवरसियर था जो अपने पूर्ववर्ती के स्थान पर आया था. ओवरसियर ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में सहाक से पूछा वह झुका हुआ क्या कर रहा था तो सहाक ने उत्तर दिया, "ईश्वर की प्रार्थना."

"किस ईश्वर की?" उसने पूछा.

इसके बाद वह बहुत देर तक बातें करता और अनेक प्रश्न पूछता रहा इस घटना के बाद ओवरसियर अकसर सहाक के पास रुक जाया करता और उससे दो एक बातें कर लिया करता. बरब्बस से वह कभी नहीं बोला. ओवरसियर बराबर उस अज्ञात ईश्वर के बारे में सोचता रहा. उसकी कल्पना काम नहीं कर रही थी. उस ईश्वर का स्वरूप कैसा रहा होगा और फिर उसका सिद्धांत एक दूसरे से 'प्रेम करो'... 'प्रेम करो?'... नहीं, उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था. वह दो दीपकों के प्रकाश के अंधेरे में रुक गया. वह अकेले में विचार करना चाहता था. अकस्मात उसे प्रेरणा हुई कि वह गुलाम को वहां से हटा देगा जिससे वह जिंदा रह सके. उसने ऊपर जाते ही उस ओवरसियर को खोजा जो खेतों में गुलामों से काम लेता था. उससे अपना प्रस्ताव खान के गुलामों के ओवरसियर ने कह सुनाया. पहले तो वह राजी नहीं हुआ लेकिन बाद में खान के ओवरसियर की बात समझाने-बुझाने से मान गया. दूसरे दिन उसने सहाक से और देर तक बात की और कहा कि उसकी व्यवस्था हो गयी है. वह ऊपर खेतों में काम करेगा.

सहाक ने एक क्षण के लिए ओवरसियर का हाथ लेकर उसे अपनी छाती से चिपका लिया: लेकिन तब उसने कहा कि वह अपने साथी बंदी को न छोड़ेगा क्योंकि दोनों का ईश्वर एक है. ओवरसियर कुछ बुदबुदाता हुआ सोचता रहा और कभी-कभी तिरछी नजर से बरब्बस को देखता भी था. अंत में ओवरसियर दोनों को खान से बाहर ले जाने के लिए राजी हो गया. वे दोनों खेतों के जोतने का काम बहुत अच्छा करने लगे. वास्तविकता यह भी कि उन दोनों का जोड़ा ऐसा बन गया था कि बैलों के जोड़े की भांति ही काम करने लगा था. जब बसंत में होने वाली खेतों की जुताई समाप्त हो गयी तब उन्हें दाने की चक्की के पास ले आया गया. यह चक्की उन कई इमारतों में से एक भी जो रोमन गवर्नर के राजमहल के चारों ओर थी. यहां से अन्न बाहर भेजा जाता था. इस चक्की में उनकी एक ठिगने और काने आदमी से मुलाकात हो गयी.

सहाक ने क्रमशः अनुभव किया कि वह गुलाम अपनी तथा सबकी मुक्ति के बारे में अधिक से अधिक बातें सुनने के लिए उत्सुक है. यह ईश्वर की इच्छा है कि सहाक उस धर्म के बारे में काने को अधिक से अधिक बतलाये. एक दिन जब वे लोग दिन भर का काम समाप्त कर चक्की के पाट पर बैठे थे, सहाक ने अपनी वह प्लेट काने को दिखला ही दी और उसे बतला भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ्रीकी प्रियक कथा

आत्मा की अमरता

मृत्यु और आत्मा में दुश्मनी थी. मृत्यु ने कहा, ''मैं .... तुम्हें मार डालूंगी.'' आत्मा ने उत्तर दिया, ''मुझे .... मारा नहीं जा सकता.''

आत्मा और उसके साथी मौत के गांव गये. आत्मा ने पहले चमगादड़ को टोह लेने के लिए भेजा. मौत की कुटिया की छत के एक कोने में चमगादड़ लटक गया. किसी ने उसे देखा नहीं. मृत्यु अपने सिपाहयें से कह रही थी, ''मैं आकाश में बादल लाऊंगी, गाज, तुम मेरे घर पर, जिसमें आत्मा ठहरी हुई होगी, कूद पड़ना और सर्वनाश कर देना.'' मौत के सिपाही मान गये और तितर-बितर हो गये.

गांव में पहुंचने पर आत्मा का खूब स्वागत किया गया. मृत्यु ने अपना घर खाली कर दिया ताकि अतिथि को हर प्रकार का आराम मिल सके. चमगादड़ आकाश पर नजर गड़ाये हुए था. उसने बादल को अचानक आते हुए देख चिल्लाकर कहा, ''इसी समय चले जाओ ! भागो.''

आत्मा अपने सैनिकों के साथ एकदम भाग निकली. वे अभी अधिक दूर नहीं गये थे कि मृत्यु के घर पर गाज गिरी और घर पूरी तरह बरबाद हो गया. मृत्यु ने उल्लासित होकर कहा, ''मैंने आत्मा को मार डाला.'' उसने अपने सैनिकों को इकट्ठा किया और ढोल पिटवाये, ''वह कहती थी उसको मारा नहीं जा सकता.''

उसी समय आत्मा के गांव से विजय के नगाड़े बजने का स्वर सुनाई दिया. मौत ने अपनी फौज के साथ एकदम कूच किया और आत्मा ने सुअरों और चींटीखोरों के रास्ते में गढ़े और खंदकें खोदने का आदेश दिया. मृत्यु अपने सैनिकों सहित गड्डों में गिर पड़ी और आक्रमण न कर सकी. तब से आत्मा अमर है. □

प्रस्तुति : राजेंद्र वोहरा

दिया कि किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए. सहाक ने यूनानी गुलाम की भी पूरी कथा काने को सुना दी. चक्की भर में उस समय बड़ा आश्चर्य फैल गया--जब चक्की के गुलामों के हवलदार ने एक दिन सुबह आकर घोषणा की कि बरब्बस और सहाक को दिन में निश्चित समय पर गवर्नर के सामने उपस्थित होना है.

हवलदार के चले जाने के बाद गवर्नर ने उन दोनों से बातें करनी प्रारंभ कीं. उसने सबसे पहले पूछा वे कहां से आये और कहां सबसे पहले रखे गये और उन्हें क्यों सजा मिली. इसके बाद सहाक के पास जाकर उसकी नंबर प्लेट गवर्नर ने निकाल ली और उसे पलटकर पढ़ा... जीसस क्राइस्ट! वे दोनों ही आश्चर्य में पड़ गये कि गवर्नर ने उनके प्रभु का नाम कैसे पढ़ लिया.

''यह कौन है?'' गवर्नर ने पूछा.

''यह मेरे ईश्वर का नाम है.'' सहाक ने कंपित स्वर में उत्तर दिया.

''अहा, पहले तो मैंने ईश्वर का यह नाम कभी नहीं सुना. लेकिन फिर इतने अधिक देवता हैं कि हरएक प्रत्येक देवता का नाम याद भी तो नहीं रख सकता. क्या तुम्हारे गांव के या प्रांत के देवता का नाम है?''

''नहीं, यह सबके ईश्वर का नाम है.'' सहाक ने उत्तर दिया.

''क्या सच? क्या तुम उसके गुलम हो? लेकिन तुम उसके गुलाम कैसे हो सकते हो? तुम तो राज्य के गुलाम हो, जैसा कि इस नंबर प्लेट से स्पष्ट है. क्या तुम राज्य के गुलाम नहीं हो?''

''मैं अपने ईश्वर का गुलाम हूं.'' सहाक ने अपनी नजर नीचे ही झुकाए हुए कहा.

गवर्नर कुछ सोचता हुआ सहाक के सामने आ खड़ा हुआ. तब उसने सहाक का सिर ऊपर उठाया और उसकी गरदन में से वह प्लेट निकाल ली. वह उसका सिर पकड़े थोड़ी देर तक तांबा गलाने वाली भट्टियों की आग से झुलसा सहाक का चेहरा देखता रहा. उसने कहा कुछ भी नहीं. जब उसने सहाक के मन के भाव उसके चेहरे पर पढ़ लिये तो उसे छोड़ दिया. इसके बाद वह बरब्बस के सामने आया और उसने बरब्बस की प्लेट उलटकर वही नाम पढ़ा और पढ़ने के बाद पूछा, ''और तुम? क्या तुम भी इसी ईश्वर को अपना ईश्वर मानते हो?''

बरब्बस ने कोई उत्तर नहीं दिया.

''मुझे बतलाओ? क्या तुम उसमें विश्वास करते हो?''

बरब्बस ने अपना सिर हिला कर इंकार किया.

''लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आया कि फिर तुम्हारी प्लेट के पीछे जीसस क्राइस्ट का नाम क्यों खुदा है.''

''क्योंकि मैं उनमें विश्वास करना चाहता हू.'' बरब्बस ने दोनों में से बिना किसी की ओर देखे उत्तर दिया.

इसके बाद गारद का एक सैनिक आया और वह सहाक को ले गया. सहाक के आने के बाद गर्वनर ने बरब्बस के आचरण की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि वह उसे पुरस्कृत करेगा. बरब्बस को आज्ञा मिली कि वह राजमहल के सेवकों के मुखिया के पास जाये और अपने लिए पहले से अच्छा कार्य प्राप्त कर ले.

जब गवर्नर ने अपने पद से अवकाश ग्रहण किया और अपने जीवन के शेष दिन बिताने के लिए रोम वापस जाने की तैयारी की तो उसने बहुत सी संपत्ति कमा ली थी. गर्वनर अपने साथ कुछ ऐसे गुलामों को भी ले गया था जिन्हें उसने अपने उपयोग के लिए अच्छा समझा था. इन्हीं में बरब्बस भी था. गवर्नर ने अपने रहने के लिए जो महल खरीदा था वह बड़ा ही सुंदर था और नगर के बीचोंबीच था. एक बार उसके महल के एकांत भाग में किसी गुलाम ने मछली की शक्ल दीवार पर बना दी थी. वह समझ गया यह कार्य किसी ईसाई गुलाम का ही है. वह सोचने लगा कि गुलामों में कौन-सा ईसाई है. वह चुपचाप देखता रहा और देखकर यह पता लगाने की कोशिश करता रहा कि कौन-सा गुलाम ईसाई हो सकता है. लेकिन उसने किसी से पूछा नहीं.

एक दिन संध्या को उसने दो गुलामों को परस्पर बातें करते सुना. वे अंधेरे में बातें कर रहे थे और समझ रहे थे उनके पास कोई नहीं है. बरब्बस भी उन्हें देख नहीं सका था. केवल उनकी आवाज से ही पहचान सका था. उन दोनों गुलामों को कुछ ही दिन पूर्व खरीदा गया था. वे उस सभा की बातें कर रहे थे जो ईसाई बंधुओं की दूसरे दिन संध्या को होने जा रही थी. उन लोगों की बातों से बरब्बस को पता चला कि सभा कब्रों के पास वाले मैदान में होने जा रही है.

दूसरे दिन संध्या को गुलामों के रहने की कोठरियों के हाते के बंद होने के पूर्व ही बरब्बस उससे बाहर निकल गया. वह जानता था कि ऐसा करके वह अपने जीवन को खतरे में डाल रहा है लेकिन वह रुक न सका. वह निश्चित स्थान के पास गोधूलि बेला के समय ही पहुंच गया. वह ढाल से नीचे उतर गया. नीचे अंधेरे में वह रास्ता टटोलता चलने लगा. अकस्मात् उसे एक स्थान से प्रकाश की रेखा दिखलायी पड़ी. वह तेजी से उस ओर बढ़ा लेकिन बीच में ही न जाने क्या हुआ कि वह प्रकाश-रेखा गुम हो गयी. उसने बड़ा प्रयत्न किया वह मिल जाये लेकिन वह न मिली. वहां उसे छोड़कर किसी मनुष्य का नाम निशान न था... केवल मृतक ही मृतक थे... वह मृतकों के संसार में एक बार फिर आ गया था.

बरब्बस जब वापस शहर लौट रहा था तो वह अनुभव कर रहा था कि वह एक दम अकेला है. इसलिए नहीं कि उसके आस-पास कोई आ-जा नहीं रहा था बल्कि इसलिए कि अब समूची रात उसे अकेले ही काटनी थी. जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

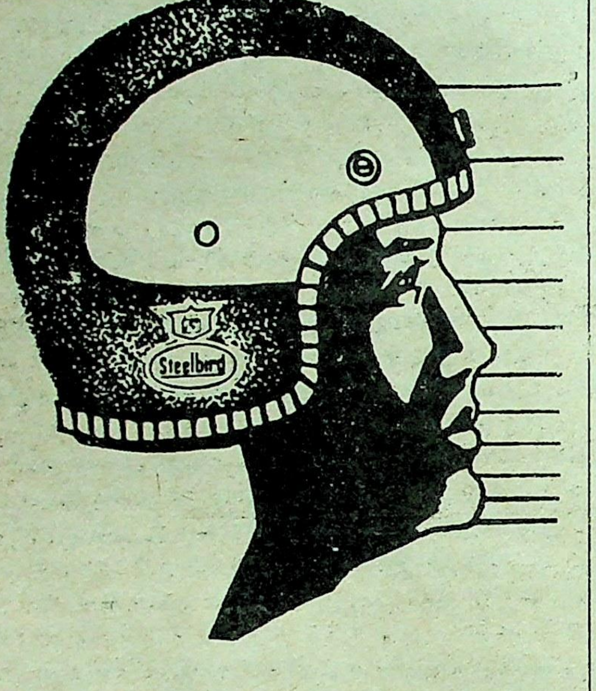

Steelbird®
HELMETS
your life guard
IS 4151 hi-reliability on road
certified fibre glass helmets
NEW STEEL BIRD INDUSTRIES
2E/2, JHANDEWALAN EXTN.,
NEW DELHI-55 : PHONE: 527849/525639
ANKUR

ही वह सड़क के नुक्कड़ से गली में मुड़ा, धुएं की गंध उनके नासिका रंध्रों में भर गयी. धुआं एक मकान से निकल रहा था और उसके नीचे के भाग के एक कमरे के दो छेदों में से आग की दो लपटें उसे निकलती दिखलायी पड़ीं... वह उस ओर बढ़ा. पहले तो वह स्तब्ध रह गया जैसे वह समझ ही न सका हो यह कोलाहल कैसा है. इसका क्या मतलब है. ये ईसाई...? और तब उसकी समझ में आ गया. अब वह समझ गया था कि वे लोग वहां क्यों नहीं पहुंचे थे. वे यहां रोम में आग लगाने के कार्य में व्यस्त थे. संसार भर में आग लगाने के चक्कर में थे. उनकी समझ आ गया है. उनका रक्षक आ गया है. वह सूली पर चढ़ा व्यक्ति वापस लौट आया है--वह जो गोलगोथा की पहाड़ी पर मरा था--बरब्बस, अब उसकी सहायता करेगा. बरब्बस अबकी बार धोखा न देगा. वह आग भड़का रहा था. वह एक मशाल ले आया था. उसी से वह अन्य मकानों में भी आग लगा रहा था.

बंदीगृह के निचले हिस्से में जितने ईसाइयों पर आग लगाने का अभियोग लगाया गया था वे सब इकट्ठे किये गये थे. उनमें एक बरब्बस भी था. उसे रंगे हाथों पकड़ा गया था और पूछताछ के बाद अन्य ईसाई अभियुक्तों के साथ बंद कर दिया गया था. वह भी उनमें से एक था. इतने में दरवाजे में लगा लोहे का डंडा हटा दिया गया और दरवाजा खोल दिया गया. बंदीगृह के अधिकारी ने बंदियों को भोजन कराने के लिए प्रवेश किया था. बरब्बस दरवाजे के पास ही बैठा था. और उस दरवाजे से आने वाला सारा प्रकाश पड़ रहा था. उसे देखते ही वह अधिकारी अट्टहास कर हंस पड़ा. वह बोला, "यह वही पागल है, जो आग लगाते हुए पकड़ा गया था. अरे मूर्ख लोगो! तुम यह कहते हो कि कुछ जानते ही नहीं. तुम सब अव्वल दर्जे के झूठे हो.

सभी बंदियों ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा. उनमें से कोई उसको न जानता था. और उन लोगों के परेशान चेहरों को देखकर हंसता हुआ वह बाहर चला गया और उसने कोठरी के दरवाजे, जोरों की आवाज करते हुए बंद कर दिये. उन सबने उसके आते ही बरब्बस को घेर लिया और प्रश्नों की बौछारें उस पर कर दीं. अंत में वे लोग एक वृद्ध के पास गये जो उन लोगों के साथ शोर मचाने में भाग न ले रहा था. वह थोड़ी देर बरब्बस के चेहरे को चुपचाप देखता रहा. और तब वह वहीं बैठ गया और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कोई पुरानी बात स्मरण कर रहा हो.

"यह कौन है? यह कौन है?" वे सब वृद्ध को उठते देख चिल्ला उठे. पहले तो वृद्ध ने जवाब न देना चाहा लेकिन वे लोग पीछे ही पड़े रहे तो वृद्ध को सब बतलाना ही पड़ा.

"वह बरब्बस है. प्रभु को इसी की जगह सूली पर चढ़ाया गया था."

वे सब स्तब्ध रह गये. उनकी आंखें क्रोध से लाल हो उठी थीं और अंधेरे में भी आग-सी उगलती नजर आ रही थीं. लेकिन वृद्ध ने उन सबको शांत कर दिया.

बरब्बस फिर अकेला बैठा रह गया. बंदीगृह में इसी प्रकार दिन के दिन बीतते चले जा रहे थे और बरब्बस उन लोगों से दूर ही बैठा रहता--चिंतामग्न मुद्रा में वह दिन आ ही गया. वे सब वधस्थल की ओर ले जाये गये. दो-दो आदमियों का एक-एक जोड़ा बनाकर उस जोड़े को लोहे की सांकलों से बांध दिया गया था. लेकिन बरब्बस का कोई जोड़ा न बना था. अस्तु, वह उस मृत्यु-यात्रा में सबसे पीछे और अकेला ही था. वह इस बार भी किसी से बंधा न था. पता नहीं क्यों सूलियों के मामले में भी ऐसा हुआ कि उसको सबसे आखिरी सूली पर चढ़ाया गया.

मृत्यु अंधेरे में से उसकी ओर बढ़ी आ रही है--वह मृत्यु जिससे वह जीवन भर भयभीत रहा. उसके मुंह से यह शब्द ऐसे निकल पड़े जैसे वह उससे बात कर ही रहा हो "तुझे मैं अपनी आत्मा देता हूं." और बरब्बस ने अपने प्राण विसर्जित कर दिये. □

उपन्यास की संक्षिप्त रूपांतर : सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास्तान-ए-लैला

चंचल

'लैला' एक सख्शियत के रूप में उभरी थी और 'मिथक' के रूप में स्थापित है. इसका सामयिकता से क्या रिश्ता है? दास्तान-ए लैला के बहाने चंचल की एक संक्षिप्त टिप्पणी जो दूर-दराज के गांवों में इस मिथ की प्रासंगिकता को रेखांकित करती है.

लैला की सूरत उतनी अच्छी नहीं थी जितना कि लोग समझते हैं. यह सुनते ही ररा उदास हो गये. और अपनी किस्वत में कोठहे अस्तूरे को लपेटते हुये बोल पड़े थे, "ये हो ही नहीं सकता कि लैला देखने में अच्छी न रही हो. और अगर ऐसा नहीं था तो हमारे पूरे गांव में इसकी जानकारी कैसे हो गयी." लैला न तो इस गांव में पैदा हुई और न ही किसी ने देखा है उसे. इतना ही नहीं, वह कहां, कब और कैसे पैदा हुई, इसकी भी जानकारी किसी को नहीं. लेकिन उसके किस्से चूंकि ररा को विरासत में मिले हैं लिहाजा वे उसे जस का तस और कुछ नमक-मिर्च लगाकर सुनाते रहते हैं. इतना ही नहीं घर से निकलते समय उनके किस्वत में जिस तरह से दो तरह के अस्तूरे होते हैं एक कोठाहा और दूसरा धारदार, उसी तरह उनकी जुबान पर केवल दो चीजें रहती हैं. एक लैला का किस्सा और दूसरा उर्दू की पढ़ाई का एक हिस्सा जिसे कभी उन्होंने बचपन में पढ़ा था: 'अलीफ जबर बे' और इन्हीं दो का प्रयोग वे पैंतीस साल से कर रहे हैं.

बाप के मरने के बाद उनके हिस्से में एक उजड़ा हुआ मकान आया था, गड्ढेदार जमीन मिली थी, बबूल का पेड़ था और एक किस्वत. इसी सहारे ररा की जिंदगी कट रही है. मकान जिसकी छत कमोबेश अब भी छत की ही तरह है, उसका भरपूर इस्तेमाल बरसात में करते हैं. और टपकते हुये पानी से बचने के लिये चारपाई के अगल-बगल जब भिन्न-भिन्न प्रकार के अलग-अलग आकार के बरतनों को रखकर टपकती हुई बूंदों को उसमें रोकते हैं, तो हर गिरती हुई बूंद के साथ अपने बाप की याद कम आती है, पूरे गांव की बदमिजाजी का खयाल ज्यादा आता है. और कथरी के ऊपर नीचे होते हुए ररा किसी भी व्यक्ति को और उसके नजदीकी रिश्तेदारों को जोड़कर तत्काल खुले व्यभिचार की घोषणा करते हैं. लेकिन चिंतित नहीं होते क्योंकि उन्हें मालूम है कि इस तरह की जिंदगी उन्हें रास भले ही न आये लेकिन अपने गांव और घर की इज्जत उनके अपने हाथ में है. और इस बात पर ररा को इत्मीनान होता है. इत्मीनान की नींद आती है और सुबह के साथ फिर वही अस्तूरा, वही लैला की कहानी, अलीफ जबर बे की भाषा घर-घर तक पहुंचती है. अलग-अलग किस्सों की पैमाइश और एवज में दो बखत की रोटी. इस जिंदगी में किसी लैला का प्रवेश भले ही नहीं हुआ हो लेकिन एक ररा हैं जो लगातार इस गांव में लैला को जिंदा रखे हुये हैं.

गांव में लक्ष्मीना और मुख्तार के प्रेम की पहली कहानी जब उजागर हुई तो इसका बयान और आंखों देखा ररा ने ही सबसे पहले परधान की दाढ़ी पर अस्तुरा फेरते हुये इस हिदायत के साथ कि बात कहीं फैलने न पाये पूरी घटना को विस्तार के साथ बताया था. यह कहानी भी लैला और मजनू की कहानी से अलग नहीं है- और यह कहानी केवल परधान तक ही महदूद नहीं थी. यही किसी और तरह से घूमकर और लोगों तक पहुंचती रही. अस्तुरे चलते रहे और कहानी एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंचती रही. नतीजा हुआ कि लक्ष्मीना और मुख्तार की कहानी कब और किस बख्त लैला-मजनू में तब्दील हो गयी किसी को नहीं मालूम. लैला और मजनू तो एक मिथक के रूप में स्थापित हो चुके थे, उनकी जगह पर अब मुख्तार और लक्ष्मीना का नाम आने लगा. दुनिया के किसी हिस्से में मोहब्बत की यह कहानी इसी तरह से बनती और बिगड़ती है. कहानी का ये हिस्सा श्रुत-अश्रुत अदृश्य असीमित और अपर्याय होता है. क्योंकि व्यक्ति विशेष या घटना विशेष जब अपने निजी चरित्र को छोड़कर एक सार्वभौम सार्वकालिक और कालजयी घटना के रूप में स्थापित हो जाते हैं, तो सारी दुनिया उसे मिथक मान लेती है. जैसे कि इस गांव में मुख्तार और लक्ष्मीना हैं. कहानी का ये हिस्सा ररा के जिम्मे क्यों आता है, पूरा गांव इसे क्यों सुनता है, इसका जवाब भी ररा ही देते हैं. "हुजूर, हर एक दिल में लैला होती है. मजनू होते हैं. और उसके किस्से होते हैं. यह बात दीगर है कि वह लोगों को दिखाई पड़ें या न पड़ें. सुनाई दे, या न सुनाई दे. अगर मैं लैला का यह किस्सा न भी सुनाऊं तो क्या मुख्तार और लक्ष्मीना के किस्से बंद हो जायेंगे. या ये रिश्ते ही खतम हो जायेंगे."

ररा की सपाट बयानी तार्किक होने के बावजूद लड़िका सयान के लिए मुफीज चीज नहीं है. यह बात गांव का हर समझदार अपनी समझदार औलाद के सामने सुनाता है. और ररा को हिदायत देता है कि उसे देखकर बोलना चाहिए कि कब किसके सामने और क्या बोले. इस कहानी का हिस्सा यहां खत्म हो जाना चाहिए लेकिन ररा को मालूम है कि इस संभ्रांत नागरिक और लायक बाप को इस बात से परहेज नहीं है कि वह लैला की कहानी को नफरत करता है या चिढ़ता है बल्कि उसे इस बात से परहेज है कि उसकी अगली पीढ़ी इस तरह के मुहब्बत के किस्से सुनकर मुहब्बत में न फंस जाये जबकि उसे यह मालूम है कि अगली पीढ़ी की मुलाकात ररा से गांव के पीछेवाली डगर पर पहले ही हो गयी है. और उन्हें ये सारे किस्से 'अलीफ जबर बे' के साथ मालूम हैं.

लेकिन पिछले कुछ दिनों से इस गांव में लैला की कहानी खत्म हो गयी है. उसकी जगह पर धर्मेंद्र की कहानी और दिलीप कुमार की कहानी, वैजयंती माला की कहानी और माला सिन्हा की कहानी आ गयी है. क्योंकि अब ररा की किस्वत नहीं खुलती. हाथ कांपने लगे हैं और पैंतीस साल बाद लोगों को यह समझ में आया है कि ररा के अस्तुरे में धार नहीं है. क्योंकि शहर से लौटे हुए पतलून वाले नौजवान ने अंग्रेजी हिसाब का ऐसा अस्तूरा खरीदा है जिससे वे खुद दाढ़ी बनाते हैं. और साथ में ररा की कहानी की जगह रंगीन पत्रिकायें आयी हैं. रंगीन चित्रों वाली किताबों की ऊपरी जिल्द पर प्रेमचंद के गोदान का कवर चढ़ चुका है. मुंह अंधेरे में वे चीजें पढ़ी जाती हैं. फर्क इतना ही है कि कभी लैला की कहानी न कहने के लिये ररा को हिदायत दी जाती थी और अब बच्चों को हिदायत दी जाती है कि यह प्रेमचंद की कहानी है. इसे न पढ़ें. अपने कोर्स की किताब पढ़ें. क्योंकि इस मुल्क में हर घर में लैला—मजनू की कहानी है. ▣

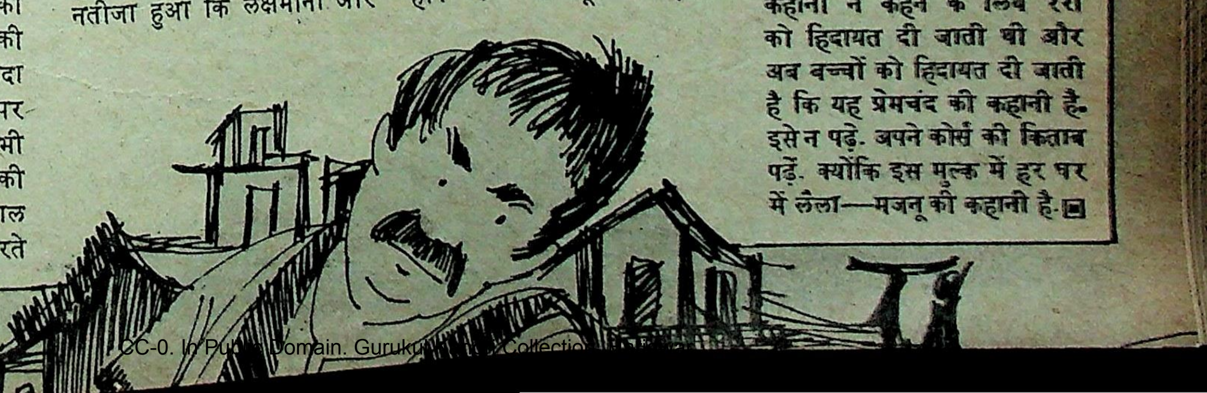

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथक कथाओं की दुनिया

प्रियंवद

जहां तिगरिस और यूफेत्स जैसी नदियों के बीच बेबीलोनिया की महान सभ्यता का विकास हुआ और 'गिल्गेमश का महाकाव्य' लिखा गया . . . वहीं द्वीपों, झरनों और पहाड़ों के देश जापान में भी सभ्यता के साथ-साथ मिथकों का विकास हुआ. यहां प्रस्तुत है, मिथक कथाओं के इस संसार में से चुनी गयीं दो विशिष्ट मिथक-कथाएं—

बेबीलोनिया की मिथक कथा

अमरत्व की तलाश

उरुक का राजा गिल्गेमश रूपवान और बहादुर था पर प्रजा उसके अत्याचारों से दुखी थी.

गिल्गेमश पुत्रों को पिता के पास कुंआरी कन्याओं को मां के पास और प्रेमिकाओं को प्रेमी के पास नहीं रहने देता था. . . और न ही योद्धाओं की पुत्रियों को कुलीनों की पत्नियों को.

गिल्गेमश के आतंक और अत्याचार से दुखी प्रजा ईश्वर के पास गयी और उससे रक्षा की याचना की. ईश्वर ने 'एनाकडू' को पैदा किया जो लंबे बालों वाला असीमित शक्ति का जंगलों में रहने वाला आदमी था और जंगली जानवरों के साथ मैदानों पर्वतों पर घूमता था गिल्गेमश को जब एनकिडू के बारे में पता लगता है तो वह एक वेश्या को एनकिडू के पास उसे नष्ट करने के लिये भेजता है. वेश्या जाकर एनकिडू को उरुक की सभ्यता और गिल्गेमश के वैभव और शक्ति के बारे में बताती है और उसे उरुक ले आती है. गिल्गेमश को एनकिडू के आने का पता लग जाता है. नववर्ष के त्यौहार पर दोनों मिलते हैं. और उनमें एक भयंकर द्वंद्व होता है. द्वंद्व के अंत में दोनों मित्र बन जाते है और एक साथ मिल कर दुनिया के और दूसरे साहसी और वीरता भरे काम करने निकल पड़ते हैं. अपने इस विजय-अभियान के प्रथम चरण में वे हुमुंबा का वध करते हैं. हुमुंबा एक भयंकर दैत्य था जिसकी दहाड़ बाढ़ और तूफान लाती थी जिसका मुख स्वयं अग्नि था और जिसकी श्वास साक्षात मृत्यु.

अभियान के दूसरे चरण में वे प्रेम और युद्ध की देवी ईश्तर से उनकी मुठभेड़ होती है. ईश्तर गिल्गेमश को देख कर मुग्ध हो जाती है और उसको आमंत्रित करती है—

"ओ गिल्गेमश, आओ और मेरे प्रेमी बनो तुम मेरे पति होगे और मैं तुम्हारी पत्नी, मैं तुम्हारे लिए सोने और पीतल के पहियों वाला रथ बनाऊंगी सुगंधित वृक्षों के बीच हमारा घर होगा. संसार के सभी वैभव और देवता तुम्हारे पांव चूमेंगे. . . . ."

. . . लेकिन गिल्गेमश ईश्तर का तिरस्कार करता है. वह ईश्तर को स्मरण कराता है कि किस तरह उसने अपने और पहले के प्रेमियों को नष्ट किया है.

ईश्तर क्रुद्ध हो जाती है और देवताओं को विवश करती है कि वे 'स्वर्ग का बैल' भेज कर उन दोनों को नष्ट कर दे परंतु गिल्गेमश और एनकिडू उस बैल का वध कर देते हैं। देवता तय करते हैं कि उस बैल को मारने के कारण एनकिडू को भी मरना पड़ेगा. एनकिडू को स्वप्न आते हैं और वह समझ जाता है कि उसकी मृत्यु आ गयी है और उसे मृतकों के अंधकार लोक में जाना पड़ेगा. धीरे-धीरे कमज़ोर होते हुए एक दिन एनकिडू मर जाता है. गिल्गेमश इससे बहुत आहत और दुखी होता है और जंगलों रेगिस्तानों में विलाप करता घूमता है. अंत में गिल्गेमश अमरत्व प्राप्त करने का यह दृढ़ निश्चय करता है. मृत्यु के प्रश्न को हल करने में और अमरतत्व की खोज में उसकी महा-यात्रा आरंभ होती है. कितनी ही बाधाओं को पार करके अंत में वह संत 'उत्नापिश्तिम' के पास जाता है जो अकेला अमृत्य आदमी है और जिसे अमरत्व का रहस्य मालूम है. गिल्गेमश उत्नापिश्तिम से अमरत्व की जिज्ञासा करता है.

उत्नापिश्तम पहले तो गिल्गेमश को हतोत्साहित करने की कोशिश करता है। उसे बताता है कि मृत्यु निश्चित है और इससे बचा नहीं जा सकता. गिल्गेमश पूछता है कि स्वयं उत्नापिश्तिम कैसे अमर हो गया. उत्नापिश्तिम तब उसे अपनी कथा बताता है कि किस तरह जल प्रलय हुई और देवताओं की मदद और कृपा से वह बचा. अमरत्व देवताओं की कृपा है और साधारण मनुष्य इसका भोग नहीं कर सकता. गिल्गेमश निराश हो जाता है. तब उत्नापिश्तिम उसको एक उपाय बताता है कि गिल्गेमश यदि समुद्र की तली में पैदा होने वाली एक बूटी ले आए तो वह सदा यौवन को भोग सकता है ! गिल्गेमश अपने पैर में पत्थर बांध कर समुद्र में कूदता है और वह बूटी पा लेता है. वापस लौटते समय गिल्गेमश थक जाता है और रास्ते के किनारे एक कुंए पर नहाने का विचार करके बूटी को वहीं रखकर नहाने लगता है. इतनी ही देर में एक सांप आकर उस बूटी को खा लेता है. सांप की पुरानी खाल गिर जाती है और नयी खाल निकल आती है. गिल्गेमश यह देखकर बुरी तरह रोता है. अमरत्व उसके हाथ से निकल जाता है. अंतिम रूप से अमरत्व की आशा त्याग कर निराश और परास्त वापस लौट आता है.

उसकी अमरत्व की तलाश समाप्त हो जाती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की मिथक कथा

सृष्टि का चक्र

आरंभ में सिर्फ अराजकता और अव्यवस्था थी. तेल के महासागर की भांति या एक अंडे की तरह. लेकिन उसमें भी उर्वरा शक्ति थी. एक दिन अचानक इस अव्यवस्था से एक लकड़ी का नरकुल (रीड)-सी चीज उत्पन्न हुए और वह एक देवता बन गयी. उसी क्षण दो और दैवीय प्राणी उत्पन्न हुए और इस प्रकार पहले पुरुष और पहली स्त्री का जन्म हुआ. इन्होंने अनेक देवी देवताओं के युग्म को उस दैवीय भूमि पर जन्म दिया. एक लंबे अंतराल के बाद देवताओं का एक युग्म अंतिम रूप से सृजित हुआ जो ईजानागी (पुरुष जो आमंत्रित करता है) और ईजानामी (स्त्री जो आमंत्रित करती है) कहलाया.

अपने स्वर्गलोक से वे एक पुल (इंद्र धनुष) द्वारा उस तैलीय सागर पर आये और एक रत्न-जड़ित दैवीय हथियार से उस समुद्र को मथते रहे, जब तक कि वह द्वीप पदार्थ स्वयं ही जमकर स्थूल नहीं हो गया. इस प्रकार प्रथम द्वीप का सृजन हुआ. वह धरती का 'केंद्र स्तंभ' कहलाया. ईजानागी और ईजानामी उसी द्वीप पर रहने लगे और उसका नाम 'ओनो-कोरो' पड़ा.

एक दिन ईजानागी ने अपनी बहन ईजानामी से प्रश्न किया, "शरीर कैसे बना है?"

"मेरी देह हर अंग में विकसित होती है सिवाय एक अंग के." ईजानामी ने उत्तर दिया.

"और मेरी देह भी हर अंग में विकसित होती है विशेष रूप से एक अंग में." ईजानागी बोला, "यह सुंदर होगा यदि मैं अपने विकसित होते हुए अंग को तुम्हारे उस अंग से जोड़ दूं जो विकसित नहीं होता है."

"सच . . . यह निश्चित ही सुंदर होगा." ईजानामी ने कहा. इस प्रकार दोनों ने उस केंद्र स्तंभ की परिक्रमा करने का निश्चय किया. ईजानागी बायें हाथ की तरफ गया और ईजानामी दायें हाथ की तरफ. घूमते हुए जब वे फिर मिले तो युवती ईजानामी अपने भाई का सौंदर्य देखकर विस्मित रह गयी.

'आह . . . कितना सुंदर पुरुष . . ." वह चिल्लायी.

"आह . . . कितनी सुंदर युवती!" ईजानामी बोला.

पर अचानक ईजानागी ने ईजानामी को धिक्कारा क्योंकि वह अपने अतिरिक्त उत्साह में पहले बोल गयी थी, "मैं एक पुरुष हूं और यह मेरा अधिकार है कि मैं पहले बोलूं. एक स्त्री होते हुए तुमने पहले क्यों बोला. यह अवश्य कोई दुर्भाग्य लायेगा."

तत्पश्चात् उनके सहवास से बहुत से द्वीप . . . झरने . . . पहाड़ . . . वृक्ष और देवता जन्मे. इन्हीं उत्पत्तियों में से एक रेंगता हुआ छोटे कीड़े-सा बच्चा भी था. उसकी शारीरिक अक्षमता के कारण और दुर्भाग्य समझकर उन दोनों ने उसे एक लकड़ी पर रखकर समुद्र के प्रवाह में छोड़ दिया. इसके बाद वह पुनः संसर्ग के लिये प्रस्तुत हुए. इस बार एक पक्षी युग्म से उन्होंने काम की शिक्षा ली और इस बार ईजानामी ने पहले बोलने की गलती भी नहीं की.

इसी प्रकार ईजानामी देवताओं को जन्म देती गयी. समुद्र . . . लहरें . . . पहाड़ और जापान के आठों द्वीप. उसने अग्निदेव को भी जन्म दिया. अग्नि के जन्म के समय उसके शरीर के नीचे का हिस्सा पूरी तरह जल गया और वह बीमार हो गयी. उसके वमन, मूत्र और विष्ठा से अन्य देवता जन्मे. अंत में वह मर गयी. क्रोध और दुःख से ईजानागी भी बीमार पड़ गया. ईजानामी की शैया के चारों ओर रेंगता हुआ वह विलाप करता रहा. उसके आंसुओं से भी देवता जन्मे. अंत में अपनी तलवार से उसने अपने पुत्र अग्नि का सर काट डाला और उस बहते हुए खून से भी कई देवताओं ने जन्म लिया.

उधर ईजानामी मृत्यु के बाद नीचे के 'अंधकार और दुःख के देश' 'योमी' चली गयी. उससे मिलने को उत्सुक ईजानागी भी उस देश जा पहुंचा. ईजानामी के विरोध के बाद भी ईजानागी उसका पीछा करता रहा. वह ईजानामी को वापस ऊपर के देश में ले जाना चाहता था. जहां उनका सृजन का काम अभी तक पूरा नहीं हुआ था. पर ईजानामी अंधकार के देश का अन्न खा चुकी थी इसलिये उसने जाने से इनकार कर दिया. ईजानागी फिर भी उसका पीछा करता रहा. अंत में दोनों में युद्ध हुआ.

"मैं रोज हजार प्राणियों को मारूंगी." ईजानामी ने कहा.

"और मैं रोज पंद्रह सौ औरतों को जन्म देने का शाप दूंगा." ईजानागी ने जवाब दिया. इसी युद्ध के बाद दोनों का संबंध विच्छेद हो गया और दोनों अलग हो गये. इस प्रकार विश्व में जन्म और मृत्यु का क्रम भी प्रारंभ हो गया. सृष्टि का चक्र चलने लगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेत की किताब

जार्ज लुई बोर्खेज

दुनिया का कोई भी कोना हो, भारत ने साहित्य, संस्कृति और कला की अपनी ऊंचाइयों की तरफ सबका ध्यान खींचा. अब इसे क्या कहेंगे कि प्रख्यात लैटिन अमरीकी कथाकार बोर्खेस जिस अजूबी किताब के रहस्यमय संसार में डूबे, वह सुदूर बीकानेर से उनके पास पहुंची थी, और . . . प्रस्तुत है कभी न खत्म होनेवाली उस अनंत किताब की रहस्यमयी कथा—

एक रेखा अनगिनत बिंदुओं को लेकर बनती है, एक तल अनगिनत रेखाओं को लेकर, एक आयतन अनगिनत तलों को लेकर, एक बृहद आयतन अनगिनत आयतनों को लेकर . . नहीं, यह सिर्फ ज्यामिति नहीं है. हकीकत तो यह है कि जो कहानी मैं कहना चाहता हूं, उसे शुरू करने का सबसे सही तरीका शायद यही है. यूं आजकल हर कहानी की विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए उसके सत्यकथा होने का हलफिया बयान लेने का चलन हो गया है, पर हुजूर, मेरी यह कहानी सचमुच एक सच है.

तो सबसे पहले मैं अपना परिचय दे दूं. मैं अकेला रहता हूं, ब्यूनोस आयर्स की बेलग्रानो स्ट्रीट की चौथी मंजिल पर बने एक एपार्टमेंट में. हुआ यह कि कुछ महीने पहले की बात है. एक ढल गयी शाम को, मैंने अपने दरवाजे पर दस्तक सुनी. दरवाजा खोला तो सामने एक अजनबी खड़ा था. एक लंबा आदमी, अल्लम-गल्लम नक्शोंवाला—या शायद मेरी कमजोर नजर उसे वैसा ही देख पायी. वह सलेटी कपड़े पहने हुए था और हाथ में सलेटी रंग का ही सूटकेस पकड़े हुए था. अपने हुलिए से मुझे वह आदमी बेतकल्लुफ-सा लगा. उसके हुलिए से ही मैंने अनुमान लगाया कि वह विदेशी है.

पहले-पहल मुझे लगा कि वह शायद बूढ़ा है. यह तो कुछ देर बाद मैंने पाया कि उसके विरले, घुंघराले बालों के कारण मुझे ऐसा लगा था. दरअसल उसके बाल सफेद थे, जैसे स्केंडेनेवियन लोगों के होते हैं. उससे बातचीत के दौरान ही मुझे मालूम हुआ कि वह आर्कनीज से आया है.

कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए मैंने उसे बैठने के लिए कहा. कुछ बोलने से पहले वह कुछ देर के लिए रुका. उसकी हवा में एक अजीब-सा शोक रिस रहा था—ठीक ऐसा शोक, जो इस वक्त मुझमें है.

"मैं बाइबिल बेचता हूं." उसने कहा.

मैंने कुछ पांडित्यपन झाड़ते हुए जवाब दिया, "इस घर में पहले ही बहुत-सी अंग्रेजी बाइबिलें हैं—जॉन विक्लिफ की सबसे पहले वाली बाइबिल समेत. देखो, मेरे पास सिप्रिआनो डि वालेरा की बाइबिल है, लूथर की है, जो साहित्यिक दृष्टि से शायद इस वक्त सबसे खराब है—और एक लैटिन भी है—वुल्गेट की. सो, मुझे किसी बाइबिल की जरूरत नहीं."

वह चुप बैठा रहा. कुछ क्षणों की खामोशी के बाद उसने कहा, "मैं सिर्फ बाइबिल नहीं बेचता. आप चाहें तो आपको एक और ग्रंथ दिखा सकता हूं, जो मुझे बीकानेर के बाहरी इलाके से मिला. शायद आपकी रुचि उसमें हो."

उसने सूटकेस खोला और एक किताब निकालकर मेज पर रख दी. यह एक अठपेजी किताब लगती थी, कपड़े की जिल्द में बंधी हुई. ऐसा लग रहा था, जैसे वह किताब बहुत से हाथों से गुजर चुकी है. नहीं, देखने में वह किताब रहस्यमय नहीं लगती थी, लेकिन जब मैंने उसे उठाया तो मुझे हैरानी हुई. देखने में तो उसका वजन उतना नहीं लगता था. किताब की पीठ पर लिखा था—पवित्र परम आदेश, और उसके नीचे—बंबई.

"उन्नीसवीं सदी की है शायद." मैंने कहा.

वह बोला, "मैंने कभी मालूम नहीं किया."

मैंने किताब को बीच में से खोला. उसकी लिपि मेरे लिए अजीब-सी थी. पन्नों पर, जो फटे हुए थे, जिनके अक्षर बहुत खराब लिखे हुए थे, दो हाशियों में लिखा गया था. वैसे ही, जैसे बाइबिल में लिखा रहता है. ग्रंथ की लिपि के अक्षर बहुत सटे हुए थे. ऐसा मालूम होता था, जैसे वह वचन छंद में लिखे हुए हों. पन्नों के ऊपरी कोनों पर अरबी भाषा में अंक लिखे थे.

तभी मैंने गौर किया कि बायें हाथ के पन्ने की संख्या (मिसाल के तौर पर) अगर 40,514 थी तो उसके सामने वाले दायें हाथ के पृष्ठ की संख्या थी 999. मुझे अजीब लगा. मैंने पन्ना पलटा तो उस पर आठ अंकों वाली संख्या लिखी थी. उस पन्ने पर एक छोटा रेखाचित्र भी बना था, जैसा अक्सर कोशों में बना रहता है. वहां कलम और स्याही से खींचा गया एक लंगर था, जैसे किसी स्कूली लड़के के लापरवाह हाथों ने उसे बनाया हो.

यही वह बिंदु था, जब उस अजनबी ने मुझसे कहा, "इस रेखाचित्र को ध्यान से देख लें. आप दोबारा इसे कभी नहीं देख पाएंगे."

मैंने कुछ अविश्वास से उसे देखा. फिर पड़ताल करने के लिए मैंने किताब की उस जगह पर निशान लगाया और किताब बंद कर दी. अगले ही क्षण मैंने वहीं से किताब खोली, फटाक से, पर मेरा दुर्भाग्य, पन्ना-दर-पन्ना मैं उस रेखाचित्र को ढूंढता रहा, वह कहीं न था.

"शायद वह किसी भारतीय भाषा के ग्रंथ का रूपांतर था." अपनी निराशा को छिपाने केलिए मैंने कहा.

"नहीं." उसने कहा. फिर जैसे वह कोई राज कहने जा रहा हो, उसने आवाज धीमी की, "मैंने यह किताब उस मैदानी इलाके में कुछ रुपयों और एक बाइबिल के बदले हासिल की थी. इसके मालिक को भी मालूम नहीं था कि वह इसे कैसे पढ़े. मेरा खयाल है कि वह इस किताबों की किताब को कोई जंतर समझता था. वह नीच जात का आदमी था. उसी ने मुझे बताया था कि इस किताब को रेत की किताब कहते हैं, क्योंकि न तो किताब का, और न ही रेत का कोई आदि-अंत है."

इसके बाद उस अजनबी ने मुझसे कहा कि अगर मुझे विश्वास न हो तो मैं किताब का पहला पन्ना ढूंढ़कर दिखाऊं.

मैंने अपना बायां हाथ कवर पर रखा और अंगूठे को जिल्द के ठीक पास अटकाकर किताब खोली. बेकार. कितने ही पन्ने जिल्द और मेरे अंगूठे के बीच आ गये. जितनी भी बार मैंने कोशिश की, यही होता रहा. ऐसा लगता था, जैसे किताब के पन्ने बढ़ते जा रहे हों.

"अच्छा, तो अब आखिरी पन्ना ढूंढ़िए."

मैं फिर असफल रहा. काफी देर बाद मैंने एक आवाज में, जो मेरी नहीं थी, बमुश्किल हकलाते हुए कहा, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता."

अभी भी धीमी आवाज में बोलते हुए, उस अजनबी ने कहा, "हां, नहीं हो सकता, लेकिन ऐसा है. इस किताब के पन्नों की संख्या असंख्य से न कम है, न ज्यादा. इसका न कोई पहला पृष्ठ है, न आखिरी. मैं नहीं जानता कि इसके पन्ने इतने अजीब ढंग से क्यों अंकित हैं. शायद यह बताने के लिए हों कि असंख्य की गिनती भी आखिर एक सीमित अंक ही तो होगी!"

फिर, जैसे वह अपने से ही कह रहा हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा, "अगर व्योम अथाह है तो हम व्योम में किसी भी बिंदु पर हो सकते हैं. अगर काल हिसाब के परे है तो हम काल के किसी भी बिंदु पर हो सकते हैं."

उसकी टिप्पणी सुनकर मुझे खीझ हुई.

"तुम धार्मिक हो, बेशक?" मैंने कहा.

"हां, मैं एक प्रेस्बीटेरियन हूं. मेरी अंतरात्मा साफ है. मुझे काफी हद तक विश्वास है कि जिस वक्त उस गरीब, देसी आदमी से मैंने ईश्वर के वचनों की किताब के बदले यह शैतान की किताब ली थी, मैंने उसे ठगा नहीं था."

मैंने उसे दिलासा देने की कोशिश की कि ऐसा कुछ नहीं है, जिसके लिए उसे अपने पर अफसोस करना चाहिए. फिर मैंने उससे पूछा कि धरती के इस हिस्से से वह कैसे गुजर रहा था. उसने जवाब दिया कि कुछ ही दिनों में उसका इरादा वापस अपने मुल्क लौट जाने का था. तब मुझे मालूम हुआ कि वह ऑर्कनीज द्वीप का एक स्कॉट है. मैंने उसे बताया कि स्कॉटलैंड के लिए मेरे मन में विशेष स्नेह है, खास कर स्टीवेंसन और ह्यूम जैसे लेखकों के प्रति मेरे प्रेम के कारण.

"आपका मतलब है स्टीवेंसन और रॉबर्ट बर्न्स?" उसने मुझे सही करते हुए पूछा.

जितनी देर हम बातें करते रहे, मैं वह अंतहीन किताब पलटकर उसकी पड़ताल करता रहा. उस किताब की रहस्यमयता कहीं बहुत गहरे मुझे बहका रही थी.

"आप चाहें तो यह किताब मैं आपको दे सकता हूं." उसने कहा, पर उसने जो दाम मांगे, वह मुझे बहुत ज्यादा लगे.

मेरा मन बुझ गया. मैंने उसे अपनी सारी सच्चाई के साथ जवाब दिया कि इतनी रकम तो मेरी हैसियत से बाहर है. कुछ देर सोचने के बाद मेरे दिमाग में एक योजना आयी.

"मेरे पास सौदे का एक सुझाव है." मैंने कहा, "देखो, तुमने यह किताब कुछ रुपयों और एक बाइबिल के बदले में खरीदी थी. मैं तुम्हें अपनी पेंशन की रकम का चैक, जो मुझे अभी-अभी मिला है, वह दे सकता हूं और अपनी काले अक्षरोंवाली वह दुर्लभ विक्लिफ बाइबिल भी, जो मुझे पुरखों से विरासत में मिली है."

"काले अक्षरोंवाली विक्लिफ!" वह बड़बड़ाया, "मुझे सौदा मंजूर है".

मुझे हैरानी हुई कि उसने कोई आनाकानी नहीं की थी, मोल-भाव नहीं किया था. यह तो मुझे बहुत देर बाद मालूम हुआ कि वह मेरे यहां आया ही उस किताब को बेचने की मंशा से था. रकम बिना गिने उसने जेब में रख ली थी. उसके बाद हम बातें करते रहे, हिंदुस्तान की, आर्कनीज की, नार्वे के उन जार शासकों की, जिनकी कभी हुकूमत थी.

जब वह गया, तब रात काफी गहरा चुकी थी. उसके बाद वह आदमी मुझे कभी नहीं दिखा, न ही मुझे उसका नाम-पता मालूम था.

उसके जाने के बाद मैंने सोचा कि 'रेत की किताब' को किताबों के खाने में उसी जगह रख दूं, जहां विक्लिफ की दुर्लभ बाइबिल ने जगह खाली की थी; लेकिन आखिर मैंने तय किया कि इसे मैं 'एक हजार एक रातों' की किताबों के सेट के पीछे छिपाकर रखता हूं.

मैं सोने के लिए गया, पर सो नहीं सका. सुबह चार बजे मैंने बत्ती जलायी,वह रहस्यमय किताब उठायी और उसके पन्ने पलटने लगा. एक पन्ने पर मैंने एक मुखौटे को खुदा हुआ देखा. उस पन्ने के कोने पर कोई नौ अंकोंवाली संख्या लिखी थी, जो अब मुझे याद नहीं.

मैंने अपना खजाना किसी को नहीं दिखाया. मैं अपनी खुशकिस्मती से भयभीत था. उस दुर्लभ किताब को पाने की किस्मत के साथ जुड़ा था, उसके चुराये जाने का डर, और यह भोला अविश्वास कि 'नहीं, यह किताब अनंत नहीं हो सकती, एक न एक दिन मैं इसकी थाह पा ही जाऊंगा.'

इन दो तरह की फिक्रों ने मेरे भीतर के पुराने मानव-द्वेष को और भी तीखा कर दिया. वैसे ही मेरे बहुत थोड़े-से दोस्त बचे थे. जो बचे थे, उनसे भी मैंने मिलना छोड़ दिया. कहीं बाहर आना-जाना बिलकुल बंद हो गया था. मैं उस किताब का कैदी होकर रह गया था.

उस किताब की उखड़ी जिल्द और पीठ को लेंस से बड़ा-बड़ा देखने के बाद ही मुझे जांच की पूरी तसल्ली हुई और मैंने किसी भी तरह के घपले की संभावना को पूरी तरह से रद्द किया. पड़ताल के कई दिनों के बाद मैंने गौर किया कि छोटे रेखाचित्र लगभग हर दो हजार पृष्ठों के बाद आते थे. मैंने उनका ब्यौरा वर्णानुसार बांधने की कोशिश की. एक कॉपी में मैंने उन्हें क्रमानुसार लिखना शुरू किया, जो जल्दी ही भर गयी. बड़ी हैरानी की बात थी कि एक बार भी कोई रेखाचित्र दोहराया नहीं गया था. उन अभिशप्त उनींदी रातों में, छोटी-छोटी झपकियों के बीच भी, जब बहुत इंतजार के बाद मेरा दिमाग सोने लगता था, मुझे सपने में वही किताब दिखाई देती.

गर्मियां आकर चली गयी थीं, जब मैंने महसूस किया कि यह किताब तो हैवान है. मेरा क्या यही हश्र होना था? कि जिन आंखों से मैंने उस ग्रंथ को रात-रात भर बांचा था, जिन हाथों से इसका रहस्य छूने की कोशिश की थी, वही आंखें, हाथ अब मुझे हैवान से कम नहीं लगते थे. मुझे लगा कि वह किताब एक भयानक दुःस्वप्न है, एक अश्लील वस्तु, जो असलियत को ढंके हुए थी, जो असलियत पर दाग डाल रही थी.

मैंने रेत की उस किताब को जलाने के बारे में सोचा, लेकिन डर गया. क्या मालूम, एक अनंत किताब को जलाना भी अनंत साबित हो और हमारा यह ग्रह धुएं ही धुएं से भर जाये! कहीं पढ़ा हुआ एक वाक्य मुझे याद आया कि एक पत्ती को छिपा देने की सबसे आसान जगह जंगल है . . .

रिटायर होने से पहले मैं मैक्सिको स्ट्रीट पर बनी अर्जेंटीन नेशनल लायब्रेरी में काम करता था, जिसमें नौ हजार किताबें थीं. मुझे मालूम था कि लायब्रेरी में घुसते ही दायें हाथ की घुमावदार सीढ़ियों से नीचे जायें तो वहां किताबें, पत्रिकाएं और मानचित्र रखे रहते हैं. आखिर एक दिन मैं निश्चय करके वहां गया और स्टाफ के एक कर्मचारी के पास से गुजरते हुए, बिना आस-पास देखे, दिखावटी लापरवाही से मैंने वह बेमुरव्वत 'रेत की किताब' ऊपर से गिरा दी. तलघर की उन धूलभरी किताबों में वह जल्द ही गुम हो गयी होगी. □

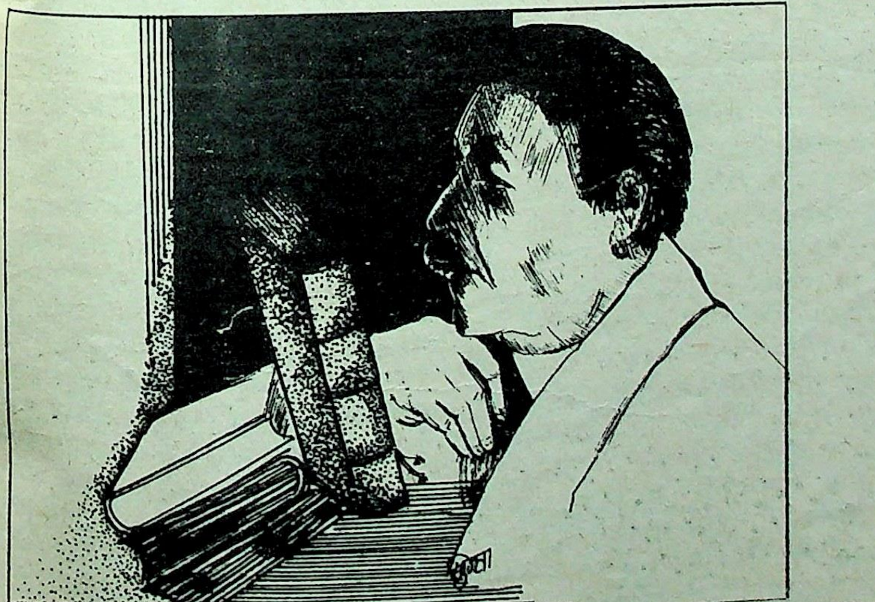

अनुवाद : गगन गिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान भी रोते हैं

गोपाल शेखरन

"भाई, जब सीता हरण हुआ था तो भगवान राम रोये थे! . . . जब बांके लाल द्वारका गये थे तो वृंदावन की ओर मुंह करके रोते थे!"—घर से दफ्तर तक की जिम्मेदारियों में पुरुष की मान्यताओं और स्त्री की अपेक्षाओं को रेखांकित करती प्रख्यात रचनाकार की कहानी कि जीवन के दुष्चक्र का मिथ प्रायः कितने-कितने सवालों से जूझता रहता है! . . .

रामाधार सिंह लगभग सात वर्ष पहले मेरे साथ एक ही दफ्तर में काम करते थे. इसके बाद दूसरी ब्रांच में चले गये. मेरे मन में उनका एक रूप बना हुआ था—एक श्रद्धालु भक्त का. जब भी वे मुझे मिलते, बड़े जोश और ऊंची आवाज में कहते—'बांके बिहारी लाल की जय!' उस समय उनका चेहरा चमक उठता था. जब वे मेरे साथ की मेज पर बैठते थे तो ज्ञान और भक्ति पर ही बातचीत करते थे. जब कभी नैतिकता की बात चलती तो वे—'शास्त्रों में यह लिखा है, शास्त्रों में वह लिखा है'. . .कहकर कभी मनुस्मृति का उदाहरण देते और कभी कोई संस्कृत का श्लोक ही सुना देते.

जब भी दफ्तर में काम करनेवाली महिलाओं के विषय में बात चलती, वे आपे से बाहर हो जाते और कहते, 'महिलाओं का काम घर-गृहस्थी चलाना है, न कि नौकरी कर बेरोजगारी को बढ़ाना.' हमारे देश में जो बेरोजगारी बढ़ी है उसका कारण वे महिलाओं की भर्ती को बताते—'यह जो लड़कियां यहां काम कर रही हैं, वे लड़कों का हक छीनकर नौकरी कर रही हैं. . .जो महिलाएं नौकरी करती हैं, उनका चरित्र संदिग्ध होता है. . . उनके बाल-बच्चे बिगड़ जाते हैं. . . नौकरीपेशा महिलाएं दुगना बोझ और कष्ट उठाती हैं. . .एक घर पर पूरा काम करती हैं, दूसरा दफ्तर में.'

फिर जब कभी कोई कर्मचारी अपने घर या पत्नी की कोई नासमझी की बात सुनाता तो रामाधार भी अपनी पत्नी के बारे में कुछ कह देते, "इस दफ्तर में जितनी लड़कियां काम करती हैं, उन सबसे मेरी पत्नी अच्छी है, सुंदर है, सुशील है. जब मेरी शादी हुई थी तो वह मैट्रिक पास थी. अब उसने घर बैठे-बैठे बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया है. अब वह एम.ए. की तैयारी कर रही है. कमाल का दिमाग है उसका. घर का सारा काम करना और प्रथम श्रेणी भी लेना कितना मुश्किल है."

"आपने उसे पढ़ाया होगा रामाधारजी?" कोई सहकर्मचारी टिप्पणी करता.

"अजी, मुझसे अधिक प्रतिभाशाली है. वह तो मुझे भी पढ़ा दे. ज्ञान-भक्ति का भंडार है वह."

इस पर कोई अन्य कर्मचारी बोल उठता, "तो रामाधारजी, क्या आप अपनी पत्नी से नौकरी करायेंगे?"

इस प्रश्न पर वे उत्तेजित होकर कहते, "कदापि नहीं, क्या आप इन महिलाओं के लक्षण नहीं देख रहे, जो हमारे दफ्तर में नौकरी करती हैं. पढ़ने-लिखने का उद्देश्य नौकरी करना नहीं होता. पढ़ाई-लिखाई ज्ञान प्राप्त करने के लिए होती है. जो महिला स्वयं शिक्षित हो, उसके बाल-बच्चे भी प्रतिभा के धनी होते हैं. फिर मैं इतना कमा लेता हूं कि मुझे अपनी पत्नी से नौकरी कराने की क्या आवश्यकता है!"

आज कोई सात वर्ष के बाद मैंने देखा कि रामाधार मेरे आगे-आगे चल रहा है और कुछ बड़बड़ाता जा रहा है. मैं बिलकुल उसके पास पहुंचा तो मेरी उत्सुकता बढ़ गयी. उसके बड़बड़ाने की आवाज मेरे कानों में पड़ी, "मेरा क्या दोष था जो तुमने यह अन्याय किया मेरे साथ. मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या नहीं किया. मैंने दफ्तर में ओवर टाइम किया, दफ्तर के बाद पार्ट-टाइम नौकरी की, किसलिए? इसलिए कि तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का खर्चा जुटा पाऊं. फिर जब तुम पढ़ने में लगी रहती थीं तो मैं घर की दाल-रोटी भी बनाता था."

मेरी उत्सुकता और बढ़ गयी. मैं बिलकुल रामाधार के पीछे बिना आहट किये चलने लगा. फिर मैंने स्पष्ट सुना, "तुमने एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास की. एम.ए. पास करते ही तुम्हारा दिमाग खराब हो गया. तुम्हारे रंग-ढंग ही बदल गये. तुम्हारे मन-मस्तिष्क पर नौकरी करने की सनक सवार हो गयी. तुम एक कालेज में प्राध्यापक बनना चाहती थीं. इससे हमारा झगड़ा शुरू हुआ. मैंने जिस-जिस बात का विरोध किया, तुम उसे अधिक निर्भीकता से करने लगीं. मैंने नौकरी करने के विचार का विरोध किया तो तुम नौकरी के लिए अधिक प्रयास करने लगी. फिर तुम्हें एक कालेज में प्राध्यापक की अस्थायी नौकरी मिल गयी. नौकरी लगते ही तुम्हारा रंग-रूप कुछ का कुछ हो गया. कुछ लोगों का कहना था कि तुम्हें नौकरी अपने शारीरिक आकर्षण के कारण मिली. . .

फिर मुझे ऐसा लगने लगा कि तुम्हारे दिल में मेरे प्रति आदर कम हो गया है. प्रेम कम हो गया है. . .

उसके बाद बात-बात पर झगड़ा करने लगीं. घर में अशांति छा गयी. तुम्हारे नाज-नखरे मेरे लिए असहनीय हो गये. न तुमने मुझे चैन से रहने दिया, न स्वयं चैन से रहीं.

मैं एक मामूली क्लर्क था और तुम प्राध्यापक थीं. तुम्हारी दोस्ती बड़े-बड़े लोगों से हो गयी. अपने-आपको तुम प्रोफेसर कहने लगीं. फिर मेरे लिए एक घातक प्रहार. तुम संदिग्ध व्यक्तियों के साथ घूमने लगीं. . .

एक दिन तुमने घोषणा के स्वर में कहा, "मैं प्रोफेसरों के साथ छुट्टियां बिताने गोआ जाऊंगी."

मैंने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगा."

इस पर तुम भड़क उठीं, "मैं तुम्हारे साथ बंधी हुई नहीं रहना चाहती. मेरा अपना स्वतंत्र अस्तित्व है. यह मेरी इच्छा पर निर्भर करता है. मैं तुम्हें साथ नहीं ले जा सकती."

फिर तुमने मेरा अपमान किया. मुझे गालियां निकालीं. तुम्हारा मुंह एक बार खुल गया तो प्रतिदिन तुम मुझे बात-बात पर कपटी, ढोंगी और धूर्त कहने लगी.

अब मैं तुम्हारे लिए छोटा हो गया. तुम्हें मुझमें कमियां ही कमियां दिखायी देने लगीं. तुम नहीं जानती थीं कि मैं तुमसे कितना प्यार करता था. मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या बलिदान किये. क्या तुम्हारी आवारागर्दी पर रोक लगाना मेरा कमीनापन था?

किसी मित्र ने ठीक ही कहा है—महिला जब पुरुष से ऊंची हो जाती है तो वह उसके पास कभी नहीं रहती—देख लो, श्रीमती विनीता जब आई.ए.एस. पास हो गयी तो उसने अपने क्लर्क पति को तत्काल छोड़ दिया. उसके साथ रहने से इनकार कर दिया.

तुम्हारे रंग-ढंग देखकर मुझे अपने मित्र की यह बात स्मरण हो आती और मेरा विश्वास पक्का हो जाता कि तुम मुझे निकृष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझती हो और मुझसे पीछा छुड़ाना चाहती. हो.

तुमने बात-बात पर कहना शुरू कर दिया, "मैं तुम्हारी निजी संपत्ति नहीं हूं. मैं खिलौना नहीं हूं कि जिधर तुम घुमाओगे, उधर ही घूमूंगी. मेरा अपना स्वतंत्र अस्तित्व है."

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, हमारा झगड़ा बढ़ता गया. जब भी तुम घर में देर से आती, हमारा झगड़ा भड़क उठता.

मैं केवल यही जानना चाहता था—इतनी देर क्यों हो गयी! तुम समझीं कि मैंने तुम पर संदेह किया है, पर बांकेबिहारी लाल जानते हैं कि मैंने तुम पर कभी संदेह नहीं किया. मेरी धारणा थी कि तुम्हें दिन छिपने से पहले घर आ जाना चाहिए था.

तुमने कहा कि मैं जब रात के दस-दस बजे तक घर आता था तो तुमने कभी मुझ पर संदेह नहीं किया था.

मैं कहता—मैं मर्द हूं, मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है, पर औरत औरत है...उसे अवश्य दिन छिपने से पहले घर आ जाना चाहिए. नहीं तो कुछ अशुभ और अशुकन हो सकता है.

पर मुझे तुम पर न जाने क्यों बड़ा विश्वास था. मैं तुम्हें सब कुछ कहकर पछताता था. मुझे पूर्ण विश्वास था कि तुम मेरी थी और मेरे अतिरिक्त किसी की नहीं थीं.

पर मैं तुम्हारे सामने अपना प्यार न जता पाता. तुम अवसर ही नहीं देती थीं. मेरा दिमाग खराब था या तुम्हारा...यह तो बांके बिहारी लाल ही जानते हैं...मेरा मन दफ्तर में नहीं लगता था. मैं चिड़चिड़ा हो गया और अपने सहकर्मचारियों से बात-बात पर झगड़ा करने लगा. मेरी स्थिति एक विक्षिप्त की तरह हो गयी.

क्या मैं पागल हो गया था? हां, तुम ऐसा ही समझती थीं. तुम मेरी शकल देखकर चीखने लगती थी.

फिर मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा. पर मुझे ऐसे लगने लगा कि तुम मोटी और ताजा हो गयी हो. फिर जबसे हमारा झगड़ा आरंभ हुआ, तुम्हारे रंग-ढंग ही बदल गये. फैशन पर फैशन होने लगे. तुम अधिक तरोताजा लगने लगी.

इधर मेरा वजन कम होने लगा. सभी मुझसे पूछने लगे. इतने दुबले क्यों होते जा रहे हो.

एक दिन तुम कहने लगी, "पवित्रता, प्रेम सब बेकार की बातें हैं. इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं." एक बार कहने लगी,"हमारा विवाह शुरू से ही बेमेल था."

फिर ऐसा समय आया कि एक ही घर में रहते हुए हम में बातचीत बंद हो गयी. आश्चर्य की बात यह थी कि इस पर भी उसने घर नहीं छोड़ा. मेरे दिमाग में उस समय यह बात नहीं आयी. इतने वर्षों के अनुराग और मोह को वह न तोड़ सकी. मुझे उस समय समझना चाहिए था. अगर उसकी मुझमें आसक्ति न होती तो वह मुझे छोड़कर जा सकती थी. हाय, मैंने नहीं सोचा.

पर एक दिन भयंकर विस्फोट हुआ. मैंने कुछ ऐसा कहा, जिससे उसे अपने चरित्र पर संदेह का आभास हुआ और उसने मुझे कह दिया, "मैंगे का दिमाग भी मैंगा हो गया है."

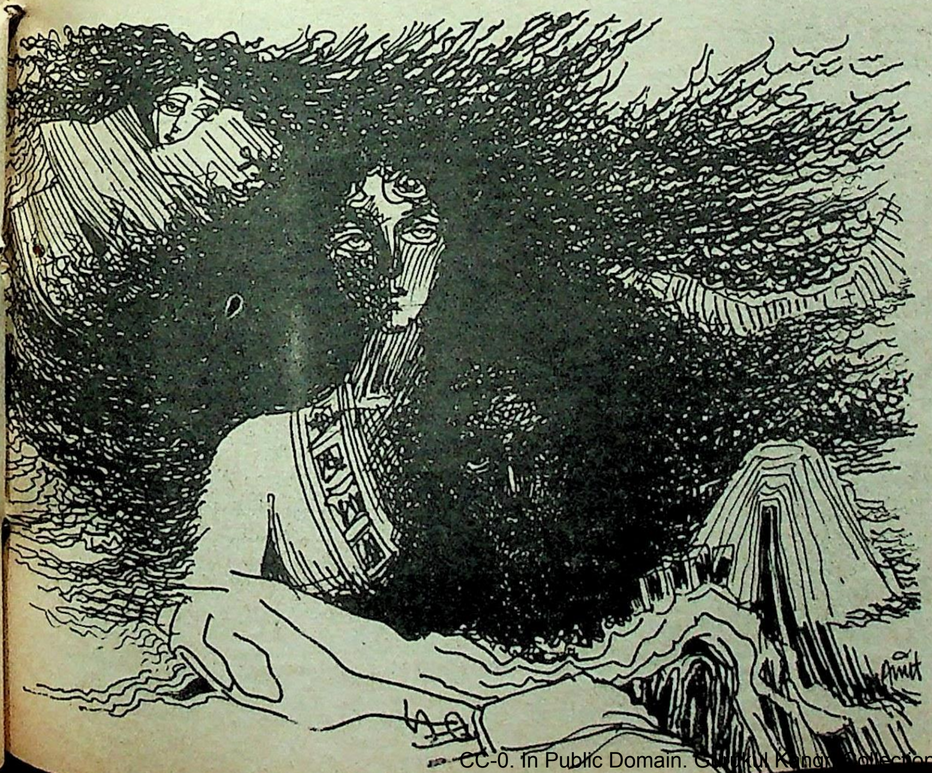

यह मैं सहन न कर सका. मेरा सारा खून मेरी आंखों से बरसने लगा. मैं आपे से बाहर हो गया. मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैंने किस तरह उसे बालों से पकड़ा और किस तरह उसके शरीर को घायल कर दिया था!

इसी समय रामावार को ठोकर लगी. वह शीघ्र ही संभल गया. पर उसी समय उसने मुझे देख लिया.

मैंने पूरे जोश के साथ कहा, "बांके बिहारी लाल की जय!"

पर मैंने देखा कि रामावार रो रहा था. उसकी आंखें भीगी थीं.

मैंने अनजान बनकर पूछा, "रामावारजी, आपको क्या हो गया है. क्या हालत बना रखी है. रो क्यों रहे हैं?"

पर रामावार का गला रुंधा था. मुझे ऐसा लगा कि वह कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पा रहे हैं.

मैंने फिर पूछा, "आप क्यों रो रहे हैं और आप क्या बड़बड़ाते जा रहे थे. लगता है आपकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है."

फिर मैंने सुना, वे कह रहे थे, "भाई, मैं यह सोचता जा रहा था कि क्या भगवान भी रोते हैं."

यह कहते हुए रामावार के अश्रु बह चले. उनके अंदर का दुख बाहर आ रहा था.

मैंने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं, क्या कभी भगवान भी रोते हैं?"

"भाई, जब सीता हरण हुआ था तो भगवान राम रोये थे. जब बांके बिहारी लाल द्वारका गये थे तो वृंदावन की ओर मुंह कर रोते थे."

ये शब्द बड़ी कठिनाई से उनके मुंह से निकले. फिर वह फूट-फूटकर रोने लगे. मैंने अपना रूमाल निकालकर उनके अश्रु पोंछने की कोशिश की. मैं भागकर एक गिलास पानी ले आया और उनके चेहरे पर छींटे मारे तो उनके अश्रु रुक गये.

मैंने फिर पूछा, "आप इतने दुखी क्यों हैं?"

फिर उन्होंने थरथराती और कांपती आवाज में कहा, "दोस्त, क्या तुम नहीं जानते कि पिछले दिनों मेरी धर्मपत्नी ने आत्महत्या कर ली. किसी ने विश्वास नहीं किया कि इतनी पढ़ी-लिखी और इतनी समझदार प्राध्यापिका ऐसा कदम उठा सकती है. कुछ लोग कहते हैं, यह आत्महत्या का नहीं, हत्या का मामला था, क्योंकि हम दोनों में तनाव चल रहा था, उसने मुझे अपना संरक्षक और स्वामी मानने से इंकार कर दिया था. मुझे स्वयं भी ऐसा लगता है कि उसने आत्महत्या नहीं की बल्कि मैंने उसकी हत्या कर दी. □

● 102, [illegible] कालोनी, दिल्ली-110009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम का यह आश्वस्त करता रूप

■ मीरा सीकरी

मिथकों का उपयोग करके सामयिक रचना का सृजन करना दोधारी तलवार पर चलने सरीखा जोखिम भरा काम है, पर अनेक भारतीय कथाकारों ने यह जोखिम उठाकर मिथकों पर आधारित सफल साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया है. प्रस्तुत हैं इधर के तीन बहुचर्चित उपन्यासों पर विचार विमर्श—

"जो कुछ मैं सुनाने जा रहा हूं, है वह इतिहास ही. संभव है, इसके कुछ अंश उड़ते-उड़ते तुमने कहीं से सुने भी हों, पर मैं इसे इतिहास के रूप में नहीं सुना रहा हूं, कथा के रूप में ही सुनाऊंगा. यह इसलिए कि मैं तुम्हें वह सब भी बता सकूं, जो कुछ मैंने देखा है, जो कुछ मैंने सुना है, जो कुछ मैंने समझा और अनुभव किया है, जो कुछ मैंने कल्पना की है." विश्वामित्र के ये शब्द वस्तुतः नरेंद्र कोहली द्वारा लिखित रामकथा के (चार खंड—**दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर** तथा **युद्ध**) के सत्य को ही उद्घाटित करते हैं.

प्रख्यात कथा और सामयिकता को एक साथ रखने की चेष्टा सी-सा के खेल की तरह संतुलन के कौशल की मांग करती है. विशेषकर उस स्थिति में जबकि लेखक प्रख्यात कथा के माध्यम से अपने देखे, सुने, समझे समय को प्रस्तुत करने का इच्छुक हो. चार खंडों में विभक्त दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर तथा युद्ध, राम कथा विषयक यह उपन्यास वस्तुतः अपने समय को ही उद्घाटित करता है. वही उसका वास्तविक रूप है, प्रख्यात कथा तो उसकी बाहरी छवि है. इस वास्तविक रूप एवं प्रख्यात छवि को बनाये रखने में लेखक ने अद्भुत कलात्मकता का परिचय दिया है.

स्वतंत्रता के बाद जिस समय में हम जी रहे हैं, वह भ्रष्ट सत्ताधारियों द्वारा नियंत्रित समाज है, जिनकी विकृत राजनीत्ति में अर्थ के विषय विभाजन के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच की खाई निरंतर बढ़ती चली जा रही है. हीन अवस्था में जीवित विराट जन-समुदाय अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त पराधीनता के संस्कार में जीवित रहने के कारण अपने प्रति होते दमन, हिंसा और अत्याचार का विरोध न कर निरंतर सहन करता, उसे ही अपनी नियत्ति मान बैठा है. इस त्रस्त मनोबल आवेष्टि समाज में, इसी सामान्य जन के आत्म-विश्वास को बढ़ाने के लिए लेखक ने अपनी बात रामकथा के माध्यम से कही ताकि अयथार्थ में राम जैसे नेतृत्व के अभाव में भी वह आज के समय को राम का नेतृत्व दे सके.

वर्तमान समय ही रामकथा में प्रतिबिंबित हुआ है, इसमें शक नहीं. यों भी सदाचार और अनाचार प्रत्येक युग में होते हैं, किंतु विषम सामयिक परिस्थितियों में संवेदनशील सहृदय अधिकांशतः चाहते हुए भी खुलकर सदाचार का समर्थन एवं अनाचार का विरोध नहीं कर पाते. अगर करते भी हैं तो उनकी कृतियों को हल्केपन का नाम देकर खारिज कर दिया जाता है. ऐसे में लेखक अपने मन की घुटन से मुक्त होने के लिए अपने और समाज के मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रख्यात कथा का अवलंब लेता है.

रामकथा के इस वृहत कलेवर में यों तो लेखक व्यक्ति और समाज के सामरस्य का आधार स्त्री-पुरुष द्वारा निर्मित पारिवारिक इकाई, उनकी संतति की समुचित शिक्षा, कृषि, विज्ञान आदि विविध क्षेत्रों के विविध प्रश्नों का तर्क और युक्ति सम्मत परिवेक्षण करता है, किंतु जिस प्रश्न को वह चुनौती के रूप में देखता है, वह है आज का सांस्कृतिक संकट. यह संकट उपस्थित हुआ है विलासी, स्वार्थी, भोगवादी जीवन दृष्टि को अपनानेवाले रावण सरीखे राक्षसों से, जिन्हें अपने अभीष्ट की सिद्धि में तनिक भी कठिनाई नहीं होती, क्योंकि वे विस्तृत साम्राज्य के स्वामी हैं. उनकी इस राक्षसी प्रवृत्ति का निरंतर विकास हो रहा है, क्योंकि देश, काल, जाति किसी का भी कोई अंकुश उन पर नहीं है. कहीं भी, कोई भी अपनी शारीरिक शक्ति अथवा सत्ता के अर्जन से इस प्रवृत्ति का शिकार हो सकता है. यह प्रवृत्ति रावण, खर, दूषण, मारीच, ताड़का आदि तक ही सीमित नहीं, यह अयोध्या के राजा की भी हो सकती है, स्वयं देवराज इंद्र एवं उनके ही पदचिह्नों पर चलते उनके पुत्र जयंत को भी घेर सकती है. किष्किंधा के वानर राज बाली के अपदस्थ होने पर सत्ता हाथ में लगते ही सुग्रीव को भी आक्रांत कर सकती है और सीमाप्रांत में तैनात आर्य सेनापति बहुलाश्व और उनके पुत्र को भी ग्रस सकती है. सीमित पारिवारिक परिवेश में किसी सद्गृहस्थ को बरगला सकती है और इसकी चपेट में आया आनंद जैसा पुरुष अपनी पत्नी को पशु की तरह पीटनेवाला मानव-राक्षस हो सकता है. संपूर्ण दिशाओं में इस राक्षसी प्रवृत्ति का आतंक फैला है. कालकाचार्य जैसे ऋषि, जहां इस प्रवृत्ति से किसी न किसी प्रकार समझौता कर लेते हैं, वहां उसी के आतंक में जीते शरभंग जैसे ऋषि अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत करने से स्वाभिमानपूर्ण आत्मदाह के विकल्प को अपनाते हैं. विश्वामित्र एवं अगस्त्य सरीखे बुद्धिजीवी इस विषैले पौधे के प्रसार को भांप लेते हैं. अगस्त्य अपनी सीमाओं में इस प्रवृत्ति से जूझ रहे हैं. विश्वामित्र अपने विवेक को केवल चिंतन तक सीमित न रख कर्म के लिए अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम का चयन करते हैं.

यह राम दाशरथि राम होते हुए भी देवत्व एवं चमत्कार से रहित सामान्य मनुष्य हैं. विश्वामित्र ने राम का चुनाव इसलिए किया है, क्योंकि राम उपेक्षित मां के उपेक्षित पुत्र होने के कारण अन्याय पीड़ित सामान्य व्यक्ति की पीड़ा को समझ सकते हैं. अपनी वेदना ही दूसरों के प्रति संवेदना जगाती है, इसीलिए विश्वामित्र द्वारा दीक्षित राम अपने अभिषेक की परिस्थितियों की विषम परिणति पर कैकेयी अथवा अपने पिता की इच्छापूर्ति मात्र के लिए वन-गमन न कर अपने ध्येय की पूर्ति के लिए इस अवसर का लाभ उठाते हैं एवं भीरु, कुंठित, आतंकित, मनोबलहीन सामान्य जन का संगठन करने के लिए, उनमें स्वाभिमान से जीने की लालसा जगाने के लिए, सही मानो में अपनी अर्द्धांगिनी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ दंडक वन जाते हैं.

राम का लक्ष्य न्याय के आधार पर मानव-मानव के बीच की खाई को पाटकर उनमें समत्व स्थापित करना है. उनका साधन भी मानव है और साध्य भी मानव. यह तभी संभव हो सकता है, जब सामान्य मानव का विवेक जागृत हो. और विवेक जागृत उस शिक्षा से होगा, जो उनका भीतरी और बाहरी विकास कर सके. राम विदेशों से आयातित उस शिक्षा के पक्ष में नहीं हैं, जो एक वर्ग को विशिष्ट और दूसरे को हीन बनाकर रख दे. मनुष्य को मनुष्य का विवेक देनेवाली इस शिक्षा नीति के साथ राम उस समुचित अर्थ नीति को व्यावहारिकता देना चाहते हैं, जिसके माध्यम से आवश्यकताओं एवं सुविधाओं का सबमें समान वितरण हो सके और शोषण की वह परंपरा समाप्त हो सके, जहां शोषितों की नींव पर शोषकों के भव्य-भवन निर्मित होते हैं. **राम का इष्ट कर्म है, प्रदर्शन**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं. प्रदर्शन एवं उद्घोषणा तो वे षड्यंत्रकारी धूर्त करते हैं, जो मदिरा, चरस, अफीम, गांजे से जन सामान्य के विवेक को सुला देते हैं, उनके रक्त में आलस्य एवं निष्क्रियता के कीटाणु रोप देते हैं और फिर खोखले नारों के ढोल पीटकर ऊपरी सुख और शांति का दावा करते हैं. ऐसी किसी भी पलायनवादी वृत्ति के विरोधी राम तो मनुष्य में मनुष्य का बोध जगाते हुए आगे बढ़ते हैं. प्रत्येक क्षेत्र में मानवता विरोधी शक्तियों का विरोध करते राम अपने साथ सेनाएं लेकर नहीं चलते, प्रत्युत उनकी अद्भुत संगठन-क्षमता हर जगह की मिट्टी में से सैनिक गढ़ लेती है. उनके द्वारा निर्मित सैनिक भाड़े के टट्टू नहीं, अपितु अपनी पीड़ा के प्रतिकार के लिए उठे सामान्य जन हैं—समुद्र पार कर विभीषण भी उनके मार्ग को अपनाता है और दीवार फांदकर आया सुग्रीव भी उनका साथ देता है. अजेय मानवता का संदेश देते राम, रावण के समान तंत्र-मंत्र या देव पूजा में समय का अपव्यय नहीं करते, बल्कि दैवी शक्तियां स्वयं उनके पास आकर उनके अनवरत न्याय यज्ञ में सहायक होती हैं. सुरक्षा, उत्पादन एवं शिक्षा में समानता का संदेश देते राम इस बात पर बल देते हैं कि मुक्त होना कठिन नहीं, मुक्ति की रक्षा करना कठिन है और यह वही कर सकता है, जो अनवरत संघर्ष के लिए प्रस्तुत हो. **'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' एवं 'युद्ध'** (**प्रकाशक: पराग प्रकाशन, 3/114 कर्णगली, विश्वासनगर, दिल्ली-110032**) चारों खंडों में जन सामान्य को जगाते, मिट्टी में प्राण फूंकते नरेंद्र कोहली के राम अपने यथार्थ रूप में विश्वसनीय एवं प्रभावित करनेवाले हैं.

पुनर्सृष्ट चरित्रों में सीता, अहिल्या, शूर्पणखा एवं मंदोदरी रेखांकित हुए बिना नहीं रहते. लाचार, विवश, बिसूरती नारी की छवि को तोड़ती प्रत्येक विषम से विषम स्थिति का डटकर मुकाबला करती सीता आज की नारी के नितांत अनुकूल है. पति के ध्येय में समभाव से प्रयत्नशील सीता समाज के संतुलन के लिए आदर्श दांपत्य का उदाहरण है. आयासरहित होकर भी भाषा की पवित्रता को बनाये रखना ज्यादा कठिन कार्य है और यह दूभर कुशलता राम कथा में है.

प्रख्यात और सामयिक जीवन को मिलाने की प्रक्रिया दूध और पानी को एक करने की प्रक्रिया है, किंतु इसका लाघव दूध की छवि को बनाये रखने में है. राम का पारंपरिक बिंब 'लोक मंगल' का है. नरेंद्र कोहली द्वारा रचित राम का बिंब भी विश्वास एवं सहजता से लोक संगठन करता जन-जन में जिजीविषा जगाता, आश्वस्ति का भाव देता है. आज के समय में राम का यह आश्वस्त करता रूप अपने आप में कम बड़ी उपलब्धि नहीं है. □

पर्व : एक नये मिथक की सृष्टि

▣ **बलराम**

प्रख्यात भारतीय विचारक कुमार स्वामी ने एक बार कहा था कि 'किसी चीज को कोई नाम देने का अर्थ यह नहीं कि आपने उसको अपना बना लिया है या उसकी व्याख्या कर ली है.' लेकिन मुझे लगता है कि संदर्भ अगर साहित्य का होता और कुमार स्वामी ने प्रख्यात कन्नड़ कथाकार एस. एल. भैरप्पा का महाभारत पर आधारित उपन्यास **'पर्व'** पढ़ लिया होता तो ऐसा शायद ही कह पाते, क्योंकि प्राचीन काल के महाभारत को भैरप्पा ने न सिर्फ नया नाम 'पर्व' दिया है, बल्कि समकालीन और आधुनिक संदर्भ में उसे व्याख्यायित भी कर लिया है. 'पर्व' अब व्यास का 'महाभारत' नहीं, भैरप्पा का अपना 'महाभारत' हो गया है.

इस उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं—"मैं महाभारत के पात्रों की कथा नहीं लिख रहा हूं, मनुष्य के अनुभवों के विविध आयाम, रूप और मानव संबंधों के स्वरूप और उनके विवेचन को शब्दबद्ध कर रहा हूं. . .साहित्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष कहकर किसी भी तरह का विभाजन करना गलत है. जो कुछ मैं लिखता हूं, वह प्रत्यक्ष ही होता है. . . मूलतत्व मेरे अनुभव से फूटकर निकले हैं. इसलिए 'इस समय' और 'उस समय' में कोई भेद नहीं है." उपन्यास की भूमिका में कहे गये लेखक के ये शब्द उपन्यास में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं. लेखक ने कथानक और भाव भंगिमाओं तथा पात्रों के आत्म-मंथन को इस कौशल से लिपिबद्ध किया है कि प्राचीन और अर्वाचीन का भेद मिट गया है, क्योंकि रचना का सत्य इतिहास में नहीं, मनुष्य जीवन के संघर्ष में निहित है, जहां एक बिंदु पर असत्य और सत्य का भेद भी मिट जाता है, रह जाता है संघर्ष, सिर्फ संघर्ष. आंखों पर पट्टियां चढ़ जाती हैं और लोग अंधे होकर करणीय और अकरणीय का भेद भूल जाते हैं. ऐसा तब भी होता था और कमोबेश आज भी वैसा ही होता रहता है. मानव वृत्तियों की यह निरंतरता ही प्रख्यात कथानकों पर आधारित रचनाओं से 'इस काल' और 'उस काल' का भेद मिटा देती है. कहना न होगा कि 'पर्व' में भैरप्पा इस भेद को मिटा पाने में सफल हुए हैं और 'पर्व' एक समकालीन साहित्यिक रचना के लिए आवश्यक सभी गुणों से परिपूर्ण समकालीन साहित्यिक उपन्यास है.

पिछले दिनों भारतीय उपन्यास या उपन्यास के भारतीय स्वरूप की चर्चा अक्सर होती रही है. इस संदर्भ में कभी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों—**चारुचंद्र लेख, अनामदास का पोथा** और **पुनर्नवा** को, कभी वीरेंद्रकुमार जैन के **'अनुत्तर योगी'** को और सन्हैयालाल ओझा के **'संभवामि'** तथा नरेंद्र कोहली की **रामकथा** को चर्चा का आधार बनाया जाता रहा है, लेकिन **'पर्व'** की चर्चा किसी ने नहीं की, जबकि मुझे ऐसा लगता है कि उपन्यास की भारतीय अवधारणा या स्वरूप को समझने-समझाने के लिए 'पर्व' की चर्चा के बिना कोई भी बात पूरी नहीं मानी जा सकती.

प्रख्यात कथाओं पर आधारित रचनाओं का पहला दोष यह होता है कि वे प्रायः साहित्यिक रचनाएं नहीं बन पातीं. 'पर्व' इस दोष से मुक्त एक साहित्यिक उपन्यास के तौर पर खुद को स्थापित करने में सफल होता है. दूसरा दोष ऐसी रचनाओं का यह होता है कि गरिमामय चरित्रों को और भी गरिमा सौंप दी जाती है. इसके विपरीत 'पर्व' में किसी भी चरित्र को अतिरिक्त गरिमा नहीं सौंपी गयी है, यहां तक कि कृष्ण का नायकत्व तक इस उपन्यास में छिन गया है. देवत्व का तो खैर सवाल ही नहीं उठता. भीष्म, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और शल्य से लेकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कृष्ण और बलराम तक सब मानवीय अच्छाइयों और बुराइयों से लैस हैं. रचनाकार ने सभी चरित्रों को समान सहानुभूति से देखा है. कुंती, द्रौपदी और गांधारी के चरित्रों को भी पूर्णतः मानवीय रूप देकर उनके हास और रुदन को वाणी मिली है.

एक तरह से देखा जाये तो 'पर्व' महाभारत के प्रायः सभी पात्रों का आत्ममंथन है. और सभी के आत्ममंथन मिलकर एक समाज के मंथन हो गये हैं, जिसका कुल जमा सार यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने आप में और यों ही दुष्ट नहीं हो जाता. गैरबराबरी की स्थितियां और पक्षपात उन्हें वैसा होने के लिए विवश कर देते हैं.

अलग-अलग अध्यायों में बंटे होने के बावजूद लेखक ने उपन्यास को इस कौशल से एकसूत्र में पिरोया है कि सब मिलकर एक नये महाभारत की सृष्टि करते हैं. छह सौ सत्तर पृष्ठों में फैले 'पर्व' में भैरप्पा ने महाभारत के मिथकों का उपयोग कर 'महाभारत' के मिथक को तोड़ा है और 'पर्व' के रूप में एक नये मिथक की सृष्टि की है.

कन्नड़ से हिंदी में 'पर्व' (**प्रकाशक : शब्दकार, 2203 गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006; मूल्य : 125 रुपये**) का अनुवाद बी. आर. नारायण का है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच हजार वर्ष की शून्य यात्रा : संभवामि

□ राजकुमार गौतम

प्रख्यात उपन्यासकार सन्हैयालाल ओझा द्वारा रचित लगभग एक हजार पृष्ठों वाले भारी भरकम उपन्यास 'संभवामि' के विषय में बंगला के सुपरिचित कथाकार विमल मित्र ने लेखक से पूछा था कि पांच हजार वर्ष पूर्व के कथानक की क्या प्रासंगिकता है?

उपन्यास पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कथानक द्वारा प्रासंगिकता को तलाशने के लिए लेखक को किसी प्रकार के 'दर्शन' में कहीं गहरे नहीं उतरना पड़ा. लेखक ने स्पष्ट भी किया है—'मानव जो आज है, पांच हजार वर्ष पूर्व भी वही मानव था और इससे भी पूर्व पचास हजार साल का गुहा मानव भी आज के इस मानव में सोया छिपा हुआ है. गुहा-मानव ही क्यों, सृजन के आदि से जो कुछ भी सृष्ट होता आ रहा है, वह सब जड़-चेतन, कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में इसमें समाया हुआ है. सच तो, यह सृष्टि और इसका स्रष्टा भी यही है. कभी लिखता है तो कभी लिखा जाता है, और इसीलिए 'संभवामि' है. तब क्या तो यहां है पौराणिक और क्या है आधुनिक ? रूप और पट-परिवर्तन के बावजूद सभी कुछ तो शाश्वत है.' उपन्यास के अंत में वे यह भी स्वीकार करते हैं कि 'मैंने धर्म, युद्ध, राजनीति, अर्थनीति, कला, संस्कृति, सेक्स आदि के व्यूहों और इनसे संबंधित मूल्यों का विवेचन, बीसवीं सदी की मानसिकता से ही प्रस्तुत किया है.' लगभग इन्हीं सोपानों पर चढ़ती-उतरती उपन्यास की कथा अनार्य-नेता विभांडक बृबु से चलकर प्रोफेसर मुरारीलाल मनस्वी में ही कहीं 'दोहरायी' नहीं जाती, बल्कि मृगमंदा और यहूदिन मार्गरेट की समान नियति के बीच की पांच हजार वर्ष लंबी फैली दूरी को लगभग 'शून्य' सिद्ध करती है. उपन्यास में यह 'शून्य' स्थिति मात्र लेखकीय कल्पना या परिवेशगत सैर-सपाटे के ही माध्यम से परिलक्षित नहीं होती, बल्कि इसका एक अनुशासित, तार्किक और विश्वसनीय प्रक्रम यहां उपस्थित है. राजनीति, कूटनीति, रणनीति, प्रेम, नारी-स्वातंत्र्य, भौगोलिक 'सभ्यता' के स्तर पर पनपता विदेश के नाम पर विद्वेश और मूल्यों के मूलहीन होते जाने की चिंता (या कहें नियति-चित्रण) इस कथा का मुख्य ताना-बाना कहा जा सकता है. किसी सीमा तक, उपन्यास में वर्णित बृबु कालीन सभ्यता-संस्कृति को तो लेखकीय कल्पना के हठ से जोड़ा भी जा सकता है, लेकिन इसी शताब्दी के गृहस्थाश्रम में हुए विश्वयुद्धों (या इससे भी आगे आकर पश्चिम बंगाल की वाम सरकार और विशेषतः कलकत्ता महानगर की लोड-शेडिंग तथा 'अनामदास का पोथा' के अनामदास या आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मृत्यु. . . आदि) के चित्रण से जर्जर हो गयी मानव नियति का तो अंत नहीं ही समझा जा सकता. मानव सभ्यता, संस्कृति, इसकी अधोगति और तथाकथित प्रगति की विभिन्न जानी-अनजानी गलियों में घुमाता हुआ यह उपन्यास सांस्कृतिक अकाल के इन दिनों में पाठक को स्वादिष्ट आत्म-साक्षात्कार करने का एक अवसर प्रदान करता है. निस्संदेह पाठक के आत्म-साक्षात्कार की 'विवशता' इस उपन्यास की अतिरिक्त उपलब्धि है.

इस उपन्यास की कथा में महा अपराधी को क्षमा भी किया गया है. इसी कथानक की यह मान्यता भी है कि 'समाज, मनुष्य की नियति है. तमाम बाहरी विभिन्नताएं, मान्यताएं, परंपराएं होते हुए भी उर्वरक प्रेम-संबंध हैं. महाश्रेष्ठ अर्बुद, वाणि, मृगमंदा, ऋषियों की 'लीलाएं'. . . इनके माध्यम से यह कहानी वृषभ, अश्व, आविष्कार, परंपराओं तथा जीवन के दूसरे तमाम नाम-नक्श को टटोलती हुई आगे बढ़ती है. षड्यंत्र, हत्या, न्याय, सत्तालिप्सा, आसक्ति, करुणा, वीरता, आतिथ्य, सम्मान तथा न्यायप्रियता. . आदि सब विषयों को सहयात्री बनाती यह कथा मुरारीलाल को भी 'कथा' प्रदान करना नहीं भूलती, जो एक अर्थ में बृबु का ही रूप है. मुरारीलाल का मानना है कि 'मुझे (बृबु) संस्करण ही क्यों कहते हो? वह अनुकरण भी हो सकता है, प्रकरण भी हो सकता है, और समय के साथ विवरण भी हो सकता है. आज इस पृथ्वी पर चार अरब मानव हैं, पर किसी समय बस एक 'मानव' था. और ये सभी चार अरब मानव उस समय उसमें निहित थे.

इसी काल में कला आदि ललित क्षेत्रों में भी निरंतर विकास होता पाया गया है. उपन्यास में एक जगह शुण्ण कहता है, हमें एक ऐसा संप्रदाय भी विकसित करना चाहिए, जो जीवन के स्थूल पक्षों में हमारी रुचि विकसित और परिष्कृत करे. वैराग्य, करुणा और शांत-भाव ही नहीं, हममें वीर, रौद्र, शृंगार, जुगुप्सा आदि भाव भी जागृत हों. ऐसे कविमनीषी परिभू व्यक्ति हों, जो हमारे सद्गुणों को प्रकाश में लायें, उनको जन-जन में प्रचारित करें, उनके अनुकरण की प्रेरणा दें. कहने का तात्पर्य यह कि प्रारंभिक सभ्यता शाला में तब ऐसा कुछ भी कम नहीं था, जो उसे आज के सामने लेशमात्र भी अपंग सिद्ध कर सके. कथा के अगले भाग में प्रायः युवक, यज्ञ, आयुर्विभाजन, वर्ग-विभाजन, मुद्रा-प्रचलन, व्यवस्था, भ्रमण, मित्रताएं-शत्रुताएं, वैयक्तिक रुचि का अस्तित्व, भीख, दक्षिणा, आरंभिक व्यापार का प्रचलन. . . तथा जीवन दर्शन पर विकासशील टिप्पणियों आदि का प्रवेश होता है. हत्या का षडयंत्र, विश्वास-घात तथा स्वामिभक्ति की अवधारणाएं भी शनैः शनैः स्पष्टतर होने लगती हैं.

उपन्यास के द्वितीय पर्व में युद्ध, नारी का सामाजिक अस्तित्व, पुरुष के साथ उसकी भूमिका, संतान के प्रति देय, प्रतिनिधित्व का प्रश्न तथा हिंसा का उत्तर क्या होना चाहिए. . . . आदि विषयों पर अपेक्षाकृत विस्तृततर आख्यान प्रस्तुत किये गये हैं. व्यावहारिक दृष्टिकोण का चतुर ललाट यहां अधिक चौड़ा हुआ है और आदर्श तथा परंपरामयता की ओर पात्रों का अधिक रुझान दिखाई पड़ता है. निश्चित है कि इस बढ़ते रुझान ने ही आज पृथ्वी पर उत्पन्न विभिन्न मतभेदों के लिए मूल भूमिका का निर्वाह किया होगा. भाषा संस्कृत के अधिक निकट लगती है. एक प्रकार से यह संस्कृत-निष्ठता कथानक की आवश्यकता भी थी, लेकिन जो चीज इस भाषा की तरलता को सोख लेती है, वह है इसकी गूढ़ अर्थमयता. वर्णित विषयों पर अपेक्षाकृत गंभीर बहस भाषा के प्रवाह को प्रायः सुस्त कर देती है. इसीलिए उपन्यास पढ़ने में यह हुआ कि अर्थ खोजने के लिए मुझे बार-बार शब्दों के पीछे छिपे विशाल नेपथ्य में जाना पड़ा. यदि बृबु और मुरारीलाल के बीच के समय को 'शून्य' करार देना आवश्यक था तो संभवतः इसकी अपेक्षा संप्रेषण के स्तर पर भी थी.

चूंकि 'संभवामि' (**प्रकाशक : हिंदी प्रचारक संस्थान, पिशाच मोचन, वाराणसी. मूल्य : अस्सी रुपये**) में घटनाक्रम और उपन्यासकार का आत्मकथात्मक चित्रण बहुत लुभावने ढंग से पिरोया गया है, इसीलिए उपन्यास को पाठक समर्पित रहता है. कथानक के इतने बड़े ढोल को लय टंकार और सूक्ष्मता से बजाना (पीटना नहीं) सन्हैयालाल ओझा की समर्थ लेखनी के ही वश की बात है. उपन्यास के माध्यम से पिछले युग की कहानी से होते हुए आज भी जब आदमी स्वयं को ठीक 'वहीं' खड़ा पाता है तो वास्तव में यह प्रतीति उपन्यास की प्रासंगिकता और अनिवार्यता को स्पष्ट कर देती है. परिणामतः उपन्यास के अंत में लेखक द्वारा यह सूत्र वाक्य उचित ही प्रतिपादित किया गया लगता है कि 'हम मृत्यु की नहीं, अमृत की ओर बढ़ रहे हैं.' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी मिथक कथाओं का संसार

कमल नसीम

एक बहुत पुरानी और प्रचलित धारणा है कि मिथक कथाएं रूपकात्मक होती हैं और अपने सुंदर झिलमिल आवरण में कोई गहरा, सन्मार्ग निर्देश करनेवाला अर्थ छिपाये होती हैं. इस तरह इन कथाओं का केवल वही अर्थ नहीं, जो सतह पर दीखता है, बल्कि इनके माध्यम से एक सुसंबद्ध दर्शन को पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता है. उदाहरणार्थ क्यूपिड और साइके की प्रेमकथा महज एक मनोहारी कथा ही नहीं, एक रूपक भी है. क्यूपिड यहां अनंत-अनश्वर प्रेम का प्रतीक है और साइके वह आत्मा, जो माया के जाल में फंसकर दुख सहती है. दुखों से आत्मा का परिमार्जन होता है और वह प्रिय से मिलने के योग्य हो जाती है. हेडीज और पर्सीफनी का अपहरण केवल एक देवता की आसक्ति की कहानी ही नहीं है. ज्यूस द्वारा पर्सीफनी का चार माह मृत्युलोक और आठ माह पृथ्वी पर बिताने का निर्णय ऋतु परिवर्तन से जोड़ा जाता है. पृथ्वी पर पर्सीफनी की उपस्थिति से मां डिमीटर प्रसन्न होती है, सो फसलें लहलहाती हैं, फूल खिलते हैं, किंतु पर्सीफनी के मृत्युलोक लौटते ही डिमीटर शोकमग्न हो जाती है, हरियाली अदृश्य हो जाती है और सारी पृथ्वी बर्फ से ढक जाती है, लेकिन यूनानी मिथक कथाओं का सौंदर्य उनकी सहजता में होता है. इनके माध्यम से हमारा साक्षात्कार उन देवताओं से होता है, जो शक्ति में भले ही मानव से श्रेष्ठतर हैं, किंतु रूप-गुण में मूलतः मानव की ही प्रतिकृति हैं. प्रेम में अंधे होकर वे भी उचित अनुचित का विचार खो बैठते हैं और प्रिय को पाने के लिए भांति-भांति के रूप धरते हैं. इनमें कहीं भी रूपकात्मकता नहीं. उनकी भावनाओं का सीधा-सादा चित्रण इनमें है. ज्यूस-हेरा के प्रणय और विवाह के संबंध में कहीं कोई अन्योक्ति नहीं. देव साम्राज्ञी होने पर भी हेरा किसी भी साधारण स्त्री की भांति पति की कामुक प्रवृत्ति के प्रति शंकालु है. इसी प्रकार एरीज, हेफास्टस, हेमीज, आर्टेमिस तथा हेस्टिया आदि प्रमुख दैवी शक्तियों के जीवन से संबद्ध किसी घटना का रूपक के रूप में विवेचन उचित नहीं.

मिस्र की तरह यूनान की दैवी शक्तियां पशु आकृति की न होकर विशुद्ध रूप से मनुष्य की अनुहार पर रची गयीं. ये सुंदर और गौर वर्ण हैं. इनके कद लंबे और अंग सांचे में ढले हैं. सिर पर काली अथवा घुंघराली केश-राशि है. आकृति में अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार गरिमा अथवा लालित्य का समावेश है. उदाहरणार्थ ज्यूस का चित्रण तेजयुक्त, वैभव संपन्न बलिष्ठ पुरुष के रूप में हुआ है, जबकि संगीत एवं अन्य ललित कलाओं के अधिष्ठाता होने के कारण अपोलो में पुरुषोचित गठन के साथ कमनीयता का मिश्रण है. उसका चित्रण एक लंबे-सुडौल शरीर और सुनहरे बालोंवाले युवक के रूप में हुआ है. इसी तरह हेरा में गरिमा विशिष्ट है तो एफ्राडायटी में रूप. ओलिंपस यूनानवासियों की कल्पना का स्वर्ग है, जहां कोई दुख नहीं. यहां न मूसलाधार वर्षा होती है और न झंझावात उठते हैं. किसी प्राकृतिक झरने-सा जीवन स्वच्छंद बहता है. दिशाओं में सदा मनभावन उजाला खिला रहता है और वातावरण में है संगीत लहरी. प्रत्येक ऋतु के फूल यहां सदा खिलते हैं. देवताओं के निवास स्थल पर ही नहीं, पृथ्वी पर भी अमानवीय शक्तियां बहुत कम हैं और जो हैं, वे भी इस कारण कि यूनान के देवता एवं शूर-वीर उनका वध करके यश अर्जित करें.

यूनानी देवता केवल आकृति में ही मानव के अनुरूप नहीं, उन्हें सुख-दुख, हर्ष-विमर्श, काम-क्रोध आदि संवेगों की अनुभूति भी मानव. के समान ही होती है. ये शक्ति में भले ही मानव से उत्तम हैं, किंतु इनकी दुर्बलताएं इन्हें मानव के साथ एक ही धरातल पर ला खड़ा करती हैं. ज्यूस में काम प्रवृत्ति उद्दाम है और एक बार किसी लावण्यमयी पर रीझ जाने पर ओलिंपस का सम्राट अपनी सारी गरिमा भूलकर पृथ्वी पर कभी बैल का रूप धारण करता है तो कभी हंस का.

ज्यूस शक्तिशाली है. पत्नी आलोचना नहीं कर सकती. सो, अपना क्रोध ज्यूस की प्रेमिकाओं पर उतारती है. हो सकता है, यह किसी भी तरह न्यायोचित न हो. ऐफ्राडायटी को रूप का अभिमान है. वह किसी भी अन्य स्त्री के रूप की प्रशंसा नहीं सह सकती है. इसी कारण बेचारी निर्दोष साइके को दंड का भागी बनना पड़ता है. अभिमान और ईर्ष्या से एथीनी भी सर्वथा मुक्त नहीं. बुनाई की प्रतियोगिता में पराजित होने पर वह विजेता प्रतिद्वंद्वी आर्कने को श्राप देकर मकड़ी बना देती है. ज्यूस न्यायपरायण है, किंतु पक्षपात से सर्वथा मुक्त नहीं. अपनी मर्त्य प्रेमिकाओं के साथ तो उसने कभी भी न्याय नहीं किया. बहुधा वह किसी भी पक्ष को नाराज न करने के लिए न्याय का अधिकार ही हस्तांतरित कर देता है, जैसा कि उसने देवियों की सौंदर्य-प्रतियोगिता में पेरिस को निर्णायक नियुक्त करके किया. देवी-देवताओं में आपस में भी द्वेष की भावना है और एरीज को तो लड़ाई-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झगड़े कराने में आनंद आता है. मजे की बात यह है कि युद्ध देवता होने पर भी एरीज खुद लड़ने से घबराता है और युद्ध-क्षेत्र से अक्सर घायल होकर रोता हुआ ओलिंपस लौटता है.

हेर्मीज देवता अवश्य है, मगर उसे चोरी की आदत है. हेफास्टस देवता होने पर भी लंगड़ा है और अपनी रूपसी पत्नी ऐफ्राडायटी के नित नये प्रेम-संबंधों से परेशान. देवता शक्तिशाली हैं, किंतु ऐसा नहीं कि मनुष्य के शस्त्रों से घायल न हो सकें. ट्रॉय के युद्ध में एरीज,ऐफ्राडायटी और हेरा जख्मी होकर रोते-चिल्लाते ओलिंपस भागते हैं. ज्यूस देव सम्राट है, प्रभुत्वशाली है और उसके वज्र अमोघ हैं, किंतु फिर भी राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में उसे हेराक्लीज की सहायता लेनी पड़ती है. पृथ्वी डिमीटर और अंगूर, लता तथा मदिरा का देवता डायनायसस तो शत-प्रतिशत पृथ्वी की माटी से ही बने लगते हैं. वे पृथ्वी पर ही भ्रमण करते हुए अपनी कला का प्रसार करते हैं.

यूनान की इन पुराण-कथाओं में मार्यन का मिश्रण भी देखने को मिलता है. एक आंखवाले साइक्लाप्स, वन एवं जल-परियों की कहानियां, दैवी शक्ति से स्त्रियों का वृक्ष अथवा लताओं में रूपांतर इत्यादि अप्राकृतिक घटनाएं बहुतायत से उपलब्ध हैं. फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानवासियों का प्राकृतिक शक्तियों में तो विश्वास था, लेकिन जादू-टोने में नहीं. सारी यूनानी पुराण-कथाओं में केवल दो जादूगर स्त्रियां हैं. सेसी और मेडीया—वे भी सुंदर युवतियां हैं और उनकी कला का प्रयोग क्रमशः आडिसियस एवं जेसन की सहायता के लिए ही होता है. हस्तरेखा एवं नक्षत्र-ज्ञान का विकास नहीं हुआ था, किंतु टियरेसियस एवं कजेंड्रा को दैवी कृपा से भविष्य-ज्ञान का वरदान था. मेलांपस पशु-पक्षियों की भाषा समझता था और देवस्थलों पर लोग भविष्य जानने के लिए बहुधा जाया करते थे. डेल्फी स्थित अपोलो का प्रश्न-स्थल विशेष रूप से लोकप्रिय था. यहां देवता द्वारा अभिप्रेरित पुजारिन और डोडोना में हेरा के पवित्र ओक वृक्ष भविष्यवाणी करते थे. अध्यात्म से यूनानवासी अपरिचित थे. उनकी श्रद्धा, उनका परमार्थ इहलोक तक ही सीमित था. पुनर्जन्म में उनके विश्वास का कोई संकेत नहीं मिलता. मृत्योपरांत बहुधा आत्माएं टार्टोरस ही जाती थीं. केवल कुछ अनन्य व्यक्तियों को ईलीसियन में प्रवेश मिलता था.

तो यह और ऐसा ही है यूनानी मिथकों का वैविध्यपूर्ण संसार, जिसमें प्रवेश करने पर आप एक दैवी किंतु पूरी तरह से मानवीय दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं. ☐

संदर्भ : ग्रीक पुराण कथा-कोश : कमल नसीम

प्रस्तुति : बलराम

हलचल

भारतीय ज्ञानपीठ कथा प्रतियोगिता

डॉ. ऋता शुक्ल प्रथम घोषित

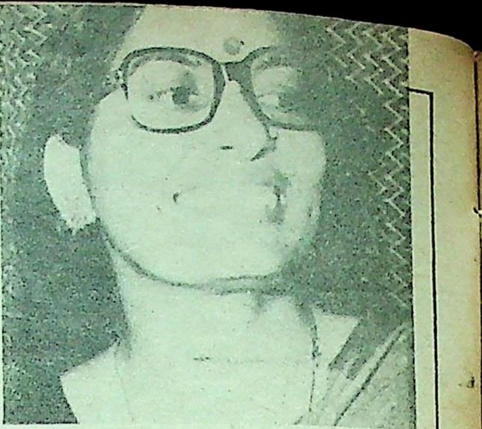

अब से डॉ. ऋता शुक्ल की कहानियां पाठकों द्वारा और भी अधिक ध्यान से पढ़ी जायेंगी, क्योंकि उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा नयी पीढ़ी के लिए आयोजित कथा प्रतियोगिता में प्रथम घोषित किया गया है. इस कथा प्रतियोगिता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रतियोगिता के लिए कहानियां नहीं, संपूर्ण कथा-पांडुलिपियां आमंत्रित की गयीं. शर्त उम्र की नहीं, यह थी कि इस प्रतियोगिता में केवल वे ही हिंदी कथा-शिल्पी भाग ले सकेंगे, जिनका अभी तक कोई स्वतंत्र कहानी-संग्रह प्रकाशित न हुआ हो, पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियां भले ही प्रकाशित हो चुकी हों. इस पुरस्कार की दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम घोषित कथा-पांडुलिपि पर पुरस्कार स्वरूप कोई धनराशि न देकर भारतीय ज्ञानपीठ पांडुलिपि के प्रकाशन का दायित्व वहन करेगा और विजेता रचनाकार को लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों के समकक्ष रायल्टी देगा. केवल इतना ही नहीं, वह सर्वश्रेष्ठ घोषित रचनाकार के साहित्यिक विकास में भी निरंतर सक्रिय सहयोग करेगा. इससे नये लेखकों को अच्छे प्रकाशक की तलाश में भटकना नहीं पड़ेगा.

इस कथा-प्रतियोगिता में देश के कोने-कोने से 86 पांडुलिपियां प्राप्त हुईं. अनेक कहानीकार ऐसे हैं, जिनकी कई-कई कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में ससम्मान छप चुकी हैं और कई ऐसे भी हैं, जिनकी कहानियां अभी तक पत्र-पत्रिकाओं के द्वार खटखटा रही हैं. प्रतियोगिता के निर्णायक थे—श्रीमती शिवानी, सर्वश्री कन्हैयालाल नंदन, बिशन टंडन एवं बालस्वरूप राही.

35 वर्षीया (जन्म : 14 नवंबर, 1950) डॉ. ऋता शुक्ल की अब तक धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, रविवार आदि में 50 कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं. 'कनिष्का उंगली का पाप' उनका अप्रकाशित उपन्यास है.

डेहरी ऑन सोन (बिहार) में जन्मी डॉ. ऋता शुक्ल अपने बचपन के ग्राम्य परिवेश को आज तक विस्मृत नहीं कर पायीं. आज भी नागरीय व्यस्तताओं और उलझनों के बीच उन्हें गांव की माटी की सोंधी गंध से भरा वातावरण याद आता है. उन्होंने स्नातक हिंदी प्रतिष्ठा (आनर्स) एवं स्नातकोत्तर हिंदी दोनों ही परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया और दोनों ही बार उन्हें स्वर्ण पदक मिले. उनके शोध का विषय था—'हिंदी कहानी के विकास में महिला कथाकारों का योगदान'. संप्रति महिला महाविद्यालय, रांची के हिंदी विभाग में प्राध्यापिका. साहित्यिक संस्कार उन्हें विरासत में मिले. वह 'चांद' पत्रिका के आद्य संपादक पं. नंदकिशोर तिवारी की वंशजा हैं और उनके पिता श्री रामेश्वरनाथ तिवारी राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा पुरस्कृत मूक साहित्य सेवी हैं. ऋता ने आठवीं-नवीं कक्षा से ही लिखना शुरू कर दिया और उनकी पहली कहानी 'मां का खत' 1968 में 'सीमांत' पत्रिका में प्रकाशित हुई. उनकी रचनाओं का मुख्य विषय मानवीय संबंधों के विघटन से उत्पन्न संत्रास है. सर्वश्रेष्ठ घोषित उनका कहानी संग्रह 'क्रौंचवध' ज्ञानपीठ द्वारा आने ही वाला है.

नयी पीढ़ी को प्रोत्साहित करने की अपनी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भारतीय ज्ञानपीठ ने गत वर्ष से नयी पीढ़ी के लिए सर्वथा नये अछूते आयोजन का सूत्रपात किया. यह आयोजन है प्रतियोगिता क्रम, जिसके अंतर्गत सर्वप्रथम कहानी विधा को लिया गया. कथा-प्रतियोगिता का नियोजन इस प्रकार किया गया कि प्रथम पुरस्कार घोषणा युवा वर्ष में हो. यह प्रतियोगिता क्रम चलता रहेगा और इसी प्रकार प्रतिवर्ष क्रमशः कविता, व्यंग्य, ललित निबंध आदि की प्रतियोगिताएं भी आयोजित होंगी. इस प्रतियोगिता-क्रम का प्रवर्तन देश की अग्रणी साहित्यिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठ ने किया है, जिसके अध्यक्ष हैं साहू श्रेयांसप्रसाद जैन, प्रबंध न्यासी हैं श्री अशोककुमार जैन. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराग के पाठक कहते हैं -

"मैंने अपने कितने ही मित्रों को पीछे छोड़ दिया, पर पराग अब भी मेरा उतना ही अपना है।"

अपने कालेज के तृतीय वर्ष में भी मैं पराग उतनी ही लगन और चाव से पढ़ती हूं, जितना मैं अपने स्कूल की सातवीं कक्षा में पढ़ा करती थी।

और क्यों नहीं ? पराग के अतिरिक्त ऐसी कोई भी पत्रिका नहीं है जो हमें एक साथ इतना ज्ञान और मनोरंजन दे सके। इसके अतिरिक्त यह मुझे अवसर प्रदान करती है कि मैं अपने विचार इसके स्थायी-स्तम्भों में व्यक्त कर सकूं।

आप भी पराग क्यों नहीं पढ़ते ?

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन

alfredallan/P/2/85

पराग

उभरते मस्तिष्क के लिए ज्ञान और मनोरंजन का सुन्दर समन्वय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक : 115 रुपये

अर्धवार्षिक : 60 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम......................

पता......................

....

....

हस्ताक्षर..................

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002.

अगला अंक

खुद से मुक्त होकर एक-दूसरे तक पहुंचना कितना सुखद होता है और कितना दुखद?

गुलामी के कुत्सित परिवेश से मुक्त होने के बाद एक सुखद परिवेश की कल्पना करते हुए जिन रचनाकारों ने लिखना शुरू किया और नाम कमाया, आप जरूर जानना चाहेंगे कि वे आजकल क्या कुछ लिख रहे हैं और अब देश तथा समाज के बारे में उनकी राय क्या है.

—पढ़िए सारिका : रजत जयंती वर्ष की 21 वीं सौगात—

कथा-पीढ़ी विशेषांक : दो

- मन्नू भंडारी, अमरकांत, राजेंद्र यादव, श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, ठाकुर प्रसाद सिंह, हृदयेश, मुद्राराक्षस, विवेकी राय, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, कुंवर नारायण, रामदरश मिश्र, महीप सिंह आदि की कहानियां
- मैं अपने-आपको फुर्सत नहीं देना चाहता...!
  —रमेश बक्षी से महेश दर्पण की बातचीत.
- पीढ़ियां : आमने-सामने
  —'जहां तक जिंदगानी है, कहानी ही कहानी है !' — शिवप्रसाद सिंह, बच्चन सिंह, काशीनाथ सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह
- आपकी बात, अपनी बात, पखवारे की पुस्तकें, लघुकथाएं आदि स्थायी स्तंभों सहित.

सारिका 1 नवंबर, 1985

हर वर्ग और उम्र के पाठक के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय दस्तावेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar